एमएपीएस- 514

(MAPS- 514)

तुलनात्मक राजनीति की विभिन्न अवधारणाएँ

(Concepts of Comparative Politics)

राजनीति विज्ञान विभाग

(समाज विज्ञान विद्याशाखा)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

MAPS-514 (एम.ए.पी.एस-514)

तुलनात्मक राजनीति की विभिन्न अवधारणाएँ

Concepts of Comparative Politics

समाज विज्ञान विद्या शाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक – समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0 मदन मोहन जोशी** **निदेशक (कार्यवाहक) – समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी ,नैनीताल
प्रो०एम.एम सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग हेमवती नंदन बहुगुणा केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर, गढ़वाल	**प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी** राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश
प्रो0 सतीश कुमार राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**डॉ आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एव सम्पादन

डॉ0 आरुशी , असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी), राजनीति विज्ञान ,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. अनुराग रत्न, विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग जी.एस.पी.जी.कालेज सुल्तानपुर	1,2,3,8,9,10,11,12
शुभांकर शुक्ला, लोक प्रशासन विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	4
डॉ दीपक पाण्डे असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय बाजपुर	5,6,7
डॉ. विजय प्रताप मल्ल जे.एल.नेहरू पी.जी.कालेज बाराबंकी	13,14

आई.एस.बी.एन. -----------

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष -2025

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :------------------------------------

संस्करण :2025, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

मुद्रित प्रतियां

तुलनात्मक राजनीति की विभिन्न अवधारणाएँ MAPS-514

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पेज संख्या
1	तुलनात्मक राजनीति: महत्व,अर्थ,क्षेत्र एवं स्वरुप	1-17
2	तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत उपागम	18-29
3	तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम	30-39
4	मार्क्सवादी एवं लेनिनवादी उपागम	40-56
5	व्यवस्था विश्लेषण- राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा	57-65
6	निवेश निर्गत विश्लेषण (डेविड ईस्टन)	66-75
7	संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम	76-88
8	राजनीतिक विकास	89-107
9	राजनीतिक आधुनिकीकरण	108-120
10	राजनीतिक समाजीकरण	121-130
11	राजनीतिक संस्कृति	131-146
12	राजनीतिक संचार	147-162
13	राजनीतिक अभिजन	163-179
14	शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन	180-201

इकाई 1 तुलनात्मक राजनीति : महत्व, अर्थ एवं क्षेत्र

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 तुलनात्मक राजनीति: अर्थ एवं व्याख्या
1.4 तुलनात्मक राजनीतिक क्रियाओं के महत्व
1.5 तुलनात्मक राजनीति का विषय के रूप में विकास
1.6 तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति
1.7 तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

20 वीं सदी से राजनीति विज्ञान के विषय क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप राजनीतिक समस्याओं, सिद्धान्तों तथा संस्थाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के मानदण्डों में भी परिवर्तन आया है। तुलनात्मक राजनीति, इसी दिशा में किया गया प्रयास है जिसके माध्यम से राजनीति विज्ञान में होने वाले परिवर्तनों का व्यवस्थिति ढंग से विश्लेषण करके सम्पूर्ण व्यवहार को समझने के लिए सामान्यीकरण किया जा सकता है। तुलनात्मक राजनीति के अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एंव समस्याओं का विवेचन करने से पूर्व हमें उसके अध्ययन के महत्व को समझना होगा।

वस्तुतः तुलनात्मक राजनीति, राजनीति विज्ञान के बदलते हुए अध्ययन क्षेत्र का परिचायक है। इसके माध्यम से ऐसे नये तरीकों, तकनीकों तथा उपागमों का सृजन किया गया है जिनसे राजनीतिक वास्तविकताओं का (Political Realities) क्रमबद्व अध्ययन किया जा सके। यह भी सत्य है कि राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन किसी नवीन विकास से सम्बद्व नहीं है। राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन के साथ-साथ तुलनात्मक अध्ययन को भी समझा एवं विश्लेषित किया जा

सकता है। जीन ब्लोंडेल के अनुसार, ''तुलनात्मक सरकारों का अध्ययन प्राचीनतम अत्यन्त कठिन एवं महत्वपूर्ण है तथा प्रारम्भ से ही मानव के ध्यान का आकर्षण रहा है।''१

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त-

- तुलनात्मक राजनीति के अर्थ को समझ सकेंगे |
- तुलनात्मक राजनीति के प्रकृति को समझ सकेंगे|
- तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र को समझ सकेंगे|
- तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के महत्त्व के बारे में जान पायेंगे|

1.3 तुलनात्मक राजनीति: अर्थ एवं व्याख्या

आधुनिक राजनीति वैज्ञानिकों का यह दावा है कि उन्होंने राजनीतिक प्रक्रिया के सिद्धान्त एवं प्रतिमान निर्माण की ओर प्रथम चरण के रूप में राजनीतिक विश्लेषण की नूतन अवधारणाओं के सुझाव प्रस्तुत किये हैं। उनका मानना है कि राज्य की अवधारणा विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में उन राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना व उपयोगी अध्ययन करने में विशेष सहायक नहीं, जिनमें आकार संगठन, संस्थाओं एवं संस्कृति की आधारभूत भिन्नताएँ हों। अतएव राजनीति विज्ञान में वर्षों से प्रचलित परम्परागत अवधारणाओं जैसे-राज्य, सरकार, कानून, सत्ता के स्थान पर नई अवधारणाओं का प्रयोग अपरिहार्य माना जाने लगा, ताकि राजनीतिक क्रियाओं को गम्भीरता से समझा जा सके। अतएवं समकालीन राजनीति वैज्ञानिकों द्वारा राजनीतिक अध्ययन में राजनीतिक व्यवस्था (Political System) राजनीतिक संस्कृति (Political Culture),राजनीतिक संरचना (Political Structure),राजनीतिक विकास(Political Development) ,राजनीतिक आधुनिकीकरण (Political Modernization) ,तथा राजनीतिक समाजीकरण (Political Socialization), आदि नई अवधारणाओं का प्रयोग किया जाने लगा। इन नई अवधारणाओं में भी आधारभूत अवधारणा (Basic Concept) राजनीतिक व्यवस्था को माना जाने लगा। इस राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित राजनीतिक प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों पर तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर, राजनीतिक व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त निर्माण के लक्ष्य से युक्त विज्ञान ही तुलनात्मक राजनीति है।

तुलनात्मक राजनीति के अर्थ को विस्तृत विवेचन करने से पहले इसका तुलनात्मक सरकार से अन्तर समझ लेना आवश्यक है। सामान्यतया दोनों का प्रयोग एक-दूसरे के लिए किया जाना

स्वाभाविक है। परन्तु दूसरी ओर राजनीति विज्ञान में इनके सुनिश्चित अर्थ भी हैं। जी.के. राबर्टस ने दोनों का अर्थ अलग-अलग स्पष्ट करते हुए तुलनात्मक सरकार की परिभाषा इस प्रकार की है, ''तुलनात्मक सरकार राज्यों, उनकी संस्थाओं तथा सरकारों के कार्यों का अध्ययन है जिसमें शायद राज्य क्रिया से अत्यधिक निकट का सम्बन्ध रखने वाले पूरक समूहों राजनीतिक दल व दबाव समूहों का भी अध्ययन सम्मिलित है।'' इसी प्रकार जीन ब्लोंडेल का कहना है, ''तुलनात्मक सरकार समकालीन विश्व में राष्ट्रीय सरकारों के प्रतिमानों का अध्ययन है

तुलनात्मक सरकार की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इसमें राज्य से सम्बद्ध औपचारिक संस्थाओं का ही तुलनात्मक अध्ययन होता है। इसमें गैर-औपचारिक संस्थाओं तथा राजनतिक व्यवहार से सम्बन्धित सभी प्रक्रियाओं सभी प्रक्रियाओं को सम्मिलित नहीं किया जाता। इसमें मुख्य जोर शासन की संस्थाओं के विश्लेषण पर है। राजीतिक व्यवहार के अनेक पक्षों का, जो सरकार का दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को प्रभावित करते हैं, अध्ययन नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीति व्यवहार की सम्पूर्णता के अध्ययन से है। इसमें उन प्रभावों तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन भी सम्मिलित किया जाता है जिससे सरकारों के व्यवहारों का निर्धारण हो सके।

एडवर्ड ए. फ्रीमैन तुलनात्मक राजनीति का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''तुलनात्मक राजनीति सरकारों के विविध प्रकारों व विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण है।'' राय सी. मैक्रेडीज के अनुसार, ''हेरोडोट्स तथा अरस्तू के समय से ही राजनीतिक मूल्यों, विश्वासों, संस्थाओं सरकारों व राजनीतिक व्यवस्थाओं में विविधताएँ प्राणवान रही हैं तथा इन विविधताओं से समान तत्वों की खोज करने के जड़तीय प्रयास को तुलनात्मक राजनीति विश्लेषण की संज्ञा दी जानी चाहिये।'

जी.के. राबर्टस के अनुसार, ''तुलनात्मक राजनीति एक विस्तृत विषय है जिसके अन्तर्गत तुलनात्मक सरकारों के अध्ययन की विषय-वस्तु को सम्मलित किया जाता है तथा साथ ही गैर-राज्यीय राजनीतिक कबीले, समुदाय, वैयक्तिक संघों आदि की राजनीति अध्ययन भी इसके अन्तर्गत किया जाता है।''

राल्फ ब्रेबन्ती ने तुलनात्मक राजनीति की व्यापक परिभाषा की है, ''तुलनात्मक राजनीति सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में उन तत्वों की पहचान व व्याख्या है जो राजनीतिक कार्यो व उनके संस्थागत प्रकाशन को प्रभावित करते हैं।'' माइकेल कर्टिस के अनुसार ''तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधिव राजनीति व्यवहार की महत्वपूर्ण निरन्तरताओं, समानताओं व असमानताओं से है।'' आमण्ड एवं पावेल के अनुसार, ''तुलनात्मक राजनीति के तीन मौलिक मंतव्य हैं- प्रथम पश्चिमी तथा गैर-पश्चिमी देशों की संस्थाओं का एक साथ विश्लेषण, द्वितीय,

राजनीतिक संस्थाओं का क्रमबद्व ढंग से अध्ययन करना एवं तृतीय तुलनात्मक राजनीतिक सिद्धान्तों में सम्बन्ध स्थापित करना।''

तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में राजनीति शब्द के तीन लक्ष्यार्थ हैं राजनीतिक क्रियाकलाप, राजनीतिक प्रक्रिया तथा राजनीतिक सत्ता। राजनीतिक क्रियाकलाप के अन्तर्गत वे प्रयास आते हैं जिससे सत्ता के लिए संघर्षरत लोग अपने हितों की यथासम्भव रक्षा कर सकें। राजनीतिक प्रक्रिया के अर्न्तगत उन सभी अभिकरणों की भूमिका आ जाती है जो निर्णय-निर्माण (Decision Making) प्रक्रिया से संग्लन हैं। इसी प्रकार सत्ता एक प्रकार का मानव सम्बन्ध है जिसके माध्यम से राजनीतिक प्रधिकार कुछ नीतियों के बारे में निर्णय करता है जिनका अनुपालन अन्य लोगों द्वारा करना आवश्यक होता है।

इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति, राजनीति संस्थाओं तथा राजनीतिक व्यवहार की समानताओं-असमानताओं से सम्बद्ध है। तुलनात्मक राजनीति में एक स्वतत्र अनुशासन के लिए आवश्यक सुस्पष्ट एवं निश्चित विषय-क्षेत्र है जिसका हम विस्तार से विवेचन इसी प्रकृति एवं क्षेत्र के अन्तर्गत करेंगे।

1.4 तुलनात्मक राजनीतिक क्रियाओं के महत्व

राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन का श्रेय प्रथम राजनीति वैज्ञाननिक अरस्तू को ही जाता है। सर्वप्रथम अरस्तू ने ही। 158 देशों के संविधानों का अध्ययन करके संविधानों का वर्गीकरण निरंकुशतन्त्र (Tyranny) कुलीनतंत्र (Oligarchy) तथा लोकतन्त्र (Democracy) के रूप में किया था। अरस्तू के उपरान्त अनेक विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन के दृष्टिकोण से अनेक नवीन दृष्टिकोणों एवं उपागमों का सृजन किया, जिससे राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन, विश्लेषण व वर्गीकरण को नया आयाम मिला। डॉ. सी. बी. गेना ने अपनी पुस्तक 'तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ' में तुलनात्मक एवं राजनीतिक क्रियाओं के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लिखित की है।

(1) राजनीतिक व्यवहार को समझना (To Understand the Political Behaviours)

साधारणतया जनसाधारण के लिए तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का महत्व इस बात में निहित है कि तुलनात्मक अध्ययन से देश की, बाहर के देशों की तथा अन्तराष्ट्रीय राजनीति एवं राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायता मिलती है। एक स्थान की राजनीतिक प्रक्रिया दूसरे स्थान से भिन्न होती है जिसका प्रमुख कारण यह है कि विभिन्न समाजों में रहने वाले मनुष्यों का राजनीतिक व्यवहार भिन्न होता है। आज प्रत्येक राजनीतिक समाज में अभिजनों का महत्व है और ये अपने व्यवहार से राजनीतिक प्रक्रियाओं, संस्थाओं एवं क्रियाकलापों पर प्रभाव डालते हैं। अतएवं विभिन्न

राजनीतिक व्यवस्थाओं के अभिजनों के राजनीतिक व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन करने से हम विभिन्न देशों की राजनीतिक प्रक्रियाओं को समझा सकते हैं। वार्ड एवं मैक्रेडीज के अनुसार ,''तुलनात्मक राजनीति विभिन्न समाजों के व्यक्तियों के मूल्य जो उन्हें प्रिय हैं, विधियाँ जिनका वे एक-दूसरे को व बाहरी विश्व को समझने में प्रयोग करते हैं तथा एक-जैसी राजनीतिक समस्याओं को हल करने के लिए भिन्न साधनों एवं समस्याओं को अपनाते हैं, इत्यादि को समझने में सहायक होती है।

राजनीतिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं एवं प्रक्रियाओं की विविधतायें सहजतः ही यह प्रश्न सामने लाती हैं कि क्यों एक राजनीतिक व्यवस्था एक स्थान पर सफल तथा अन्य स्थान पर असफल होती है क्यों मार्क्सवाद रूप में ही अपनी जड़ें जमा पाया? क्यों एशिया-अफ्रीका के देशों में अधिनायवाद की प्रवृति बलवती हो रही है? क्यों भारत में लम्बे समय तक एकदलीय प्रभुत्व (One Party Dominance) बना रहा? इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए आवश्यक है कि इन देशों में राजनीतिक व्यवहार की निरन्तरता की खोज की जाये तथा उसके कारकों का स्पष्टीकरण किया जाये। वास्तव में तुलनात्मक राजनीति का महत्व इस बात में निहित है कि इससे राजनीतिक व्यवहार की जटिलताओं को समझा व स्पष्ट किया जा सकता है।

(2) राजनीति को वैज्ञानिक अध्ययन बनाना (Making Politics a Scientific Study) राजनीति विज्ञान के विद्वानों का अरस्तू के समय से ही यह प्रयत्न रहा कि राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित ज्ञान को विज्ञान का रूप किस प्रकार दिया जाये? तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन इसी प्रयत्न में विशेष सहायक प्रतीत होता, है क्योंकि विज्ञान में नियम प्रतिपादन न केवल राजनीतिक प्रक्रियाओं की अनेकता से सम्भव है,वरनपरस्पर प्रतिकूल व विविधताओं वाले राजनीतिक आचरण से ही उपलब्ध प्रचुर सामग्री से सम्भव है। 1955 के उपरान्त व्यवहारवाद के विकास ने तुलनात्मक राजनीति को इतना महत्वपूर्ण बना दिया है कि यही विज्ञान के रूप में राजनीति विज्ञान के विकास का प्रथम चरण बन गई है। तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन इसलिए भी उपयोगी बन जाता है कि विविधता एवं अनेकता युक्त राजनीतिक तथ्य एवं आँकड़े विभिन्न राजनीतिक क्रियाओं की तुलना से प्राप्त हो सकते हैं। कर्टिस के अनुसार, ''जबसे व्यवहारवादी दृष्टिकोण का प्रचलन हुआ, तबसे आज तक राजनीति विज्ञान की वैज्ञानिकता की आधुनिकतम अभिव्यक्ति हम तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन में ही पाते है।४ पीटर मर्कल के अनुसार ''वास्तव में राजनीति विज्ञान की श्रेणी में केवल तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही आ सका है इसलिए ही सम्भवतः अरस्तू के बाद से आज तक श्रेष्ठतम विचारक राजनीति के तुलनात्मक विश्लेषण में संलग्न रहे हैं।

(3) राजनीति में सिद्वान्त निर्माण (Theory Generation in Politics) तुलनात्मक राजनीति का महत्व इस बात में भी परिलक्षित होता है कि तुलनात्मक अध्ययन से ही किसी विज्ञान

में सिद्धान्तों का निर्माण एवं नियमों का निरूपण सम्भव होता है। तुलनात्मक राजनीति प्रमाणित सामान्यीकरण तक पहुँचने में सहायता करती है।

मुख्यतः राजनीतिक सिद्धान्तों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- आदर्शीकृत सिद्धान्त (Normative Theory) या आनुभाविक सिद्धान्त (Empirical Theory) । आदर्शीकृत सिद्धान्त में राजनीतिक व्यवस्थाओं के बारे में कोई कल्पना मस्तिष्क में कर ली जाती है तथा फिर उस कल्पना को रचनात्मक रूप दिया जाता है। प्लेटो के दार्शनिक राजा के सिद्धान्त को इसी श्रेणी में रखा जाता है। इसके विपरीत आनुभाविक सिद्धान्तों में राजनीतिक व्यवहार के वास्तविक तथ्यों को समझकर सिद्धान्तों का निर्माण होता है। इसमें राजनीति वैज्ञानिक स्वयं तथ्यों के संकलन के लिए राजनीति व्यवहार के क्षेत्र में जाकर राजनीतिक व्यावहार का अवलोकन करता है।

तुलनात्मक राजनीति का अदर्शीकृत सिद्धान्तों के निर्माण में तो कोई योगदान नहीं हो सकता है परन्तु आनुभाविक सिद्धान्त तो केवल इसी के सहारे सम्भव होते हैं, क्योंकि यथार्थ राजनीतिक व्यवहार की तुलना से ही अनुभविक सिद्धान्त का निर्माण होता है। इसी से सामान्य तथ्यों को एकत्रित किया जाता है, यथार्थ सामान्य नियम बनते हैं तथा इनके आधार पर सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन सम्भव होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि तुलनात्मक राजनीति का महत्व राजनीतिक व्यवहार के सम्बन्ध में सिद्धान्त निर्माण में सर्वाधिक है।

(4) प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों की पुनः प्रमाणिकता (Re-Validification of Existing Political Theories) तुलनात्मक राजनीति का सर्वाधिक महत्व इस बात में निहित है कि इसी की सहायता से प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों का, चाहे वे आदर्शी सिद्धान्त हों या आनुभाविक सिद्धान्त, पुनः परीक्षण किया जाता है तथा उनकी प्रमाणिकता परखी जा सकती है। तुलनात्मक राजनीति प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों के पुनः परखने के लिए नवीन उपकरण व नवीनता युक्त विविध तथ्य उपलब्ध कराती है जिससे उनकी प्रमाणिकता का पुनः परीक्षण सम्भव हो सके। किसी भी विज्ञान में, यहाँ तक कि भौतिक विज्ञानों में भी परम सिद्धान्त (Absolute Theoies) नहीं हो सकते हैं। इस दृष्टि से राजनीति विज्ञान में प्रचलित सिद्धान्तों की प्रमाणिकता का पुनः परीक्षण एवं पुनः मूल्यांकन करना अनिवार्य है। यह कार्य तुलनात्मक राजनीति के माध्यम से ही सम्भव हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति का महत्व आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण में बढ़ता जा रहा है। इससे हमें विभिन्न देशों की सरकारों एवं राजनीति के बारे में आनुभविक एवं वैज्ञानिक अध्ययन करने में सहायता मिलती है। इस बात का भी अध्ययन किया जा सकता है कि किसी देश में शासन पद्धति एवं विचारधारा का कितना अटूट सम्बन्ध है तुलनात्मक अध्ययन का महत्व लोकतान्त्रिक एवं लोक कल्याणकारी राज्य व्यवस्थाओं के कारण और भी बढ़ गया है। राज्य

की हर गतिविधि का केन्द्र अब राजनीतिक व्यक्ति हो गया है। अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि इस प्रकार के सर्वव्यापी राजनीतिक व्यवहार को न केवल समझा ही जाये,वरनउसे सामान्य नियम के सन्दर्भ में देखा जाये, जिससे कि हर स्तर का राजनीतिक आचरण व्यवहारिक सीमाओं की परिधि में समझा जा सके। यही कारण है कि तुलनात्मक राजनीति का महत्व उत्तरोत्तर वृद्धि पर है।

1.5 तुलनात्मक राजनीति का विषय के रूप में विकास

राजनीतिक विज्ञान में तुलनात्मक रूप से अध्ययन की परंपरा नई नहीं है, परंतु इसका मुख्य ध्यान राजनीति के अध्ययन पर है। डॉ. सी.बी. गेना के अनुसार, तुलनात्मक राजनीति स्वतंत्र अनुशासन की अवस्था में अचानक पहुंचने का सीधा रास्ता नहीं है, और इसका विकास लंबा और उतार-चढ़ावों भरा है। इसलिए, तुलनात्मक राजनीति के विकास को समझने के लिए इसका इतिहास देखना महत्वपूर्ण है।

जी.के. राबर्टस ने तुलनात्मक राजनीति के विषय को तीन कालों में विभाजित किया:

(i) अपरिष्कृत (Unsophisticated)

(ii) परिष्कृत (Sophisticated)

(iii) प्रगामी रूप से परिष्कृत (Increasingly Sophisticated)

1. **अरस्तू का काल (The Phase of Aristotle):**
   इस काल में तुलनात्मक राजनीति का विकास हुआ, जिसमें अरस्तू ने तुलनात्मक एवं आनुभविक विश्लेषण करते हुए विश्व के विभिन्न देशों के संविधानों का अध्ययन किया। उन्होंने सरकारों के वर्गीकरण को तुलनात्मक राजनीति का मौलिक आधार माना।
2. **मैक्यावेली एवं पुनर्जागरण काल:**
मैक्यावेली ने राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी पुस्तक "दि प्रिंस" में विभिन्न शासन व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया और राजनीतिक गतिविधियों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझाया।
3. **मॉण्टेस्क्यू एवं बुद्धिवाद का युग:**
   मॉण्टेस्क्यू ने राजनीतिक व्यवस्थाओं का संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण किया और समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था और परिवेश के बीच संबंध को तुलनात्मक रूप से देखा। उन्होंने राजनीतिक गतिविधियों के यांत्रिकी सिद्धांतों को प्रतिपादित किया।
4. **इतिहासवाद का युग:**

इतिहासवाद तुलनात्मक राजनीति को उन्नीसवीं शताब्दी में लाया। इस युग में, इतिहासवादी दृष्टिकोण से कुछ विरोधी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुईं, जिनसे आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को प्रेरणा मिली। इसके बावजूद, इस युग का योगदान नकारात्मक रहा, परंतु इससे बिना, आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को समझना मुश्किल है। हीगल और मार्क्स के योगदान से इतिहासवादी चिन्तन में विशेष महत्वपूर्ण बदलाव आया।

हीगल ने आत्मा के मोक्ष को मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य बताया और मानव विकास को नैतिकता की दिशा में रखा। उनके अनुसार, जो अंतिम विवेक है, वह पृथ्वी पर अवतार लेता है और राज्य भी इसी रूप में ईश्वर का पृथ्वी पर अवतरण है। **मार्क्स के** अनुसार, विकास का अंतिम उद्देश्य भौतिक दृष्टि से वर्गहीन और राज्यविहीन समाज है। इतिहासवादियों के द्वारा उठाए गए धर्म और संस्कृति के मुद्दे ने तुलनात्मक राजनीति को भी महत्वपूर्ण बना दिया।

5. **राजनीतिक विकासवाद का युग:**

राजनीतिक विकासवाद का युग इतिहासवाद के समय के साथ मेल खाता है, लेकिन ये दोनों ही में कुछ अंतर हैं। विकासवादी इतिहासवादी दृष्टिकोण की तरह नहीं थे और उन्होंने वास्तविक जीवन के तथ्यों के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं का विकास समझने का प्रयास किया। राजनीतिक विकासवादी द्वारा सीमित समस्याओं पर ध्यान केंद्रित किया गया और विभिन्न समाजों में एक सी राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति को समझने का प्रयत्न किया।

सर हैनरी मैन ने "Ancient Law" (1861) और "Early History of Institutions" (1874) के माध्यम से राजनीतिक विकासवाद की नींव रखी। उन्होंने यह समझाने का प्रयास किया कि राज्य कुटुम्ब का वृहत्तर रूप है। अन्य विद्वानों ने भी इस दिशा में अपना योगदान दिया, जैसे कि मैक्स वेबर, पैरेटो, माइकेल्स, और मोस्का। इन विचारकों ने राजनीतिक प्रक्रियाओं और राजनीतिक संस्थाओं की संरचना को तुलनात्मक रूप से विश्लेषण किया और नए दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

6. **तुलनात्मक राजनीति में युद्धोपरान्त विकास:**

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राजनीतिक व्यवस्थाओं में हुई उथल-पुथल ने तुलनात्मक राजनीति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। इस विकास के कुछ मुख्य पहलुओं को हैरी एक्सटीन के अनुसार विवेचित किया गया था:

(i) वृहद राजनीतिक परिस्थितियों में पुनः रूचि: तुलनात्मक राजनीति में बड़ी राजनीतिक परिस्थितियों के पुनः अध्ययन में वृद्धि हुई।

(ii) राजनीतिक की विस्तृत और सामान्य अवधारणाओं में सुस्पष्टता: राजनीतिक की प्रकृति की विस्तृत और सामान्य अवधारणाओं पर ध्यान दिया गया और इसमें सुस्पष्टता लाई गई।

(iii) मध्य-स्तरीय सैद्धान्तिक समस्याओं के साधन पर ध्यान: कुछ प्रकार के राजनीतिक व्यवहार के निरूपकों से संबंधित मध्य-स्तरीय सैद्धान्तिक समस्याओं के समाधान में जोर दिया गया।

(iv) राजनीतिक संस्थाओं की शर्तों की खोज में रूचि: कुछ प्रकार की राजनीतिक संस्थाओं की अपेक्षित शर्तों की खोज में रूचि बढ़ी।

इसके बावजूद, बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों के कारण तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में कई कमियाँ उभरीं हैं:

(i) तुलनात्मक विश्लेषण के तकनीकी पक्ष का विकास नहीं हुआ: तकनीकी पक्ष में विकास नहीं हुआ।

(ii) कानूनी आधार पर ही तुलना करने का बल: राजनीतिक क्रियाकलापों को कानूनी आधार पर ही तुलना करने पर जोर दिया गया, और अनौपचारिक और व्यवहारिक पहलूओं को अनदेखा किया गया।

(iii) गैर-राजकीय संस्थाओं की अवहेलना: तुलनात्मक विश्लेषण में गैर-राजकीय संस्थाओं की अवहेलना की गई।

(iv) सुनिश्चित मानकों का अभाव: सुनिश्चित मानकों का अभाव बना रहा और तुलनाएँ पश्चात्य व्यवस्थाओं तक ही सीमित रहीं।

वस्तुतः, द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त तुलनात्मक राजनीति में विकास हुआ और इसमें नए दृष्टिकोण आए। राजनीतिक व्यवस्था के आनुभविक परिसर का विस्तार हुआ और यहां तक कि पश्चिमी लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्थाओं के परे भी जाकर अनुभव किया गया। साथ ही, विज्ञानिक परिशुद्धता में भी बढ़ोतरी हुई और व्यवहारवादी क्रांति ने इसमें योगदान किया। राजनीति के समाजिक परिवेश पर भी जोर दिया गया और इसमें नए दृष्टिकोणों का उपयोग किया गया। इस प्रकार, तुलनात्मक राजनीति में नए उपागमों का प्रयोग होने के साथ ही एक नया दिशा मिला और इसका अध्ययन एक अधिक वैज्ञानिक और व्यवस्थित दृष्टिकोण में होने लगा।

7. तुलनात्मक राजनीति की वर्तमान अवस्था (Comparative Politics Today):

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त लगभग एक दशक तक विकसित राजनीतिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन सही रूप में नहीं किया गया था। नवीन राजनीतिक व्यवस्थाओं के आंतरिक संरचनाओं पर पहले अध्ययन ने ऐंस्टीन और ऐप्टर द्वारा कहा गया है कि "प्रथम अध्ययन तुलनात्मक न होकर नए राजनीतिक व्यवस्थाओं के आंतरिक संरचनाओं पर प्रकाश डालने वाले रहे हैं।"

कोलमैन, ऐप्टर, जार्ज मेकाहिन, माइरन वीनर, लूसियन डब्ल्यू पाई, कीथ कैलार्ड, लियोनार्ड बिंडर, द्वारा किए गए कई अध्ययन तुलनात्मक राजनीति के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। आधुनिक समय में तुलनात्मक राजनीति के विद्वानों में डेविड ईस्टन, आमण्ड, कोलमैन, कार्ल डायच, जी.बी. पावेल, हेराल्ड लासवेल, राबर्ट डाल्ह, शिल्स, डेविड ऐप्टर, हैरी एक्सटीन, इत्यादि शामिल हैं।

डेविड ईस्टन, आमण्ड, और डायच ने तुलनात्मक विश्लेषण को एक व्यापक इकाई के रूप में सिद्धांत की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इस सिद्धांत के माध्यम से आज न केवल सामाजिक व्यवस्थाओं की ही तुलना की जा सकती है, बल्कि राजनीतिक व्यवस्था के सभी पहलुओं को सम्पूर्णता से समझा जा सकता है।

वर्तमान युग में तुलनात्मक राजनीति के अंतर्गत अनेक शोध तकनीकों, संकल्पनाओं, और सिद्धान्तों का विकास हुआ है। व्यवस्थापिकाओं पर लोवेन्थाल और यंग, राजनीतिक दलों पर डुवरगन-रैने और मैकेन्जी, राजनीतिक समाजवाद पर डेविड ईस्टन, और अभिजन के अध्ययन पर राबर्ट डहल, राजनीतिक संचार पर कार्ल डायच आदि के शोध उच्चकोटि के माने जाते हैं। तुलनात्मक राजनीति के विकास में ऐप्टर, रोस्टोव, और लूसियन पाई के अध्ययन का महत्वपूर्ण योगदान है। सैमुएल हंटिंग्टन, फ्रेडरिक फे, जैसे विद्वानों ने विकास के सन्दर्भ में सैन्य व्यवस्थाओं का अध्ययन किया है।

1.6 तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के सन्दर्भ में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। यही कारण है कि आज भी इसकी प्रकृति का निर्धारण सरल नहीं है, परन्तु इस सन्दर्भ में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैः

(i)पश्चिमी, गैर-पश्चिमी तथा साम्यवादी देशों की संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण।

(ii)विविध राजनीतिक संरचनाओं के अतिरिक्त अराजनीतिक संरचनाओं तथा उनके प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण।

(iii) राजनीतिक संस्थाओं की अपेक्षा मानव के राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन पर अधिक बल।

(iv) राजनीतिक क्रियाकलापों, राजनीतिक प्रक्रियाओं एवं सत्ता का तुलनात्मक अध्ययन।

(v) विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण।

यदि हम विभिन्न विद्वानों के तुलनात्मक दृष्टिकोणों की समीक्षा करें तो तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण पाये जाते है-

(1) तुलनात्मक राजनीतिक लम्बात्मक तुलना के रूप में (Comparative Politics as a vertical Study): इस विचार के समर्थकों के अनुसार तुलनात्मक रानीति एक ही देश में स्थित विभिन्न सरकारों व उनको प्रभावित करने वाले राजनीतिक व्यवहारों का तुलनातमक विश्लेषण एवं अध्ययन है। प्रत्येक राज्य में कई स्तरों पर सरकारें होती हैं- राष्ट्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार एवं स्थानीय सरकार। इस दृष्टिकोण के अनुसार तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध इस प्रकार की एक ही देश में स्थित विभिन्न सरकारों- राष्ट्रीय, प्रान्तीय एवं स्थानीय की आपस में तुलना से है। तुलनात्मक राजनीति एक ही देश की विभिन्न सरकारों की लम्बात्मक (Vertical) तुलना है।

वस्तुतः यह दृष्टिकोण तर्कसंगत नहीं है। राष्ट्रीय सरकार तथा स्थानीय सरकारों के मध्य पायी जाने वाली तुलना सतही ही है। आर्थिक साधनों, नियमों एवं कानूनों तथा शक्ति के संसाधनों की दृष्टि से देखें तो दोनों में काफी अन्तर पाया जाता है। इस लिए तुलनात्मक राजनीति में एक ही देश की विभिन्न स्तरीय सरकारों का तुलनात्मक विश्लेषण सम्भव दिखायी देते हुए भी सामान्यीकरण सकी सम्भावनाएँ नहीं रखता। अतएवं यह कहा जा सकता है। कि तुलनात्मक राजनीति की यह धारणा अब मान्य नहीं है तथा है तथा इस आधार पर तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति का निर्धारण करना सम्भव नहीं प्रतीत होता।

(2) तुलनात्मक राजनीति अम्बरान्तीय तुलना के रूप में (Comparative Politics as a Horizantal Study): तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति सम्बन्धी दूसरी धारण के अनुसार यह राष्ट्रीय सरकारों का अम्बरान्तीय Horizantal) तुलनात्मक अध्ययन है। अधिकांश राजनीति वैज्ञानिक भी इससे सहमति रखते हैं। इस प्रकार की तुलना दो प्रकार से सम्भव है। प्रथम तो यह है कि यह तुलना एक ही देश के विभिन्न कालों में विद्यमान राष्ट्रीय सरकारों की आपस में हो सकती है। द्वितीय आज समपूर्ण विश्व में विद्यमान राष्ट्रीय सरकारों में हो सकती है।

एक ही देश में विद्यमान राष्ट्रीय सरकारों की ऐतिहासिक तुलना तुलनात्मक राजनीति में होनी चाहिए। वर्तमान की राजनीति संथाओं प्रक्रियाओं तथा रानीतिक व्यवहारों का तुलनात्मक विश्लेषण अतीत के ही सन्दर्भ में किया जा सकता है। जैसे - भारत के सन्दर्भ में यह तुलना प्राचीन भारत की राष्ट्रीय सरकारों मध्यकालीन भारत, ब्रिटिश भारत की सरकारों तथा आधुनिक स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय सरकारों में की जा सकती है। इसी प्रकार स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय सरकारों की तुलना एक ही

शासनकाल के विभिन्न पहलुओं के सन्दर्भ में की जा सकती है। जैसे, नेहरू काल (1942-1964) अथवा इन्दिरा गाँधी (1966-1977) तथा (1980-1984)। राष्ट्रीय सरकारों की यह समस्तरीय तुलना अवश्य है परन्तु ऐतिहासिक सन्दर्भ में की जा सकती है। परन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि हर काल की राष्ट्रीय सरकार के बारे में समान जानकरी एवं तथ्य उपलब्ध हों।

1.7 तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र (Scope of Ccomparative Politics)

तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र अभी भी सीमांकन की अवस्था में है इसके विषय-क्षेत्र की निर्माण अवस्था के कारण ही जी. के. राबर्टस ने यहाँ तक कहा कि ''तुलनात्मक राजनीति या तो सब कुछ है अथवा कुछ भी नहीं है। अतएवं तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र की प्रमुख समस्या बन जाती है कि इसके अध्ययन क्षेत्र में क्या-क्या सम्मिलित किया जाये तथा क्या-क्या छोड़ा जाये? साथ ही यह भी प्रश्न आता है कि राजनीति सम्बन्धी किसी पहलू को इसके अध्ययन में सम्मिलित करने या न करने का आधार क्या हो? इस सम्बन्ध में हैरी एक्सटीन के विचार सर्वोपयुक्त हैं। सबसे अधिक आधारभूत बात यह है कि आज यह एक ऐसा विषय है जिसमें अत्यधिक विवाद है, क्योंकि यह संक्रमण स्थिति में है- एक प्रकार की विश्लेषण शैली से दूसरे प्रकार की शैली में प्रस्थान कर रहा है।

इससे स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति एवं परिभाषा की भाँति इसके विषय-क्षेत्र पर भी परम्परावादी एवं आधुनिक विद्वानों में मतभेद है। जीन ब्लोंडेल ने इसे दो बातों से सम्बन्धित बताया हैः

(1) सीमा सम्बन्धी विवाद

(2) मानकों तथा व्यवहार के पारस्परिक सम्बन्धों सम्बन्धी विवाद।

(1) सीमा सम्बन्धी विवाद (Controversy over the Boundary): सभी राजनीति वैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राष्ट्रीय सरकारों से है। इसमें भी न केवल सरकारी ढाँचे बल्कि सरकारी क्रियाकलापों एवं गैर राजनीतिक संस्थाओं के राजनीतिक कार्यो का भी अध्ययन आवश्यक रूप से सम्मिलित रहता है। परन्तु यहाँ भी सरकारी क्रियाकलापों की दृष्टि से दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं- कानूनी दृष्टिकोण एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण।

(2) मानकों एवं व्यवहार के सम्बन्धों का विवाद (Contraresy over the Relationships of Norms and Behaviour): तुलनात्मक राजनीति का विषय क्षेत्र सम्बन्धी दूसरा विवाद अधिक जटिलताओं का जनक है। मानक की अभिव्यक्ति कानून प्रक्रियाओं एवं नियमों में होती है, परन्तु राजनीतिक व्यवहार कई बार इन कानूनों के प्रतिकूल रहता है। यही तुलनात्मक

अध्ययन में पेचीदगियाँ उत्पन्न करता है। अतएवं तुलनात्मक राजनीति में यह भी देखा जाना चाहिए कि राजनीति व्यवहार मानकों के अनुकूल है अथवा प्रतिकूल है। कहने का तात्पर्य यह है कि राजनीति क्रिया से सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा मानकों के अभिव्यक्त कानूनों का कितना पालन व कितना उल्लंघन होता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मानक एवं व्यवहार दोनों ही गतिशील होते हैं। इनमें साम्य व गतिरोध दोनों ही हो सकता है। सामान्यतया इनमें पारस्परिकता रहती है तथा दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते है। अतएवं तुलनात्मक राजनीति में मानक एवं व्यवहार के राजनीतिक पहलुओं का अध्ययन भी सम्मिलित होना चाहिए। इस सम्बन्ध में जीन ब्लोंडेल ने लिखा है,'' जबकि आधारभूत दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध सरकार की संरचना से होना चाहिए पर साथ ही साथ उसका सम्बन्ध व्यवहार में स्फुटित प्रतिमानों एवं आचरणों से भी होना चाहिए, क्योंकि वे सरकार की जीवित संरचना का अभिन्न अंग हैं।''30

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन क्षेत्र के बारे में उपरोक्त विवादों के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इसमें न केवल शासन तन्त्रों एवं संगठनों की तुलना की जाती है तथा न ही मानकों एवं व्यवहारों के सम्बन्धों का विश्लेषण मात्र ही किया जाता हैवरनइसके क्षेत्र में इन दोनों का ही समावेश आवश्यक है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र में विभिन्न राजनीति व्यवस्थाओं की शासन संरचनाओं शासन व्यवहार प्रतिमानों व गैर-राजकीय संस्थाओं के अध्ययन कानून निर्माण, कानून प्रयोग तथा विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंगों से सम्बन्धित निर्णयों तथा राजनीतिक दलों व दबाव समूहों जैसे संविधानातिरिक्त अभिकरणों के अध्ययन तक ही सीमित नहीं वरन उससे आगे बढ़ता है। एम. कर्टिस के अनुसार, ''राजनीतिक संस्थाओं तथा राजनीति व्यवहार की कार्य-प्रणाली में महत्वपूर्ण नियमितताओं, समानताओं एवं असमानताओं से तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध है।31

अभ्यास प्रश्न:

1. तुलनात्मक राजनीति का प्रमुख ध्यान क्या है?

A) आर्थिक विश्लेषण,

B) विभिन्न देशों के राजनीतिक प्रणालियों का अध्ययन,

C) पर्यावरण नीतियाँ

D) ऐतिहासिक घटनाएँ

2. तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति में क्या शामिल है?

A) केवल एक राजनीतिक प्रणाली का अध्ययन
B) एक तुलनात्मक दृष्टिकोण से राजनीतिक घटनाओं का विश्लेषण

C) राजनीतिक विचारधाराओं को नजरअंदाज करना

D) केवल घरेलू नीतियों पर केंद्रित होना

1.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट है जैसा कि राल्फ ब्रेबन्ती ने तुलनात्मक की व्यापक परिभाषा की है, ''तुलनात्मक राजनीति सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में उन तत्वों की पहचान व व्याख्या है जो राजनीतिक कार्यो व उनके संस्थागत प्रकाशन को प्रभावित करते हैं।'' माइकेल कर्टिस के अनुसार ''तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधिव राजनीति व्यवहार की महत्वपूर्ण निरन्तरताओं, समानताओं व असमानताओं से है।'' आमण्ड एवं पावेल के अनुसार, ''तुलनात्मक राजनीति के तीन मौलिक मंतव्य हैं- प्रथम पश्चिमी तथा गैर-पश्चिमी देशों की संस्थाओं का एक साथ विश्लेषण, द्वितीय, राजनीतिक संस्थाओं का क्रमबद्व ढंग से अध्ययन करना एवं तृतीय तुलनात्मक राजनीतिक सिद्धान्तों में सम्बन्ध स्थापित करना।''

तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में राजनीति शब्द के तीन लक्ष्यार्थ हैं राजनीतिक क्रियाकलाप, राजनीतिक प्रक्रिया तथा राजनीतिक सत्ता। राजनीतिक क्रियाकलाप के अन्तर्गत वे प्रयास आते हैं जिससे सत्ता के लिए संघर्षरत लोग अपने हितों की यथासम्भव रक्षा कर सकें। राजनीतिक प्रक्रिया के अर्न्तगत उन सभी अभिकरणों की भूमिका आ जाती है जो निर्णय-निर्माण (Decision Making) प्रक्रिया से संग्लन हैं। इसी प्रकार सत्ता एक प्रकार का मानव सम्बन्ध है जिसके माध्यम से राजनीतिक प्रधिकार कुछ नीतियों के बारे में निर्णय करता है जिनका अनुपालन अन्य लोगों द्वारा करना आवश्यक होता है।

इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति, राजनीति संस्थाओं तथा राजनीतिक व्यवहार की समानताओं-असमानताओं से सम्बद्ध है। तुलनात्मक राजनीति में एक स्वतत्र अनुशासन के लिए आवश्यक सुस्पष्ट एवं निश्चित विषय-क्षेत्र है |

1.9 शब्दावली

राजनीतिक विचारधारा: एक व्यक्ति या समूह के राजनीतिक विचारों और दृष्टिकोणों का संग्रह।

वैश्विक शासन: वैश्विक स्तर पर संगठित स्थायी शासन की प्रक्रिया या प्रणाली।

राजनीतिक गतिविधियाँ: राजनीतिक प्रक्रियाओं और परिवर्तनों का अध्ययन।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. B, 2. B

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Jean Blandel, Comparative Government : A Reader (Eds), Macmillan, London, 1969, p. Xi.

2 डॉ. सी. बी. गेना तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं, पृ. 4-14 विकास पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली (1978

3. Ward and Macridis, Political Systems: Asia, Eaglewood Cliffs, New Jersey, (1968), p.5.

4.Michael Curtis, Comparative Govt. and Politics, Harper and Row London, 1968, p. 6.

5. Peter H. Merkel, Modern comprative Politics, Holt Rinehart, Winstan, New York, 1970, p. 1

6. G.K. Roberts, Comparative Politics Today Government and Opposition, Vol. VII No. 1 Witnter 1972, pp. 38-39.

7. Jean Blondel, An Introduction to Comparative Government, We Uliedenfield and Nicolson London, 1969. p. 6

8. Edward A. Freeman, Why Compare Comparative Politics, 1973, pp., 19-35

9. R.C. Macridis, comparative Government, 1967, p. 209.

10. G.K. Roberts, What is comparative Politics Macmillan, 1972, p. 7.

11. Ralph Braibanti, 'Comparative Government and Politics, Harper and Row London; 1968, p.6

12. Michael Curtis, comparative Government and Politics, Harper and Row, London, 1968, p. 6.

13. G. A. Almond and Powell, Comparative Politics: A Developmental Approach, Boston, (1966), p. 2-5.

14.डॉ. सी.बी. गेना, पूर्वोक्त, p.60.

15. G.K Roberts, Op. Cit. p. 45

16. Eckstein and After (Eds.), Comparative Politics : A Reader, Free press, New york, 193,p.6.

17. डॉ. सी.बी. गेना पूर्वोक्त p.65

18.Eckstein and After (Eds.), Comparative Politics : A Reader, Free, Press, New York, (1963),p.12.

19-डॉ. सी.बी. गेना पूर्वोक्त] p.78.

20. Eckstein and Apter, Op cit, p. 12.

21.Sidney Verba, "Dilemmas in Comparative Research, World Politics Vol. XX, 1963-68 ,p-III.

22.Jean Blondel, "An Introduction to Cocparative Government", Weilden Field and Nicholson London,1969,p. Blandel.

23.Jean Blaondel, An Introduction to Comparative Government, London, 1969.p.6.

24.डॉ. सी.बी. गेना पूर्वोक्त] p.40.

25. G.K. Robers, Comparative Politics, Today, p.6.

26.Eckstein and Apter, Op, cit., p.6.

27.David Eastan, The Political System, New York, (1953), p.129.

28. Jean Blondel, op. cit. p.6.

29.Jean Blondel, Ibid p.6.

30.Jean Bolndel, Ibid p,11.

31.Michacl Curtis, Op.cit. p. 5.

32.S.E. Finer, Comparative Government, Allen have, London, 1970, p.40.

1.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. S.E. Finer, Comparative Government, Allen have, London

2. David Eastan, The Political System, New York,

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.तुलनात्मक राजनीति के अर्थ एवं प्रकृति की विवेचना कीजिये |

2. तुलनात्मक राजनीति के विषय क्षेत्र की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए। यह विषय किन प्रमुख घटकों को शामिल करता है?

3. तुलनात्मक राजनीति क्या है? इसके अध्ययन की आवश्यकता क्या है?

इकाई 2 :तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत उपागम

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम

2.4 तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम

2.5 तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम की सामान्य विशेषताओं

2.6 परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की आलोचना

2.7 परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का महत्व

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन प्रारम्भ से ही राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न संकल्पनाओं प्रत्ययों एवं वास्तविकताओं का विश्लेषण रहा है। ऐक्सटीन तथा ऐप्टर के अनुसार, ‘‘राजनीति विज्ञान में राजनीतिक संस्थाओं, संविधानों तथा सरकारों के तुलनात्मक अध्ययन का अत्यधिक लम्बा एवं गौरवमय अतीत है। तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन अब तक केवल नाम से ही तुलनात्मक रहा है। एक लम्बे समय तक यह केवल विदेशी शासनों, उनके ढाँचे तथा औपचारिक संगठन का ऐतिहासिक, वर्णनात्मक तथा कानूनी तौर से अध्ययन रहा है जब कि

तुलनात्मक राजनीति को सिद्धान्तों, ढाँचों तथा वास्तविक व्यवहारों से अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहिए।''

राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण का श्रेय सर्वप्रथम अरस्तू को ही जाता है जिन्होंने तत्कालीन 158 यूनानी नगर राज्यों के संविधानों का तुलनात्मक विश्लेषण किया था। इस विश्लेषण में अरस्तू द्वारा प्रयुक्त मापदण्ड आज भी तुलनात्मक राजनीति में प्रासंगिक माने जाते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त-

- तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम के बारे में जान सकेंगे
- तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम की सामान्य विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे
- परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का महत्व को समझ सकेंगे |

2.3 तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम

अरस्तू के बाद अनेक राजनीतिक विचारकों ने राजनीतिक संस्थाओं व व्यवस्थाओं के अध्ययन में तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया। इनमें सिसरो, पालिबियस, मैक्यावली मॉण्टेस्क्यू मार्क्स, मिल तथा बेजहाट इत्यादि विद्वानों का नाम महत्वपूर्ण है जिन्होंने विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया।

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागमों का अध्ययन करने से पूर्व हमें दो बातों का ध्यान रखना होगा।

1.राजनीति वैज्ञानिक इस प्रश्न का उत्तर प्रारम्भ से ही ढूँढ़ने में व्यस्त हैं, क्योंकि एक प्रकार की राजनीतिक संस्थाएँ एक राजनीतिक व्यवस्था में सफल रहती हैं तथा अन्य राजनीतिक व्यवस्था में असफल हो जाती है। यह जानने के लिए विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन ही काफी नहीं है, इसके लिए विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण भी आवश्यक है। इसके द्वारा ही किसी राजनीतिक व्यवस्था एवं संस्था की श्रेष्ठता का पता चलता है। यही कारण है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन राजनीतिक व्यवस्थाओं के विश्लेषण की प्रमुख पद्धति बनता जा रहा है।

2.पिछले सौ वर्षों के भीतर विशेषकर, द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन क्षेत्र में बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों के कारण क्रान्तिकारी परिर्वतन आ गये। यही

कारण है कि अध्ययन के पुराने दृष्टिकोण निरर्थक होते चले गये तथा विश्लेषण की नई तकनीकों का उदय हुआ। नई तकनीकों के उदय के उपरान्त तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागमन सामने आये हैं।

डॉ. सी. बी. गेना के अनुसार यद्यपि परम्परागत एवं आधुनिक राजनीति के अन्तरों का सुनिश्चित आधार निर्धारित कर पाना कठिन है फिर भी दानों में कुछ मौलिक अन्तर ऐसे हैं जिनके कारण तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत परिप्रेक्ष्य आधुनिक परिप्रेक्ष्य से अलग हो जाता है। [4] संपेक्ष में ये इस प्रकार हैं।

(1) अध्ययन के दृष्टिकोण के आधार: परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन क्षेत्र भी आधुनिक तुलनात्मक राजनीति से भिन्न है। परम्परागत राजनीति का अध्ययन औपचारिक कानूनी एवं संस्थात्मक था। इसमें संविधान द्वारा स्थापित संस्थाओं का ही तुलनात्मक अध्ययन होता था, जबकि आधुनिक तुलनात्मक राजनीति में औपचारिक कानूनी संस्थाओं के साथ साथ राजनीतिक व्यवहारों का अध्ययन भी सम्मिलित है।

(2)अध्ययन क्षेत्र का आधार: परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन क्षेत्र भी आधुनिक तुलनात्मक राजनीति से भिन्न है। परम्परागत राजनीति में केवल पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं को ही अध्ययन में सम्मिलित किया जाता था। इससे भी पहले केवल लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं के शासन ढाँचों का अध्ययन किया जाता था। यद्यपि जर्मनी व ईटली में अधिनायकवाद व रूस में साम्यवाद के उदय से इनको भी अध्ययन में सम्मिलित किया जाने लगा था, परन्तु फिर भी यह अध्ययन पाश्चात्य विश्व की शासन व्यवस्थाओं तक ही सीमित रहे आधुनिक तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र बृहत्त है। इसमें सम्पूर्ण विश्व की व प्रमुखतया नवोदित राज्यों की राजनीतिक व्यवस्थाओं को भी अध्ययन में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार दोनों में अध्ययन क्षेत्र के आधार पर अन्तर किया जाता है।

(3)विश्लेषण का आधार: इन दोनो में विश्लेषण पद्धति का भी अन्तर है। परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का शासन व्यवस्थाओं व सरकारों के केवल विवेचन मात्र से सम्बन्ध था। इसमें संविधान द्वारा स्थापित शासन तन्त्र का औपचारिक वर्णन मात्र किया जाता था। आधुनिक तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन विवेचनात्मक मात्र न रहकर विश्लेषणात्मक है। इनमें राजनीतिक व्यवस्थाओं के व्यवहारों का विश्लेषण प्रमुखतया राजनीतिक व्यवहारों को समझने के लिए किया जाता है।

(4)अध्ययन उद्देश्य का आधार: परम्परागत तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन सरकारों एवं संस्थाओं की व्यवस्था तक ही सीमित रहे। इनमें विचित्र राजनीतिक व्यवहार की प्रकृति को समझने के लिए इनकी व्याख्या ही काफी समझी गयी। परन्तु आधुनिक तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों

का प्रमुख ध्येय ही समस्याओं के समाधान का रहा है। इस प्रकार यह मुख्यतया समस्या-समाधानात्मक अध्ययन है।

अतएवं यह कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीति के परम्पराग एवं आधुनिक उपागमों में उपरोक्त दृष्टिकोण के आधार पर पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार दोनों ही प्रकार

के उपागमों की प्रकृति को समझने के लिए हमें इनका विस्तार से विवेचना करनी होगी

2.4 तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम

तुलनात्मक संस्थाओं एवं सरकारों के प्रारम्भिक प्रयासों को परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का नाम दिया जाता है। जिन विद्वानों के राजनीतिक अध्ययनों को परम्परागत परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित किया जाता है उनमें सर अर्नेस्ट बार्कर, हेराल्ड, जे. लास्की, कार्ल जे फ्रेडरिक व हरमन फाइनर प्रमुख हैं। इन लेखकों ने तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करके मुख्यतः पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया। इसके अर्न्तगत भी उन्होंने मुख्यतया लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं का ही अध्ययन किया तथा अलोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं से अपने आपको अलग रखा। इस दृष्टि से परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त सीमित एवं संकुचित था। इस दृष्टिकोण को भली-भाँति समझने के लिए इसकी सामान्य विशेषताओं को समझना होगा।

राय. सी. मैक्रीडीज के अनुसार, परम्परागत तुलनात्मक राजनीति केवल नाममात्र से ही तुलनात्मक थी वह तो विदेशी शासन विधानों का अध्ययन मात्र थी, जिसमें सरकारों की संरचना तथा संस्था के औपचारिक संगठनों का वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं कानूनी अध्ययन किया जाता था।[5] जीन बलोंडेल के अनुसार, इसमें लिखित संवैधानिक दस्तावेजों तथा कानूनी आलेखों के अध्ययन पर बल दिया जाता था।[6]

मेक्रेडीज ने तुलनात्मक राजनीति की पाँच विशेषताएँ बतलाई हैं:

(1) प्रधानतः अतुलनात्मक (2) प्रधानतः वर्णनात्मक (3) प्रधानतः संकीर्ण (4) प्रधानतः स्थिर (5) प्रधानतः प्रबन्धकीय।

2.5 तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत उपागम की सामान्य विशेषताओं

परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

(1) प्रधानतः अतुलनात्मक (Essentially Non-comparative): राय सी. मैक्रेडीज ने परम्परागत तुलनात्मक राजनीति अध्ययनों को मूलतः अतुलनात्मक बताया है। ये सभी अध्ययन एक दो देशों के ही अध्ययन थे। इनमें अध्ययन की इकाई किसी एक देश का संविधान होता था। उदाहरण के लिए ऑग एवं जिंक ने 'Governments of Europe' नामक कृति में ब्रिटेन, जर्मनी फ्राँस, इटली इत्यादि राष्ट्रों की संवैधानिक व्यवस्थाओं का ही अध्ययन किया था। इस अध्ययन का सम्बन्ध सामानान्तर संस्थाओं के अध्ययन तक सीमित रहा, जैसे- ब्रिटेन, फ्राँस तथा अमेरिका की व्यवस्थापिकाओं या कार्यपालिकाओं की तुलना करना। इसके साथ ही साथ यह अध्ययन अनेक देशों के संवैधानिक आधारों के वर्णन में ही व्यस्त रहे। इन लेखकों ने अलग-अलग राज्यों वे संवैधानिक व्यवस्थाओं का पृथक्-पृथक् अध्ययन भी किया। जैसे ब्रिटेन की राजनीतिक संस्थाओं का भी वर्णन करके उनकी फ्राँस की राजनीतिक संस्थाओं के विवेचन के साथ तुलना करना। वास्तव में इस प्रकार का वर्णन भी सही अर्थो में तुलनात्मक नहीं था तथा इसलिए मैक्रेडीज का कहना है, ''अब तक के तुलनात्मक अध्ययन केवल नाम से ही तुलनात्मक थे।

(2) प्रधानत: वर्णनात्मक ((Essentially Descriptive): परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन समसया समाधानात्मक या विश्लेषणात्मक न होकर वर्णनात्मक रहे हैं। परम्परागत विद्वानों की मान्यता थी कि संस्थाओं का वर्णन उनकी व्याख्या के लिए पर्याप्त है। इसलिए इन विद्वानों ने शासन व्यवस्थाओं का वर्णन करके विभिन्न शासनतन्त्रों के मध्य समानताओं एवं असमानताओं का स्पष्टीकरण ही किया। परन्तु इस बात की परवाह नहीं की कि यह समानताएँ या असमानताएँ किन कारणों से हैं? वस्तुतः वे राजनीतिक व्यवस्थाओं सरकारों के स्वरूपों एवं संस्थाओं के वर्णन से आगे नहीं बढ़े। इस दृष्टि से जेम्स टी. शाटवले की कृति 'Government of Continental Europe'प्रमुख हैं इस दृष्टि से परम्परागत तुलनात्मक राजनीति वर्णनात्मक ही रही है।

(3) प्रधानतः संकीर्ण ((Essentially Parochial)): परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन प्रधानतः पाश्चात्य राज्यों की शासन व्यवस्थाओं की संकीर्ण परिधि में ही बँधे रहे। सांस्कृतिक या भाषीय समानता के आधार पर ही यह लेखक एक राज्य से आगे बढ़कर दूसरे या तीसरे राज्य को सम्मिलित अध्ययन के लिए लेते थे। मुख्यतया ये अध्ययन यूरोप एवं अमेरिका तक ही सीमित रहे। ऐक्सटीन व ऐप्टर ने इस दृष्टिकोण का सार इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''परम्परागत दृष्टिकोण पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं तक सीमित रहा तथा प्रमुखतया एक संस्कृति संरूपण या समूह का ही इसमें अध्ययन का ही इसमें अध्ययन किया गया।[8]

(4) प्रधानतः स्थिर ((Essentially Static) :) परम्परागत उपागम में उन गतिशील कारकों का अध्ययन नहीं किया गया, जोकि विविध राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति तथा विकास का आधार होते हैं। परम्परागत विद्वानों ने कानूनी सन्दर्भ में राजनीतिक व्यवस्थाओं अध्ययन किया तथा उन तत्वों की अवहेलना की जो राजनीतिक परिवर्तनों तथा विकास की समस्याओं एवं दिशाओं से

सम्बन्धित होते हैं। उन्होंने उन परिस्थितियों एवं तत्वों का अध्ययन करना आवश्यक नहीं समझा जो किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में संसदीय प्रणाली अथवा अध्यक्षीय प्रणाली को सफल अथवा असफल बनाती है।

(5) प्रधानतः प्रबन्धकीय ((ESSENTIALLY MONOGRAPHIC STUDIES) : तुलनात्मक शासन से सम्बन्धित अधिकांश परम्परागत रचनायें लम्बे निबन्धों जैसी हैं। इन रचनाओं में किसी एक शासन व्यवस्था की संस्था अथवा उस व्यवस्था में किसी विशिष्ट संस्था का विवेचन किया गया है। जॉन मेरियट, आर्थर कीथ, जेम्स ब्राइस, सर आइवर जेनिंग्स, हेराल्ड लास्की, ए., वी. डायसी, राब्सन, वुडरो विल्सन, इत्यादि लेखकों की रचनाओं को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इन विद्वानों के अध्ययन विषयों में, अमेरिका राष्ट्रपति, ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था, ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल, अमेरिकी काँग्रेसी, फ्रेंच प्रशासकीय कानून, इत्यादि हैं।

(6) प्रधानतः आदर्शीकृत अध्ययन ((Predominantly Normative):परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन आदर्शपरक थे। वे कतिपय आदर्शपरक धारणाओं को राजनीतिक संस्थाओं के लिए कसौटी मानकर चलते हैं। परम्परागत विद्वान आदर्शपरक मान्यताओं जैसे - 'लोकतन्त्र सर्वश्रेष्ठ प्रणाली हैं, द्वि-दलीय व्यवस्था से ही लोकतन्त्र सफल रहेगा' इत्यादि बातों को कसौटी मानते हैं तथा इसी के आधार पर शासन व्यवस्थाओं की सफलता एवं असफलता का मूल्यांकन करते हैं। जहाँ-जहाँ इन मान्यताओं के अनुरूप संस्थाएँ तथा राजनीतिक व्यवस्थाएँ प्रचलित रही, वही इनके अध्ययन का आकर्षण बनी। यही कारण है कि वे पाश्चात्य लोकतन्त्र को अध्ययन का आदर्श विषय मानते रहे तथा अलोकतन्त्रीय व्यवस्थाओं को निरर्थक समझते रहे।

(7) प्रधानतः औपचारिक संस्थागत अध्ययन ((Excessively Formal Institutional): तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत अध्ययनों में राजनीतिक संस्थाओ का औपचारिक तथा कानूनी अध्ययन किया गया था। डायसी, मुनरो, ऑग एवं जिंक जैसे विद्वानों ने अपने अध्ययन औपचारिक संस्थाओं के विवेचन तक ही सीमित रखे। राय मैक्रेडीज के अनुसार, ''उन्होंने इस बात को जानने का प्रयत्न नहीं किया कि संविधान एवं राजनीतिक संस्थाएँ व्यवहार में किस प्रकार कार्य करती हैं।''[9]

परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की विशेषताओं का अध्ययन करने के उपरान्त उसकी अध्ययन पद्वतियों का भी विश्लेषण किया जाना आवश्यक है। वास्तव में तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की परम्परागत विधियों का सम्बन्ध इतिहास, नीतिशास्त्र, दर्शन एवं विधि की प्रधानता से रहा है। इस दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के प्रमुख उपागम इस प्रकार रहे हैं-

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागमः

(1) दार्शनिक पद्धति ((Philosophical Method) :) प्लेटो, रूसो, जे. एम. मिल आदि के द्वारा इस पद्धति को प्रमुख रूप से अपनाया गया है। प्लेटो द्वारा रिपब्लिक में आदर्श राज्य की कल्पना, थामस मूर के द्वारा यूटोपियन राज्य की कल्पना, लॉक द्वारा प्राकृतिक अधिकार की धारणा, रूसों द्वारा सामान्य इच्छा की धारणा का प्रतिपादन दार्शनिक पद्धति पर ही आधारित है। यह बात अलग है कि इन धारणाओं का प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध तुलनात्मक राजनीति से नहीं है, परन्तु न्याय स्वतन्त्रता तथा नागरिक दायित्वों के सम्बन्ध से उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

(2) ऐतिहासिक पद्वति ((Historical Method) : ऐतिहासिक पद्वति इस मान्यता पर आधारित है कि राजनीतिक संस्थाओं का निर्माण नहीं किया जातावरनवे विकास का परिणाम होती हैं। गिलक्राइस्ट के अनुसार, ''ऐतिहासिक पद्धति की इसी उपयोगिता के कारण अरस्तू के समय से इस पद्धति का प्रयोग किया जाता रहा है। लास्की, मैक्यावली, मॉण्टेस्क्यू, हीगल, कार्ल मार्क्स, हर्बर्ट स्पेंसर आदि ने किसी न किसी रूप में इस पद्धति का उपयोग किया है। सर हेनरी मेन तथा मैकाइवर ने इसका प्रयोग विकासवादी उपागम के रूप में किया है। इस उपागम में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यह व्यावहारिक राजनीति की समस्याओं को हल करने में असमर्थ है।

(3) औपचारिक एवं कानूनी विधि (Formal and Legal Method) : 19 वीं सदी में जर्मनी में औपचारिक एवं कानूनी विधि उभर कर सामने आयी। अमेरिका तथा ब्रिटेन में भी यह पद्धति लोकप्रिय होती चली गयी। इस सन्दर्भ में डायसी का 'Law of the Contitution' तुलनात्मक राजनीति के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। थियोडोर, वुल्से, वुडरो विल्सन, कार्टर हर्ज, न्यूमैन इत्यादि विद्वानों ने देश विदेश की कानूनी संहिताओं तथा संविधानों का विश्लेषण करके तुलनात्मक राजनीति को पुष्ट किया। औपचारिक तथा कानूनी आधार पर लिखी गयी अधिकांश पुस्तकें मात्र औपचारिक संस्थाओं तथा कानूनों के अध्ययन पर बल देती हैं। इस उपागम की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह सामाजिक आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों की उपेक्षा करता है।

(4) संरूपण विधि (The Configurative Method) :इस विधि के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य की राजनीतिक व्यवस्था को धुरी मानकर इसका अलग से अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत विविध प्रकार के आँकड़े तथा अन्य आवश्यक सामग्री एकत्रित करके तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है। इसके प्रमुख प्रतिपादकों में न्यूमैन कार्टर हर्ज,रोशर इत्यादि प्रमुख हैं। इस उपागम से तुलनात्मक विश्लेषण की विशिष्ट सामग्री उपलब्ध हो जाती है। फिर भी ये उपागम वर्णनात्मक एवं संकुचित मानी जाती है तथा इसमें आर्थिक सामाजिक कारकों की उपेक्षा की जाती है।

(5) समस्यागत विधि (Problem Oriented Method) : इस विधि के द्वारा समस्यागत क्षेत्रों का अध्ययन किया जाता है। कई विद्वानों ने इस उपागम के द्वारा शासन प्रणालियों की प्रचलित

समस्याएँ जैसे 'लोकतन्त्र तथा आर्थिक नियोजन में सम्बन्ध' 'द्वि-सदनात्मक व्यवस्थापिका का ह्रास', प्रदत्त व्यवस्थापन आदि का अध्ययन किया। यह उपागम तुलनात्मक विश्लेषण की दृष्टि से ठोस आधार प्रस्तुत करता है। इस उपागम को अधिक उपयोगी बनाने के लिए मनुष्यों के व्यवहार तथा राजनीतिक संस्थाओं एवं अन्य सामाजिक, आर्थिक कारकों में सम्बन्ध की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

(6) क्षेत्रीय उपागम (The Area Approach) : द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में क्षेत्रीय उपागम का प्रचलन बढ़ा। मैक्रेडीज के शब्दों में, ''कतिपय देशों के ऐसे समूहों को एक क्षेत्र माना जा सकता है जिनमें पर्याप्त सांस्कृतिक एक रूपता हो, ताकि उनकी राजनीतिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके।'' क्षेत्रीय उपागम के आधार पर लिखे गये ग्रंथों में आमण्ड एवं कोलमैन की पुस्तक "The Politics of Developing Areas', राबर्ट स्केलापिनो की कृति 'Democracy and Party Movement in War Japan, बेरिंग्टन मूर की कृति 'Politics-The Dilemma of,' डेविस की कृति 'Government and Politics in South East Asia' हरारी की कृति 'Government and Politics of Middle East' प्रमुख है।

इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि भौगोलिक आधार पर अधिक बल देता है और तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर यह सामान्य सिद्धान्त के निर्माण में उपयोगी नहीं सिद्व होता।

(7) संस्थागत-कार्यात्मक उपागम (Structural Functional Approach) : इस उपागम में राजनीतिक व्यवस्था के संरचनात्मक तथा कार्यात्मक पक्ष पर बल दिया जाता है। आमण्ड, हरमन फाइनर, के. सी. व्हीयर तथा कार्ल जे. फ्रेडरिक के अध्ययनों में इस उपागम को अपनाया गया है।

इस उपागम का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें राजनीति के गतिशील कारकों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।

2.6 परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की आलोचना(CRITICISM OF TRADITIONAL COMPARATIVE POLITICS)

परम्परागत तुलनात्मक राजनीति अपनी सीमाओं के कारण अनेक विसंगतियों का शिकार हुई है। मात्र लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के सहारे तुलनात्मक विश्लेषण सम्भव नहीं हो सकता। यही कारण है कि समय बीतने के साथ यह उपागम राजनीतिक व्यवहार की गतिशीलता को समझने में असमर्थ रहा तथा इसकी कमियाँ उजागर हो गयी। परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की आलोचना निम्न आधारों पर की जाती है:

(1) सही अर्थो में तुलना नहीं (Non-comparative in Real Terms) : परम्परागत अध्ययनों में अर्थपूर्ण तुलनाओं का प्रयास नहीं किया गया है। इसमें मात्र शासन प्रणालियों अथवा संस्थाओं के ऊपर ढाँचे की समानताओं एवं असमानताओं की तुलना की गयी अथवा अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना भारतीय प्रधानमन्त्री से की गयी जिसे सही अर्थो में तुलना नहीं कहा जा सकता। आमण्ड एवं पावेल के अनुसार, '' परम्परागत तुलनात्मक राजनीति, अलग-अलग राजनीतिक व्यवस्थाओं की विशिष्ट विशेषताओं पर प्रकाश डालने तक ही सीमित रही तथा व्यवस्थित तुलनात्मक विश्लेषण नाम मात्र का ही था।'[10] मैक्रेडीज के अनुसार, ''तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन अब तक केवल नाम मात्र से ही तुलनात्मक रहा है। अब तक केवल विदेशी सरकारों, उनके ढाँचे तथा औपचारिक संगठन का ऐतिहासिक वर्णनात्मक वैधानिक अध्ययन ही रहा है जबकि तुलनात्मक राजनीति को सिद्धान्तों ढाँचों तथा वास्तविक व्यवहार से अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहिए।[11] कहने का तात्पर्य यह है कि परम्परागत राजनीति का दृष्टिकोण वास्तव में तुलनात्मक नहीं था।''

(2) अराजनीतिक व्यवहार की उपेक्षा (Lgnoring Non-Political Behaviour):तुलनात्मक राजनीति का दूसरा आक्षेप यह लगाया जाता है कि इसमें राजनीतिक व्यवहार के अराजनीतिक तत्वों की उपेक्षा की गयी। इसमें शासन तन्त्र की संरचनात्मक एवं कानूनी व्यवस्थाओं का ही अध्ययन किया गया। आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों का वस्तुतः राजनीतिक व्यवस्था पर इतना अधिक प्रभाव होता है कि उनके समझे बिना राजनीतिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। आमण्ड एवं पावेल के अनुसार ''इनका मुख्य जोर संस्थाओं, कानूनों, विधियों व राजनीतिक विचारों तथा विचारधाराओं पर ही था तथा उनके कार्य, अन्तःक्रिया व्यवहार व उपलब्धियों की उपेक्षा की गयी।''[12]

(3) विश्लेषण का आभाव (Lack of analysis) : परम्परागत अध्ययन न तो विश्लेषणात्मक, थे तथा न ही व्याख्यात्मकवरनकेवल वर्णनात्मक थे। वे राजनीतिक संस्थाओं के मूल में अनतर्निहित राजनीतिक प्रक्रियाओं, दबाव व हित समूहों तथा व्यवहार को अपने अध्ययन में सम्मिलित नहीं करते अन्तनिर्हित जिनके माध्यम से वास्तव में तुलना सम्भव है। यह भी एक विवादास्पद प्रश्न है कि फ्रांस रूस, ब्रिटेन, अमेरिका या स्विटजरलैण्ड की ही व्यवस्था को क्यों अध्ययन के लिए चुना गया? परम्परागत तुलनात्मक अध्ययनों में जो कुछ तुलना की गयी है, उनमें संघीय एवं एकात्मक व्यवस्था, संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक व्यवस्था, प्रजातन्त्र व अधिनायकवाद आदि के गुण-दोषों तथा उनके बीच समानताओं एवं असमानताओं को दर्शाया गया है।

(4) संकुचित अध्ययन (Norrow-minded Study Precision) : परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन संकुचित कहे जाते हैं। परम्परागत लेखकों द्वारा अलोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं गैर-पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं, राजनीतिक व्यवस्थाओं के अराजनीतिक आधारों तथा राजनीतिक

व्यवहारों की अवहेलना की गई है। तुलनात्मक राजनीति पर लिखी गयी अधिकांश पुस्तकों में लोकतान्त्रिक व विशेष तौर से पश्चिमी यूरोपीय संस्थाओं का ही वर्णन है। कार्ल फेड्रिक जैसे लेखक ने भी अपने आपको विचारधारा एवं संस्थाओं के मध्य अन्तर्क्रियाओं तक ही सम्बन्धित रखा है। उनकी प्रमुख पुस्तक 'Constitution Government and Democracy' में राजनीतिक व्यवस्थाओं के गुणों, विशेषताओं या लक्षणों का कोई समन्वय नहीं पाया जाता है। यह दृष्टिकोण वास्तव में संकुचित है।

(5) अध्ययन पद्धतियों के परिष्करण का आभाव (Lack of Sophisticated Study Methods) :परम्परागत तुलनात्मक अध्ययनों में ऐतिहासिक तथा वैधानिक पद्धति पर जोर दिया गया है। इन पद्धतियों की सीमाओं के उभरने पर भी नयी विश्लेषण प्रविधियों के प्रयोग का प्रयत्न नहीं किया गया। यही कारण है कि इसमें अन्तरअनुशासनात्मक विश्लेषण का प्रयोग सम्भव नहीं हो पाया। इसका परिणाम यह हुआ है कि इसमें अध्ययन पद्धतियों का सही ढंग से परिष्करण नहीं हो पाया।

(6) अध्ययन उद्देश्य की दृष्टि से लक्ष्य का आभाव (Aims of Study Lacking) : परम्परागत विद्वान केवल राजनीतिक संस्थाओं के वर्णन तक ही सीमित रह गये। उनका लक्ष्य सिद्वान्त निर्माण अथवा समस्या समाधान की ओर न रहा। आलोचकों की मान्यता है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं व व्यवहारों की जटिलता व्यापक उद्देश्य अनिवार्य बना देती है परन्तु कार्ल जे. फेड्रिक, फाइनर, माइकेल व डुवर्जर को छोड़कर अन्य विद्वान तुलनाओं का लक्ष्य लेकर संकुचित उद्देश्य की प्राप्ति में उलझते रह गये। इसका परिणाम यह सामने आया कि वे सिद्धान्त निर्माण के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहे।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि परम्परागत तुलनात्मक राजनीति में कई कमियाँ थीं। राज्य की प्रकृति, क्षेत्र एवं कार्यो में वृद्वि ने इस समस्या को और बढ़ा दिया है। राज्य के कार्यो में आये बदलावों ने सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को विश्लेषण की इकाई बना दिया है। इस दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र भी बदल गया है। इसके लिए विभिन्न नई पद्धतियों एवं आयामों का विश्लेषण किया जाने लगा है। इनका अध्ययन अगले अध्याय में किया जायेगा।

अभ्यास प्रश्न

1. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के कितने उपागम हैं ?

2. तुलनात्मक राजनीति के जनक किसे माना जाता है ?

2.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त यह जानने में सफलता मिली कि यद्यपि परम्परागत तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं को समझने में सहायक नहीं रहा फिर भी विषय की दृष्टि से उनके योगदान को हम नजर अंदाज नहीं कर सकते। इस दृष्टिकोण के माध्यम से राजनीति के अनेक तथ्य संकलित कियो गये जो बाद में राजनीतिक विश्लेषण का आधार बिन्दु बने। इस अध्ययनों में राजनीतिक व्यवस्थाओं की जटिलता का आभास मिला, जो अंततः आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण में सहायक बना। एलेन बाल के शब्दों में, ''परम्परागत राजनीतिक विद्वानों द्वारा खड़े किये गये विचारों के महल चाहे कितनी ही कमजोर बुनियाद पर क्यों न हों, उनकी कृतियों द्वारा ही हमें सर्वप्रथम तुलनात्मक सरकार के बारे में जानकारी होती है।''[13]

2.9 शब्दावली

पारंपरिक दृष्टिकोण, तुलनात्मक राजनीति का वह दृष्टिकोण जो मुख्यतः संस्थागत ढांचे (जैसे – संसद, कार्यपालिका, न्यायपालिका) के औपचारिक अध्ययन पर आधारित होता है।

संवैधानिक विश्लेषण, किसी देश के संविधान की मूलभूत धाराओं, शक्तियों के वितरण और शासन तंत्र के स्वरूप का अध्ययन।

कानूनी संस्थागत दृष्टिकोण, यह दृष्टिकोण कानूनों, राजनीतिक संस्थाओं और उनके कार्यों के औपचारिक स्वरूप पर केंद्रित होता है।राजनीतिक संस्थाएँ वे संगठित ढाँचे जो किसी राज्य के राजनीतिक निर्णयों को निर्मित, लागू और नियंत्रित करते हैं (जैसे – विधायिका, कार्यपालिका)।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. दो , 2. अरस्तू

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.Ecksten and After (Eds.) Comparative Politics : A Reader, Free Press, New York, (1963) p.3.

2.R.C. Macridis, A Survey of the field of Comparative Government' in Jean Blondel, Comparative Government, p. XI.

3.डॉ. सी. बी. गेना, पूर्वोक्त, 86-87.

4.सी. बी. गेना, पूर्वोक्तए 88-91.

5.डॉ. सी. बी. गेना, पूर्वोक्त, 115-127

6.Jean Blondel, Comparative Government : A Reader, (1969), pp.19.

7.Roy C. Macridas, The Study of Comparative Government, Roulbday, New Yark (1955) p.7

8.Eckstein and After, Comparative Politics, A Reader Free Press, New York. 1963,p.3.

9.R.C. Macridis, Op. cit. p. 9.

10.Almond and Powell, Comparative Politics : A Developmenental Approach, Little Brown, Boston (1966), p.2.

11.Roy C. Macridis, Op. cit. p.7.

12.Almond and Powell, Op. cit. p.3.

13. Almond and Powell, Op. cit. p.3.

2.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परम्परागत तुलनात्मक राजनीति के विशेषताओं की विवेचना कीजिये |

2. पारंपरिक तुलनात्मक राजनीति के विभिन्न दृष्टिकोणों की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

3. तुलनात्मक राजनीति के पारंपरिक दृष्टिकोण की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। इसके प्रमुख गुणों, सीमाओं तथा प्रासंगिकता पर विचार प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 3 :तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम

3.4 आधुनिक उपागमों का विकास

3.5 आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की विशेषताएँ

3.6 आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की आलोचना

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन राजनीतिक विश्लेषण की दृष्टि से अधिक सहायक न रह सके। यही कारण है कि राजनीतिक वास्तवितकताओं, संस्थाओं एवं व्यवहारों को समझने के लिए नये-नये उपागमों की खोज की जाने लगी। इन नये उपागमों को आधुनिक उपागमों की संज्ञा दी जाने लगी।

एक राजनीतिक व्यवस्था में संरचनात्मक तथा कार्यात्मक दोनों ही दृष्टि से अनेक प्रवृतियाँ उभरकर सामने आती हैं। इसके अन्तर्गत सरकार के विभिन्न अंगों-कार्यपालिका, व्यवस्थापिका न्यायपालिका, नौकरशाही इत्यादि का विश्लेषण होता है। दूसरी ओर इसमें राजनीतिक दल दबाव समूह एवं विभिन्न हित समूह होते हैं। साथ ही साथ इसमें मूल्यों एवं विश्वासों का भी योगदान होता है जो समाज के आधार स्तम्भ के रूप में कार्य करते हैं। इस दृष्टि से 20 वीं सदी में राजनीति विज्ञान के

अध्ययन एवं विश्लेषण के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। इस दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में अनेक आधुनिक उपागम उभरकर सामने आये हैं तथा अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से सराहनीय योगदान दिया है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्याय के उपरान्त

- तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम के विविध पक्षों के बारे में जान सकेंगे |
- आधुनिक उपागमों का विकास के सम्बन्ध में जान सकेंगे |
- आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे

3.3 तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम

बीसवीं सदी में आधुनिक अध्ययनों के अन्तर्गत कई रचनायें उभरकर सामनें आयीं, जिनमें **ग्राह्य वालास की रचना 'Human Nature in Politics' आर्थर बेंटले की रचना, The Process of Government' डेविड ह्यमैन की रचना 'The Government Process'** प्रमुख हैं। इन रचनाओं से एक बात साफ उभरकर यह सामने आयी हैं कि अब राजनीतिक संस्थाओं की संरचनाओं की अपेक्षा उनके व्यवहार पर अधिक बल दिया जाने लगा है। राजनीतिक विश्लेषण के लिए अब अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान जैसे सामाजिक विज्ञानों की खुलकर सहायता ली जाने लगी है। इसके परिणामस्वरूप राजनीति विज्ञान में भी अन्र्तअनुशासनात्क अध्ययन पद्धति का ; (inter-disciplinary) सूत्रपात हुआ है। इस नयी अनुभववादी पद्धति के परिणामस्वरूप राजनीति विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र अधिक विस्तृत एवं बहुआयामी हो गया है। इस दिशा में योगदान देने वाले प्रमुख विद्वानों में रार्बट के. मर्टन, टालकोट पारसोन्स, डेविड ईस्टन, आमण्ड, कार्ल डायच, डेविड ऐफ्टर, एडवर्ड शिल्स, लूसियन ड्ब्ल्यू पाई, इत्यादि का नाम सम्मिलित किया जा सकता है।

3.4 आधुनिक उपागमों का विकास (Devlopment of Modern Perspective)

तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागमों की विशेषताओं एवं लक्षणों का विवेचन करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं की जटिलताओं का उद्भव कैसे हुआ तथा पुराने उपागमों की अपेक्षा नये उपागमों की आवश्यकता क्यों अनुभव की गयी? आमण्ड एवं पावेल के अनुसार , परम्परागत तुलनात्मक राजनीति की सर्वत्र लोकतन्त्र के प्रसार में आस्था धूमल हो गयी

थी। वस्तुतः द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त परम्परागत उपागमों का महत्व कम होता गया तथा आधुनिक विधियों एवं उपागमों का महत्व बढ़ता गया।

आमण्ड तथा पावेल ने अपनी पुस्तक 'Comparative Politics : A Developmental Approach'में इस परिवर्तन के लिए तीन कारणों का उत्तरदायी ठहराया है:[1]

(1) एशिया, अफ्रीका तथा मध्य-पूर्व में राष्ट्रीय विस्फोट जिसमें विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों, सामाजिक संस्थाओं व राजनीतिक विशेषताओं वाले अनेक राष्ट्रों का राज्यों के रूप में उदय हुआ।

(2) अटलांटिक समुदाय के राष्ट्रों के प्रभुत्व का अंत तथा अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति व प्रभाव का उपनिवेशों एवं अर्ध-उपनिवेशी क्षेत्रों में प्रसार एवं विस्तार हुआ।

(3) साम्यवाद का राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था की संरचना व अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बदलने के संघर्ष में एक शक्तिशाली प्रतियोगी के रूप में उभरना महत्वपूर्ण रहा।

वास्तव में तुलनात्मक राजनीति का परम्परागत दृष्टिकोण बदलती हुई परिस्थितियों में राजनीतिक यथार्थ की गत्यात्मकता को समझने में असमर्थ सिद्ध हुआ तथा नयी प्रविधियों, पद्धतियों व दृष्टिकोणों का प्रयोग अनिर्वाय हो गया।

मैक्रेडीज का विचार है कि तुलनात्मक राजनीति का आधुनिक दृष्टिकोण अधिक परीक्षण करने वाला, अधिक खोजबीन करने वाला तथा अधिक व्यवस्थित है। इसका लक्ष्य राजनीतिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं तथा व्यवहारों का उसके मूल में जाकर परीक्षण करना है।

आमण्ड एवं पावेल के अनुसार, तुलनात्मक राजनीति का आधुनिक परिप्रेक्ष्य मुख्य रूप से नयी पेचीदगियों को समझने नवीन बौद्धिक प्रवर्तन लाने तथा एक नयी बौद्धिक व्यवस्था की स्थापना की प्रवृतियों की चर्चा की है जो चार प्रकार की हैं:

(1) अधिक व्यापक विषय-क्षेत्र की खोज **(The Search for More Comprehensive, Subject):** आधुनिक तुलनात्मक राजनीति में अधिक व्यापक विषय-क्षेत्र की तलाश की गई है तथा तुलनात्मक राजनीति को संकीर्णता के दायरे से निकालकर व्यापकता के सन्दर्भ में लाने का लक्ष्य रखा गया है। बदलते हुए परिवेश में लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों के साथ-साथ निरंकुश शासन व्यवस्थाओं का यूरोपीय देशों की शासन व्यवस्थाओं के साथ-साथ विकासशील देशों की शासन व्यवस्थाओं का, पूँजीवादी देशों की राजनीतिक प्रक्रियाओं के साथ-साथ साम्यवादी देशों की राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है। इस दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र व्यापक होता चला गया है।

(2) यर्थाथवाद की खोज **(The Search for Realism):** तुलनात्मक राजनीति में यथार्थवाद की खोज की प्रवृत्ति परिवर्तित राजनीति का सीधा परिणाम है। यह कानून, विचारधारा, सरकारी संस्थाओं व संवैधानिक संरचनाओं के अध्ययन से आगे बढ़कर उन सब संरचनाओं का परीक्षण करता है जो राजनीति तथा नीति निर्धारण में अपना प्रभाव डालती हैं। आधुनिक तुलनात्मक राजनीत राज्य तथा सरकार के औपचारिक अंगों के अध्ययन के साथ-साथ राजनीतिक प्रक्रियाओं, राजनीतिक दलों, हित समूहों, चुनाव प्रक्रियाओं, राजनीति संचार, अभिजात्य वर्ग शक्ति आदि के अध्ययन पर भी बल देती है। राजनीति की इस प्रवृति के विकास में व्यवहारवादियों का महत्वपूर्ण योगदान है। जो वास्तविक राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन पर बल देते हैं।

(3) परिशुद्धता की खोज **(The Search for Precision):** तुलनात्मक राजनीति में सुनिश्चित निष्कर्ष निकालने के लिए वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग की प्रवृत्ति पायी जाती है। अब निर्देशन सर्वेक्षण द्वारा राजनीतिक व्यवस्थाओं के लक्षणों, राजनीतिक संस्कृतियों, सामाजीकरण व राजनीतिक प्रक्रियाओं को परिमाणात्मक तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण करके समझने का प्रयास किया जाता है। इसके लिए कम्प्यूटर, सांख्यिकीय तथा गणितीय पद्धतियों का प्रयोग किया जा रहा है।

(4) बौद्धिक अनुक्रम की खोज **(The Search for Intellactual Order) :** तुलनात्मक राजनीति में नयी अवधारणाओं की खोज नया बौद्धिक अनुक्रम ; (Theoretical Order) स्थापित करने के लिए की जा रही है। परम्परावादी शब्दों जैसे राज्य, लोकतन्त्र क्रान्ति, फासीवाद इत्यादि का राजनीतिक शोध की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रह गया है। उसके स्थान पर राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक संरचना, राजनीतिक विकास, राजनीतिक संस्कृति, राजनीति आधुनिकीकरण जैसी अवधारणाओं का प्रचलन हुआ। इसके अतिरिक्त ज्यों-ज्यों राजनीतिक व्यवस्था का राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्थाओं की आन्तरिक प्रक्रियाओं तथा गतिविधियों पर प्रभाव स्वीकार किया जाने लगा है, त्यों-त्यों तुलनात्मक राजनीति एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अलगाव कम करने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है। यह तुलनात्मक राजनीति का आधुनिक प्रवृत्ति का परिचायक है।

3.5 आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की विशेषताएँ (Characters of Modern Comparative Politics)

राजनीति विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में हुए परिवर्तनों ने तुलनात्मक राजनीति के विश्लेषण को नये आयाम प्रदान किये हैं। इस दृष्टि से नये उपागमो का सृजन किया गया है। इसमें शासनों का औपचारिक संस्थागत व नियमबद्ध अध्ययन न करके उसे कुछ आधारभूत प्रश्नों से जोड़ा गया है। इसके अध्ययन की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है:

(1) मूलतः तुलनात्मक **(Largely Comparative in Approach) :** आधुनिक तुलनात्मक राजनीति मूलतः तुलनात्मक हैं। इसमें राजनीतिक व्यवस्थाओं के ऊपरी ढाँचे की ही तुलना नहीं होती अपितु राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा गैर राजनीतिक कारकों की भी तुलना होती है। ऐप्टर के अनुसार 'आधुनिक तुलनात्मक राजनीति के अन्तर्गत औपचारिक संस्थाओं के साथ-साथ राजनीतिक प्रक्रियाओं, राजनीतिक व्यवहारों तथा राजनीति को प्रभावित करने वाले अराजनीतिक तत्वों का भी अध्ययन किया जाता है।'

(2) व्यापकतम विषय-क्षेत्र **(Extensive in Scope) :** आधुनिक तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र काफी व्यापक है। इसमें औपचारिक वैधानिक शासन अंगों के साथ-साथ राजनीतिक प्रक्रियाओं, राजनीतिक व्यवहार व राजनीति को प्रभावित करने वाले अराजनीतिक तत्वों का अध्ययन किया जाता है। इसमें यूरोपीय देशों की शासन व्यवस्थाओं के साथ एशिया, अफ्रीका के विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का भी अध्ययन किया जाता है। वर्तमान राजनीतिक संस्थाओं को ऐतिहासिक सन्दर्भ में समझने का प्रयास भी आधुनिक तुलनात्मक राजनीति में किया जाता है। राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्थाओं को एक अन्तराष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था से सम्बद्ध मानकर इनका एक दूसरे पर प्रभाव व उनकी पारस्परिकता भी तुलनात्मक अध्ययनों में देखी जाने लगी है। तुलनात्मक राजनीति का व्यापक विषय-क्षेत्र राजनीति विज्ञान में इसके बदले महत्व का परिचायक है।

(3) विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक **(Analytical and Explanatory) :** राजनीतिक व्यवस्थाओं के विवरण मात्र से राजनीति व्यवस्थाओं की सही प्रकृति को समझना सम्भव नही है। यही कारण है कि आधुनिक तुलनात्मक राजनीति विवरणात्मक न होकर समस्या समाधानात्मक व्याख्यात्मक तथा विश्लेषणात्मक है। सी. बी. गेना के अनुसार, ''विश्लेषणात्मक मार्ग किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को समझने का प्रयास करता है तथा उन महत्वपूर्ण संरचनाओं का परिचय देता है जिनके माध्यम से एक राजनीतिक व्यवस्था कार्य करती है तथा अन्य व्यवस्था के समान अथवा असमान बनती है।''[2] विश्लेषणात्मक पद्धति से परिकल्पनाओं की जाँच की जाती है तथा जाँच के आधार पर उन परिकल्पनाओं का धारण संशोधन या खण्डन किया जा सकता है। सभी प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययनों में विश्लेषण का यह ढंग अनिवार्य है।

(4) व्यवस्थावादी अध्ययन **(System Oriented Study) :** इस दृष्टिकोण में संवैधानिक तन्त्र के अध्ययन के स्थान पर राजनीतिक व्यवस्था को ही आधार मानकर राजनीतिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। आधुनिक विद्वानों ने हर राजनीतिक व्यवस्था की तीन विशेषताएँ स्वीकार की हैं - बाध्यकारी शक्ति या सामर्थ्य शक्ति का एकाधिकार तथा शक्ति के प्रयोग की साधनयुक्तता। इन तीनों विशेषताओं में से एक या तीनों का सन्दर्भ एक राजनीतिक व्यवस्था को अन्य राजनीतिक व्यवस्था या व्यवस्थाओं से भिन्न बनाता है तथा इन्हीं के आधार पर

किसी राजनीतिक व्यवस्था की वैधता या अवैधता का ज्ञान होता है। राजनीतिक व्यवस्था में हर संस्था या प्रक्रिया की वास्तविकता को तभी समझा जा सकता है जब राजनीति का अध्ययन सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से किया जाये। राजनीतिक व्यवहार की वास्तविक गत्यात्मकता को समझने के लिए ही आधुनिक तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन व्यवस्था अभिमुखी होता जा रहा है।

(5) सामाजिक सन्दर्भ अभिमुखी **(Social Context Oriented) :** तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक लेखक राजनीतिक प्रक्रियाओं का सामाजिक शक्तियों की अन्तःक्रिया से गहरा सम्बन्ध स्वीकार करने लगे है। अब तुलनात्मक राजनीति के लेखक, उन सब सामाजिक संस्थाओं, शक्तियों तथा परम्परागत बन्धनों का, जो राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव या प्रभाव डालते हैं, अध्ययन राजनीतिक दृष्टिकोण से करते हैं। ऐसी स्थिति में राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति सामाजिक सन्दर्भ में ही सही रूप में समझी जा सकती है।

(6) व्यवहारवादी अध्ययन उपागम **(Behavioural Approach of Study) :** आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की सबसे प्रमुख विशेषता व्यवहारवादी अध्ययन दृष्टिकोण को स्वीकार करना है। व्यवहारवाद राजनीतिक तथ्यों की व्याख्या एवं विश्लेषण को राजनीतिक व्यवहार पर केन्द्रित करता है। राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन से यह राजनीति उसकी संरचनाओं प्रक्रियाओं आदि के बारे में वैज्ञानिक व्याख्यायें प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। दूसरी ओर इसमें अन्तर अनुशासनात्मक शोध एवं विश्लेषण पर बल दिया जाता है। यह अनुभवात्मक एवं क्रियात्मक है तथा इसमें व्यक्तिनिष्ठ मूल्यों, मानकीय विवरणों, कल्पनाओं आदि का स्थान नहीं है। इस दृष्टि से यह आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को अधिक वैज्ञानिक बनाता है तथा परम्परागत राजनीति को सर्वथा अलग कर देता है।

3.6 आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की आलोचना (Crititism of Modern Comparative Politics)

आधुनिक तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र का विस्तार व परिष्कृत प्रविधियों की खोज तथा नये-नये अध्ययन दृष्टिकोणों का उपयोग तथा नयी-नयी अवधारणाओं का निर्माण अनुशासन को राजनीति विज्ञान के अनुरूप बना देता है। **जी. के. राबर्टस** के अनुसार 'तुलनात्मक राजनीति या तो सब कुछ है या कुछ भी नहीं है।'[3] इसके विषय-क्षेत्र का एक सीमा से ज्यादा विस्तार इसे राजनीति विज्ञान बना देता है तथा इससे बहुत उपयोगी निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। यही कारण है कि अनेक राजनीतिक विचारक परम्परागत दृष्टिकोण को ही अपनाने की बात कहने लगे हैं। संपेक्ष में इसकी आलोचना निम्न आधारों पर समझी जा सकती है:

(1) विषय-क्षेत्र में अत्याधिक दुःसाध्य **(Unwidely in Scope) :** राजनीतिक व्यवहार की समस्त क्रियाओं को अध्ययन में सम्मिलित करना ज्ञान की वर्तमान सीमाओं में सम्भव नहीं है। वास्तव में तुलनात्मक राजनीति एक ऐसी दुविधा के दौर से गुजरती हुई दिखाई देती है जिसमें एक ओर विषय-क्षेत्र को सीमित रखना आवश्यक लगता है जबकि दूसरी ओर नये-नये आयामों व अध्ययन दृष्टिकोणों को अपनाना राजनीतिक व्यवहार की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने के लिए अनिवार्य हो जाता है। इससे आधुनिक तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र इतना व्यापक एवं दुःसाध्य बन गया है कि आलोचक उसको व्यवस्थित ढंग से समझना सम्भव नहीं मानते। हाल के वर्षों में डेविड ऐप्टर, जीन ब्लोंडेल, एम. ई. फाइनर, आमण्ड एवं कोलमैन तथा राबर्टस इत्यादि लेखक इसके विषय क्षेत्र को शासन तन्त्र एवं राजनीतिक व्यवस्था की परिधि में सीमित करने की बात करने लगे हैं।

(2) नयी अवधारणाओं की अस्पष्टता **(Vagueness of New Concerpts) :** आलोचकों का कहना है कि आधुनिक तुलनात्मक राजनीति में नई अवधारणाओं जैसे राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक संस्कृति, सामाजीकरण, राजनीतिक विकास, इत्यादि पर इतना अर्थ विभेद है कि हर विद्वान इनका अपने ढंग से अर्थ निकालने का प्रयास करता है। नयी अवधारणाओं की अस्पष्टता के कारण आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की उपादेयता शंका के घेरे में बनी हुई है। यदि तुलनात्मक राजनीति को स्वतन्त्र अनुशासन के दायरे में लाना हैतो इसके लिए सर्वमान्य एवं समान अर्थी अवधारणाओं की रचना करनी होगी।

(3) व्यवहारवादी अध्ययन पर अधिक बल **(Excessively Behavioural) :** आधुनिक तुलनात्मक राजनीति व्यवहारवादी उपागमों पर अत्यधिक बल देती है। आलोचकों के अनुसार, व्यवहारवाद ने तुलनात्मक राजनीति को अत्यधिक नुकसान पहुँचाया है। इसकी सबसे बड़ी कमजोरी उसकी मूल्य निरपेक्षता है जिसे अर्नाल्ड ब्रेख्त ने बीसवीं सदी की दुखान्त घटना कहा है। पुनः व्यवहारवाद आनुभाविक तथ्यों एवं आँकड़ों को इतना अधिक महत्व देता है कि अन्य तथ्य गौण हो जाते हैं। इसने तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र को ही दिग्भ्रमित कर दिया है।

(4) विकासशील राज्यों पर अत्याधिक बल **(Excessive Emphasis upon Developing Countries) :**आधुनिक तुलनात्मक राजनीति वस्तुतः विकासशील राज्यों के तुलनात्मक अध्ययन में उलझ गयी है। वर्तमान समय में ऐसे अध्ययनों की बाढ़-सी आ गयी है। सत्य बात तो यह है कि विकासशील राज्यों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में अस्थिरतायें इतनी अधिक हैं कि इनके प्रति अनावश्यक जागरूकता तर्क संगत नहीं है।

आधुनिक तुलनात्मक राजनीति में कई कमियों के बावजूद राजनीतिक व्यवहारों के बारे में सुनिश्चित स्पष्टीकरण एवं व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया है। तुलनात्मक राजनीति में नये प्रतिमानों का

प्रचलन करके नये दृष्टिकोण प्रतिपादित किये गये। वस्तुतः आधुनिक तुलनात्मक अध्ययनों ने राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन में रूचि बढ़ाई है।

अभ्यास प्रश्नः

1. संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण का मुख्य उद्देश्य क्या है?

A. शक्ति का तुलनात्मक विश्लेषण
B. केवल लोकतंत्रों का अध्ययन
C. संरचनाओं और उनके कार्यों की तुलना
D. ऐतिहासिक विकास का अध्ययन

2. निम्नलिखित में से किस विद्वान ने राजनीति को एक प्रणाली के रूप में समझने का प्रयास किया?

A. गैब्रियल आलमोंड
B. डेविड ईस्टन
C. ल्यूसियन पाई
D. सिडनी वर्बा

3. राजनीतिक संस्कृति का विचार किससे संबंधित है?

A. राजनीतिक दलों की संरचना से
B. नागरिकों की राजनीतिक मान्यताओं और मूल्यों से
C. सैन्य तंत्र से
D. संविधान निर्माण प्रक्रिया से

4. आधुनिक तुलनात्मक राजनीति में किस सिद्धांत को सबसे अधिक वैज्ञानिक माना जाता है?

A. नैतिकता सिद्धांत
B. व्यवहारवाद
C. आदर्शवाद
D. नव-संस्थावाद

3.7 सारांश

आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की सबसे प्रमुख विशेषता व्यवहारवादी अध्ययन दृष्टिकोण को स्वीकार करना है। व्यवहारवाद राजनीतिक तथ्यों की व्याख्या एवं विश्लेषण को राजनीतिक व्यवहार पर केन्द्रित करता है। राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन से यह राजनीति उसकी संरचनाओं प्रक्रियाओं आदि के बारे में वैज्ञानिक व्याख्यायें प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। दूसरी ओर इसमें अन्तर अनुशासनात्मक शोध एवं विश्लेषण पर बल दिया जाता है। यह अनुभवात्मक एवं क्रियात्मक है तथा इसमें व्यक्तिनिष्ठ मूल्यों, मानकीय विवरणों, कल्पनाओं आदि का स्थान नहीं है। इस दृष्टि से यह आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को अधिक वैज्ञानिक बनाता है तथा परम्परागत राजनीति को सर्वथा अलग कर देता है। आधुनिक तुलनात्मक राजनीति में कई कमियों के बावजूद राजनीतिक व्यवहारों के बारे में सुनिश्चित स्पष्टीकरण एवं व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया है। तुलनात्मक राजनीति में नये प्रतिमानों का प्रचलन करके नये दृष्टिकोण प्रतिपादित किये गये। वस्तुतः आधुनिक तुलनात्मक अध्ययनों ने राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन में रूचि बढ़ाई है।

3.8 शब्दावली

व्यवस्थागत दृष्टिकोण (System Approach) डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित यह दृष्टिकोण राजनीति को एक खुली प्रणाली के रूप में देखता है जो इनपुट (मांगें और समर्थन) लेकर आउटपुट (नीतियाँ और निर्णय) उत्पन्न करता है।

संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural-Functional Approach) गैब्रियल आलमोंड और बी. जी. पॉवेल द्वारा विकसित यह दृष्टिकोण विभिन्न राजनीतिक संरचनाओं और उनके कार्यों की तुलना करता है।

कारणात्मक व्याख्या (Causal Explanation) तुलनात्मक राजनीति में किसी राजनीतिक परिघटना के कारणों की पहचान और विश्लेषण करना। प्रयोगात्मक दृष्टिकोण (Experimental Approach)

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (C), 2. (B), 3. (B), 4. (B)

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.G.A. Almond and G. B. Powell, Comparative Politics : A Developmental Approach, (1972), p. 5.

2.डॉ. सी. बी. गेना, पूर्वोक्त, p103.

3.G.K. Roberts. 'Comparative Politics, Today Government and Opposition, Vol., VII No. 1. Winter, 1972, p. 38.

3.11 सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम की विशेषताओं की विवेचना कीजिये |

2. आमण्ड एवं पावेल द्वारा चिन्हित तुलनात्मक राजनीति की चार आधुनिक प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

3. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में प्रयुक्त दृष्टिकोणों एवं पद्धतियों की आलोचना के प्रमुख आधार क्या हैं? स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4 मार्क्सवादी व लेनिनवादी उपागम

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की अध्ययनात्मक आवश्यकता

4.4 मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की विशेषताएँ

4.5 मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की व्यावहारिक प्रयुक्तता

4.6 मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की उपयोगिता

4.7 निष्कर्ष

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.9 शब्दावली

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना:

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उपनिवेशवाद की जकड़न से मुक्त होकर एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अनेक देशों ने स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में जन्म लिया। इन नवोदित राष्ट्रों ने पश्चिमी लोकतांत्रिक मॉडल से अलग सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचे विकसित किए। ऐसे में तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए यह एक निर्णायक मोड़ था। पारंपरिक पश्चिमी सिद्धांतों और संस्थागत ढांचों की व्याख्या इन नए राजनीतिक संदर्भों में अप्रासंगिक सिद्ध होने लगी।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण ने इस चुनौती को गंभीरता से लिया और पूंजीवादी संरचनाओं से इतर सामाजिक वर्ग, राज्य की भूमिका, उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व और वैकल्पिक राजनीतिक व्यवस्थाओं की व्याख्या प्रस्तुत की। यह दृष्टिकोण समाज में व्याप्त आर्थिक असमानताओं, वर्ग संघर्ष, और राज्य की वर्गीय प्रकृति को केंद्र में रखकर राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं की व्याख्या करता है।

इस इकाई में हम मार्क्सवादी और लेनिनवादी राजनीतिक चिंतन की मूल अवधारणाओं, तुलनात्मक राजनीति में इसके प्रयोग, नवस्वतंत्र राष्ट्रों के संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता, तथा इसके आलोचनात्मक मूल्यांकन का अध्ययन करेंगे। साथ ही यह भी देखा जाएगा कि किस प्रकार यह दृष्टिकोण पश्चिमी उदारवादी दृष्टिकोणों के वैकल्पिक सिद्धांत के रूप में उभरा तथा विकासशील देशों की राजनीतिक जटिलताओं को समझने में सहायक सिद्ध हुआ।

यह अध्ययन विद्यार्थियों को वैचारिक गहराई प्रदान करेगा तथा उन्हें तुलनात्मक राजनीति के विविध विमर्शों के प्रति अधिक सजग और आलोचनात्मक बनाएगा।

4.2 उद्देश्य:

1. मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की अध्ययनात्मक आवश्यकता को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।
2. मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की मूल अवधारणाओं एवं सिद्धांतों का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. इस दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।
4. तुलनात्मक राजनीति में इस दृष्टिकोण की प्रयुक्तता (Applicability) और व्यवहारिक उपयोगिता को चिन्हित कर सकेंगे।

4.3 मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की अध्ययनात्मक आवश्यकता

1. **पश्चिमी दृष्टिकोणों की सीमाएं**

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वैश्विक राजनीति का परिदृश्य तेजी से बदला। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में जो राजनीतिक नवजागरण आया, वह अपने आप में विशिष्ट था — एक ऐसा दौर जहाँ राष्ट्रों को उपनिवेशवाद के पतन के बाद राजनीतिक स्वायत्तता तो मिली, परंतु उनके समक्ष संरचनात्मक विषमताओं की एक जटिल श्रृंखला मौजूद थी।

इन देशों में व्यापक स्तर पर गरीबी, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था, जातीय-सांप्रदायिक विभाजन, प्रशासनिक ढांचे का विघटन और औपनिवेशिक मानसिकता व्याप्त थी। परंतु पश्चिमी राजनीतिक सिद्धांत — विशेषकर उदार लोकतंत्र, संस्थागत स्थायित्व, और वेस्टमिंस्टर मॉडल पर आधारित विचारधाराएं — इन यथार्थों की व्याख्या करने में असमर्थ सिद्ध हुईं। वे ऐसे समाजों के लिए तैयार नहीं थे जहाँ सत्ता केवल संस्थागत नहीं, बल्कि सामाजिक और वर्गीय संघर्षों से भी संचालित होती थी।

2. **मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की प्रासंगिकता**

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण ने नवस्वतंत्र देशों की राजनीति को केवल संवैधानिक ढांचों की दृष्टि से नहीं, बल्कि सत्ता के गहरे सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में देखा। यह दृष्टिकोण इस प्रश्न को मूल में रखता है कि सत्ता किसके पास है, वह सत्ता कैसे अर्जित होती है, और उसका उपयोग किन वर्गों के पक्ष में होता है।

यह सिद्धांत पूंजीवादी ढांचे की सीमाओं को उजागर करते हुए यह बताता है कि राजनीतिक परिवर्तन के लिए क्रांति क्यों आवश्यक हो सकती है, और सत्ता परिवर्तन का वास्तविक उद्देश्य क्या होना चाहिए — केवल नेतृत्व बदलना नहीं, बल्कि उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण के स्वरूप को चुनौती देना। नवस्वतंत्र देशों में यह विश्लेषण इसलिए उपयोगी था क्योंकि वहां की सत्ता संरचनाएं अक्सर अल्पसंख्यक प्रभुत्व और आर्थिक विषमता से संचालित होती थीं।

3. **नवीन संदर्भ में नवीन उपकरणों की आवश्यकता**

औपनिवेशिक अनुभवों से निकले राष्ट्रों की राजनीतिक संरचनाओं को पश्चिमी लोकतंत्रों की शर्तों पर समझना, एक प्रकार की वैचारिक एकतरफ़ा दृष्टि थी। पारंपरिक तुलनात्मक राजनीति में प्रयुक्त पद्धतियाँ — जैसे कि संस्थाओं की तुलना, चुनाव प्रणाली का अध्ययन, या राजनीतिक संस्कृति का वर्गीकरण — इन समाजों की बहुआयामी जटिलताओं को केवल सतही ढंग से समझा पाईं।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण ने अनुसंधान की एक नई शैली को जन्म दिया जिसमें सामाजिक उत्पीड़न, वर्गीय सत्ता-संबंध, औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की विकृतियाँ, और असमान विकास जैसे मुद्दे विश्लेषण के केन्द्र बने। यह दृष्टिकोण अनुसंधानकर्ताओं से अपेक्षा करता है कि वे सत्ता की संरचना को उसके मूल सामाजिक संदर्भों में देखें, न कि केवल विधिक-संस्थागत रूपों में।

4. **समस्या-केन्द्रित विश्लेषण का उभरता ढांचा**

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण को यदि केवल एक सैद्धांतिक ढांचे के रूप में देखें तो हम इसकी सीमाओं को नज़रअंदाज कर बैठते हैं। इसकी सबसे बड़ी ताकत यही है कि यह किसी एक स्थायी मॉडल को थोपता नहीं, बल्कि परिस्थिति के अनुरूप विश्लेषण करता है। यह किसी भी समाज की सामाजिक संरचना, उत्पादन संबंधों, और सत्ता-वितरण की विशिष्टताओं को केंद्र में रखकर समस्या-केन्द्रित विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

उदाहरण के तौर पर, भारत में जाति और वर्ग के अंतर्संबंध को समझने में यह दृष्टिकोण उपयोगी सिद्ध हुआ है। यहाँ वर्ग-संघर्ष को केवल आर्थिक नहीं, सामाजिक श्रेणियों के साथ जोड़कर समझा गया — जो किसी अन्य पश्चिमी मॉडल में संभव नहीं था। इसने यह भी स्पष्ट किया कि "विकास" की पश्चिमी अवधारणा, यदि सामाजिक न्याय से नहीं जुड़ी, तो वह केवल असमानताओं को और गहरा करती है।

5. **राजनीति को समझने का नया नजरिया**

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण का सबसे क्रांतिकारी पहलू यह है कि यह राजनीति को केवल सत्ता के औपचारिक स्रोतों से नहीं जोड़ता, बल्कि उसे समाज के भीतर चल रहे संघर्षों, आंदोलनों, वर्गीय गतिशीलताओं, और शोषण की प्रवृत्तियों से जोड़कर देखता है।

यह दृष्टिकोण हमें बताता है कि संविधान, कानून और संस्थाएं तब तक निष्प्रभावी रह सकती हैं जब तक समाज में गहराई तक व्याप्त असमानताओं को संबोधित न किया जाए। इसने तुलनात्मक राजनीति को यह सिखाया कि राजनीति केवल 'क्या है' का अध्ययन नहीं, बल्कि 'क्यों है' और 'कैसे बदले' का भी अध्ययन होना चाहिए। यह नज़रिया हमें "संस्थागत राजनीति" से आगे जाकर "सामाजिक यथार्थ की राजनीति" तक ले जाता है।

उदाहरण के लिए, लैटिन अमेरिकी देशों में 1960 और 70 के दशक में उठे सामाजिक आंदोलन — जैसे भूमि सुधार आंदोलन, शहरी गरीबों के संगठन — इनका विश्लेषण केवल चुनावी राजनीति से नहीं किया जा सकता। मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण ने इन्हें राज्य और पूंजी के गठजोड़ के विरुद्ध जनसंघर्ष के रूप में देखा, जिससे एक वैकल्पिक राजनीतिक चेतना विकसित हुई।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण ने तुलनात्मक राजनीति को एक नया बौद्धिक और नैतिक आधार दिया। इसने राजनीतिक घटनाओं को केवल विधिक संस्थाओं की कसौटी पर नहीं, बल्कि सामाजिक अंतर्विरोधों, उत्पादन संबंधों, और शक्ति-संतुलन के संदर्भ में समझने का मार्ग प्रशस्त

किया। यह दृष्टिकोण खासकर उन देशों के लिए उपयोगी रहा जो नवसृजित थे, संघर्षशील थे, और जिनकी समस्याएं वैश्विक पूंजीवाद की असमानताओं से गहराई से जुड़ी हुई थीं।

4.4 मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की विशेषताएँ

तुलनात्मक राजनीति में मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण ने एक वैकल्पिक और सुसंगत दृष्टिकोण के रूप में अपने सिद्धांतों, प्रवृत्तियों और भाषा के माध्यम से विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी विशेषताएं केवल विचारधारात्मक दावों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इसके द्वारा प्रयुक्त अवधारणाएं, उनके स्थायित्व और अनुसंधान की दिशा को भी प्रभावित करती हैं। नीचे इस दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताओं को सैद्धांतिक गहराई और व्याख्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है:

1. प्रत्ययों का स्थायित्व (Conceptual Stability)

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषता इसकी सैद्धांतिक स्थिरता है। इसमें प्रयुक्त होने वाले प्रत्यय जैसे "वर्ग-संघर्ष", "राज्य", "शोषण", "पूंजीवाद", "साम्यवाद" आदि दशकों से समान अर्थों में प्रयुक्त होते रहे हैं। इससे न केवल विचारों में स्पष्टता आती है, बल्कि यह तुलनात्मक राजनीति को स्थिर वैचारिक आधार भी प्रदान करता है। यह स्थायित्व अनुसंधानकर्ताओं को सैद्धांतिक भ्रम से बचाता है और तुलनात्मक अध्ययन को सुसंगत बनाता है।

जब हम भारत में भूमिहीन किसानों और जमींदारों के संबंध का अध्ययन करते हैं, तो 'वर्ग-संघर्ष' की अवधारणा हमें इन दोनों वर्गों के बीच शक्ति-संबंध को समझने में मदद करती है। यह संघर्ष समय के साथ भले ही रूप बदल ले, लेकिन इसका मूल विश्लेषण स्थिर रहता है।

2. अर्थों की स्थिरता और भ्रम की अनुपस्थिति

मार्क्सवादी शब्दावली में प्रयुक्त प्रमुख अवधारणाओं के अर्थ में समय के साथ कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। पश्चिमी राजनीतिक सिद्धांतों में जैसे "लोकतंत्र", "सार्वजनिक क्षेत्र", "विकास" आदि के अर्थ संदर्भ के अनुसार बदलते हैं, वहीं मार्क्सवादी शब्दावली तुलनात्मक रूप से अधिक स्थिर और स्पष्ट है। इस स्पष्टता से बौद्धिक भ्रांतियों की गुंजाइश कम हो जाती है।

राज्य' शब्द की व्याख्या पश्चिमी दृष्टिकोणों में विभिन्न प्रकार से की जाती है—जैसे उदारतावादी, संरचनात्मक, व्यवहारवादी, आदि। परंतु मार्क्सवादी दृष्टिकोण में 'राज्य' स्पष्ट रूप से शासक वर्ग का शोषणकारी उपकरण माना जाता है, जो शासक वर्ग के हितों की रक्षा करता है।

3. वैज्ञानिक विश्लेषण में उपयुक्तता

चूंकि इसके सिद्धांत स्थिर और प्रत्यय स्पष्ट हैं, इसलिए अनुसंधान कार्यों में इसे लागू करना अपेक्षाकृत सरल होता है। वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण करने में यह दृष्टिकोण अनुसंधानकर्ताओं को एक सुसंगत ढांचा प्रदान करता है। परिणामस्वरूप, शोध विश्लेषण में तुलनात्मक स्पष्टता और सुसंगति बनी रहती है।

यदि हम रूस की बोल्शेविक क्रांति (1917) का अध्ययन करें, तो मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण इसे श्रमिक वर्ग द्वारा पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध क्रांतिकारी कार्रवाई के रूप में देखता है, जो उत्पादन के साधनों पर सामूहिक नियंत्रण स्थापित करना चाहता था।

4. ज्ञान-संरचना और वैचारिक वर्गों में एकरूपता

मार्क्सवादी दृष्टिकोण की एक और विशेषता यह है कि इसके बौद्धिक वर्गीकरण (intellectual categories) — जैसे 'वर्ग', 'राज्य', 'धार्मिक चेतना', 'राजनीतिक अधिरचना' आदि — के अर्थ इतने स्पष्ट हैं कि इनके उपयोग से समाज के विभिन्न हिस्सों का विश्लेषण तुलनात्मक रूप से आसानी से किया जा सकता है। इससे शोध के निष्कर्षों में विविधता नहीं आती, बल्कि एकरूपता और दिशा प्राप्त होती है।

चाहे हम भारत, क्यूबा या चीन के संदर्भ में बात करें — "अधिरचना" (superstructure) को हमेशा समाज की विचारधारा, राजनीति, धर्म और संस्कृति की उन संस्थाओं के रूप में देखा जाएगा जो आर्थिक आधार की सेवा करती हैं। इससे तुलनात्मक विश्लेषण में एकरूपता बनी रहती है।

5. पश्चिमी दृष्टिकोणों के विपरीत प्रत्ययों की स्थिरता

पश्चिमी राजनीतिक सिद्धांतों में प्रत्ययों की बहुलता और बहुव्याख्यात्मकता एक बड़ी समस्या है, जो तुलनात्मक अध्ययन में भ्रम पैदा करती है। वहीं, मार्क्सवादी दृष्टिकोण में प्रत्ययों की स्थायित्व ने सामाजिक विज्ञानों में विश्लेषणात्मक स्पष्टता दी है। इससे तुलनात्मक दृष्टिकोण अधिक संगठित और विश्लेषणोन्मुख हो जाता है।

6. अनुसंधान पद्धतियों में एकरूपता और वैज्ञानिक प्रवृत्ति

प्रत्ययों की स्थिरता के कारण अनुसंधान पद्धतियों में पुनरावृत्ति संभव होती है, जिससे सैद्धांतिक प्रयोग और अनुभवजन्य अनुसंधान में एकरूपता बनी रहती है। इससे न केवल निष्कर्षों की पुष्टि संभव होती है बल्कि तुलनात्मक दृष्टिकोण अधिक वैज्ञानिक और व्यवस्थित बनता है।

यदि कोई शोधार्थी भारत में औद्योगिक श्रमिकों की राजनीतिक चेतना पर काम कर रहा है, तो मार्क्सवादी दृष्टिकोण उसे यह समझने में मदद करता है कि कैसे उनके आर्थिक शोषण से वर्गीय चेतना का निर्माण होता है, और यह किस प्रकार राजनीतिक संगठनों के निर्माण में सहायक होता है।

7. समाज में विचारों का संप्रेषण और वैचारिक अनुशासन

इस दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय प्रभाव भी है। इसकी स्थिर वैचारिक संरचना के कारण, जनता और नेताओं के बीच विचारों का संप्रेषण अधिक स्पष्टता से होता है। इससे राजनीतिक शिक्षा और निर्णय-निर्धारण में भ्रम की स्थिति कम होती है।

8. प्रत्ययों की वर्गीय-संपृक्ति और सामाजिक विभाजन की स्पष्टता

मार्क्सवादी प्रत्यय, जैसे 'वर्ग' और 'राज्य', वर्ग-संघर्ष की समझ पर आधारित होते हैं। इसका समाज में प्रभाव यह होता है कि यह वर्गीय चेतना को सैद्धांतिक स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करता है। इससे समाज में सामाजिक विषमता और शोषण की व्याख्या प्रभावी ढंग से की जा सकती है।

9. प्रत्ययों के अर्थ में विवाद की अनुपस्थिति

इस दृष्टिकोण में प्रयुक्त प्रत्ययों के अर्थ इतने स्पष्ट और सर्वमान्य होते हैं कि इनके प्रयोग में कोई विवाद नहीं होता। इससे बौद्धिक अनुशासन और तर्कशक्ति को मज़बूती मिलती है, जो स्नातकोत्तर स्तर के अनुसंधान में अत्यंत आवश्यक है।

'वर्ग' शब्द को लेकर जहाँ पश्चिमी विचारधाराओं में 'मध्यवर्ग', 'उच्च मध्यवर्ग' जैसी जटिल व्याख्याएं मिलती हैं, वहीं मार्क्सवादी सिद्धांत स्पष्ट करता है कि वर्ग की परिभाषा उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण के आधार पर की जाती है — इससे अस्पष्टता नहीं रहती।

10. अनुप्रयोग और निष्कर्षों में समानता

स्थिर प्रत्ययों के कारण अनुसंधान में प्रयुक्त ढांचों और विधियों से प्राप्त निष्कर्षों में समरूपता रहती है। इससे विभिन्न क्षेत्रों या देशों में तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण करते समय व्याख्या में विरोधाभास उत्पन्न नहीं होता।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की ये विशेषताएँ इसे तुलनात्मक राजनीति में एक संगठित, विश्लेषणपरक और स्पष्ट दृष्टिकोण बनाती हैं। प्रत्ययों की स्थिरता, विचारधारात्मक स्पष्टता, वैज्ञानिक पद्धति की उपयुक्तता और सामाजिक-राजनीतिक विश्लेषण में इसकी दक्षता इसे न केवल एक प्रभावशाली वैचारिक ढांचा बनाती है, बल्कि स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए यह अध्ययन का एक सशक्त आधार भी प्रस्तुत करती है।

4.5 मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की व्यावहारिक प्रयुक्तता (Practical Application of Marxist-Leninist Framework)

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण का व्यावहारिक महत्व तब स्पष्ट रूप से सामने आया जब विश्व के कई क्षेत्र विशेष रूप से एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के राष्ट्र उपनिवेशवाद की जकड़न से मुक्त होकर स्वतंत्र हुए। इन नवोदित राष्ट्रों की राजनीतिक व्यवस्थाएं पश्चिमी देशों के लोकतांत्रिक ढांचों से अलग थीं। वहाँ की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याएं विशिष्ट थीं। इस परिप्रेक्ष्य में, मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण इन विशेष प्रकार की परिस्थितियों को समझने और विश्लेषित करने का एक प्रभावशाली उपकरण सिद्ध हुआ। यह दृष्टिकोण विश्लेषण को 'समस्या-केन्द्रित' बनाता है न कि 'मॉडल-केन्द्रित'।

1. अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की संरचना, शक्ति और महत्व (The Structure, Power and Significance of the State and Public Sector in the Economy)

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण में यह मान्यता है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि उस देश की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की संरचना कैसी है। इस बात का मूल्यांकन करना ज़रूरी होता है कि सार्वजनिक क्षेत्र कितना प्रभावी है और निजी क्षेत्र का कितना नियंत्रण है। क्या निजी क्षेत्र की स्वतंत्रता असीमित है या राज्य द्वारा नियंत्रित है? क्या सार्वजनिक क्षेत्र वास्तव में अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करता है या केवल कागज़ी रूप में उसका अस्तित्व है?

उदाहरण के लिए, कुछ विकासशील देशों में सार्वजनिक क्षेत्र बहुत विशाल दिखाई देता है, किंतु वास्तविक नियंत्रण निजी कंपनियों और विदेशी पूंजी के पास होता है। भारत में 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद निजीकरण की प्रक्रिया ने सार्वजनिक क्षेत्र की शक्ति को सीमित कर दिया। ऐसे में यह समझना आवश्यक हो जाता है कि आर्थिक निर्णय लेने की शक्ति किसके पास है — जनता के प्रतिनिधियों द्वारा संचालित सरकार के पास या फिर निजी पूंजीपतियों के पास।

2. शासक वर्ग की वर्ग-संरचना (The Class Composition of the Rulers)

राजनीतिक सत्ता किन वर्गों के हाथ में है — यह सवाल किसी भी देश की राजनीतिक प्रकृति को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह दृष्टिकोण पूछता है कि शासक वर्ग किन सामाजिक, आर्थिक और जातिगत समूहों से आता है? क्या वे समाज के उच्च वर्ग, उद्योगपति, ज़मींदार, व्यापारी समुदाय से हैं या समाज के वंचित, श्रमिक और किसान वर्गों से?

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण में यह विशेष रूप से देखा जाता है कि शासक वर्ग की विचारधारा क्या है — क्या वह प्रगतिशील है या प्रतिक्रियावादी? क्या वह विदेशी पूंजी पर निर्भर है? यह भी देखा जाता है कि राजनीतिक दलों में सत्ता की संरचना कैसी है — क्या वह लोकतांत्रिक है या वंशवादी? उदाहरण के लिए, कई देशों में चुनाव तो होते हैं, किंतु चुनाव लड़ने वाले अधिकांश नेता धनिक वर्ग से होते हैं, जिससे सत्ता पर एक ही वर्ग का कब्जा बना रहता है।

इस संदर्भ में, विकासशील देशों में अक्सर यह देखा गया है कि सत्ता एक छोटे से प्रभावशाली वर्ग के हाथ में सिमट जाती है, जिससे जनहित की नीतियां उपेक्षित हो जाती हैं। इस वर्गीय संरचना का विश्लेषण हमें राजनीतिक प्रक्रिया की वास्तविकता से परिचित कराता है।

3. अर्थव्यवस्था की प्रकृति (The Nature of the Economy)

किसी देश की अर्थव्यवस्था की प्रकृति यानी उसका औद्योगीकरण का स्तर, ग्रामीण-शहरी संरचना और उत्पादन के साधनों की मिल्कियत को समझे बिना उसकी राजनीतिक व्यवस्था को नहीं समझा जा सकता। मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण में यह देखा जाता है कि औद्योगीकरण का स्तर कितना है, कौन-से क्षेत्र औद्योगिक हैं और कौन-से कृषि आधारित?

(i) औद्योगीकरण की मात्रा (Degree of Industrialization): यदि किसी देश में औद्योगीकरण उच्च स्तर पर है तो वहाँ के नागरिक राजनीतिक रूप से अधिक सक्रिय होते हैं और वे सत्ता में भागीदारी की मांग करते हैं। इसके विपरीत, जहाँ औद्योगीकरण सीमित होता है, वहाँ जनता की राजनीतिक जागरूकता और भागीदारी भी सीमित रहती है।

(ii) सर्वहारा वर्ग का आकार और संगठन: राजनीतिक सत्ता किस वर्ग के आधार पर टिकती है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि सर्वहारा वर्ग कितना संगठित है और कितना प्रभावशाली है। यदि यह वर्ग असंगठित है, तो उसकी राजनीतिक प्रभावशीलता भी कम होती है।

(iii) **समानान्तर अर्थव्यवस्थाएं:** विकासशील देशों में अक्सर दो प्रकार की अर्थव्यवस्थाएं समानांतर रूप से चलती हैं — एक पारंपरिक और दूसरी औद्योगिक। इससे राजनीतिक और आर्थिक संकट उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए, भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था और शहरी उद्योगों के बीच स्पष्ट विभाजन है, जिससे नीति-निर्माण में संतुलन स्थापित करना कठिन हो जाता है।

4. ऐतिहासिक और वैश्विक संदर्भ में राजनीतिक ढांचे की व्याख्या

मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण के अनुसार, किसी भी राज्य की संरचना और राजनीतिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए उसके औपनिवेशिक इतिहास, पश्चिमी साम्राज्यवादियों के साथ संबंध, और विदेशी शक्तियों पर निर्भरता को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

- क्या राज्य का गठन उपनिवेशवाद के खिलाफ हुए संघर्ष से हुआ है?
- क्या वह राज्य अब भी पश्चिमी शक्तियों की आर्थिक और राजनीतिक नीति से प्रभावित है?
- देश की विदेश नीति किस 'विश्व' (तीसरी दुनिया, प्रथम विश्व, या द्वितीय विश्व) के देशों के साथ मेल खाती है?

उदाहरण: अफ्रीकी देशों की विदेश नीति और आर्थिक नीतियां आज भी उनकी पूर्व उपनिवेशवादी शक्तियों के प्रभाव में बनती हैं। ऐसे में उनकी संप्रभुता सीमित रह जाती है।

5. कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना

कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का स्वरूप यह निर्धारित करता है कि ग्रामीण समाज में उत्पादन कैसे होता है, भूमि का स्वामित्व किनके पास है, और उत्पादन के साधनों का नियंत्रण किसके पास है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण यह विश्लेषण करता है कि:

- कृषि क्षेत्र में किस वर्ग का वर्चस्व है?
- उत्पादन के साधनों पर किसका नियंत्रण है — किसान का, जमींदार का या कॉर्पोरेट का?
- कृषि उत्पादन का ढांचा श्रम आधारित है या पूंजी आधारित?

उदाहरण: भारत में हरित क्रांति के बाद कुछ बड़े किसानों को अत्यधिक लाभ मिला, लेकिन छोटे किसानों और खेतिहर मजदूरों की स्थिति जस की तस रही। इससे ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक असमानता और बढ़ी।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीति को एक गहन विश्लेषणात्मक ढांचा प्रदान करता है। यह केवल संस्थाओं या विधियों का अध्ययन नहीं करता, बल्कि यह उन सामाजिक, आर्थिक और ऐतिहासिक कारकों को सामने लाता है जो राजनीति को दिशा देते हैं।

यह दृष्टिकोण हमें सिखाता है कि:

- किसी देश की राजनीतिक प्रक्रिया को समझने के लिए उसके सामाजिक-आर्थिक संदर्भ को जानना आवश्यक है।
- केवल लोकतंत्र या चुनाव की उपस्थिति यह नहीं दर्शाती कि वहाँ जनसत्ता है।
- सत्ता किसके पास है, क्यों है, और किसके पक्ष में कार्य कर रही है — यह प्रश्न केंद्र में होना चाहिए।

इस प्रकार, मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण विकासशील देशों की जटिल राजनीतिक वास्तविकताओं को समझने में एक प्रासंगिक और उपयोगी पद्धति सिद्ध होता है।

4.6 मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की उपयोगिता (The Utility of Marxist-Leninist Approach)

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण को केवल एक वैचारिक ढांचे के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे विकासशील राष्ट्रों की जटिल राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं को समझने के एक प्रभावशाली और व्यावहारिक औजार के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण समाज के विभिन्न वर्गों के बीच संबंध, शक्ति-संरचनाएं, ऐतिहासिक कारक और शासन के औपचारिक और अनौपचारिक तंत्रों का विश्लेषण करता है। इसका मूल विश्वास है कि हर राजनीतिक संरचना किसी सामाजिक-आर्थिक यथार्थ की उपज होती है, और उसे इसी पृष्ठभूमि में समझना होगा।

(क) राजनीतिक व्यवस्थाओं की गत्यात्मक प्रवृत्तियों को समझने में सहायक

मार्क्सवादी दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्थाओं को स्थिर, अपरिवर्तनीय या स्थायित्वपूर्ण नहीं मानता। इसके विपरीत, यह मानता है कि राजनीतिक व्यवस्थाएं समय के साथ बदलती रहती हैं, और इन परिवर्तनों के मूल में सामाजिक-आर्थिक शक्तियों की टकराहट होती है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत राजनीतिक प्रणाली के भीतर छिपे उन अंतर्विरोधों की पहचान की जाती है, जो उसकी गति और दिशा को प्रभावित करते हैं।

उदाहरण के लिए, एक लोकतांत्रिक व्यवस्था को केवल चुनावी प्रक्रिया, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के ढांचे से समझना पर्याप्त नहीं है। यदि हम यह जानना चाहते हैं कि सत्ता के वास्तविक केंद्र कहाँ स्थित हैं और निर्णय किसके हित में लिए जाते हैं, तो हमें यह देखना होगा कि कौन-से वर्ग या समूह संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं। इस दृष्टिकोण से राजनीतिक निर्णयों के पीछे के वर्गीय हित स्पष्ट हो जाते हैं, जिससे व्यवस्थागत बदलावों की भविष्यवाणी और विश्लेषण संभव हो पाता है।

(ख) व्यापक दृष्टिकोण के ज़रिए समग्रता में समझ

मार्क्सवादी दृष्टिकोण राजनीति को एक समग्र परिप्रेक्ष्य से देखता है। यह केवल औपचारिक संस्थाओं या विधिक संरचनाओं का अध्ययन नहीं करता, बल्कि राजनीति को सामाजिक उत्पादन, श्रम विभाजन, संपत्ति के स्वामित्व, सांस्कृतिक प्रभुत्व और विचारधारा से जोड़कर देखता है। यही समग्र दृष्टिकोण इस विश्लेषण को खास बनाता है।

उदाहरणार्थ, यदि किसी देश में राजनीतिक अस्थिरता है, तो इसे केवल पार्टी-राजनीति या सत्ताधारी और विपक्ष के टकराव के रूप में देखना पर्याप्त नहीं होगा। यह दृष्टिकोण जांच करता है कि क्या यह अस्थिरता सामाजिक असमानताओं, भूमि स्वामित्व में विषमता, जातीय-धार्मिक वर्चस्व, या उपनिवेशवाद की विरासत से उत्पन्न हुई है। इस तरह का विश्लेषण राजनीतिक घटनाओं को उनकी पूरी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में रखकर समझने की राह प्रशस्त करता है।

(ग) सत्ता की जड़ों को उजागर करना

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की एक विशेषता यह है कि यह सत्ता के केवल संस्थागत रूप को नहीं देखता, बल्कि यह पूछता है कि वास्तविक शक्ति किसके पास है। यह दृष्टिकोण इस बात की छानबीन करता है कि कौन-सा वर्ग सत्ता का उपयोग कर रहा है, और वह सत्ता का उपयोग किन उद्देश्यों के लिए कर रहा है। यह प्रश्न सत्ता के स्वरूप, उपयोग, और उसके प्रभाव के सामाजिक वितरण को सामने लाते हैं।

उदाहरण के लिए, यदि किसी राज्य में शिक्षा, स्वास्थ्य और न्याय जैसी सुविधाएं केवल उच्च्च वर्गों या विशेष जातियों तक सीमित हैं, तो यह सत्ता के असमान वितरण की ओर संकेत करता है। संविधान में भले ही समानता की बात हो, लेकिन व्यवहार में अगर वंचित वर्गों को अवसर नहीं मिल रहे, तो यह केवल संस्थागत विफलता नहीं, बल्कि सत्ता के वर्गीय स्वरूप को उजागर करता है।

(घ) ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से विश्लेषण

मार्क्सवादी दृष्टिकोण का एक बड़ा योगदान यह है कि यह वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाओं को उनके ऐतिहासिक विकासक्रम में रखकर देखता है। यह मानता है कि किसी भी देश की राजनीति को समझने के लिए उसके अतीत के सामाजिक-आर्थिक संघर्षों, आंदोलनों, औपनिवेशिक अनुभवों और वर्गीय टकरावों की पड़ताल आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, भारत की स्वतंत्रता केवल एक राजनीतिक घटना नहीं थी, बल्कि यह एक दीर्घकालीन सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम थी। इस संघर्ष को केवल संविधान निर्माण या सत्ता हस्तांतरण की घटनाओं तक सीमित नहीं किया जा सकता। इसके पीछे उपनिवेशवाद, वर्गीय उत्पीड़न, जातिगत विषमता और विदेशी पूंजीवादी शोषण की लंबी प्रक्रिया थी। मार्क्सवादी दृष्टिकोण इन सभी पहलुओं को समेट कर एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

(ङ) तुलनात्मक राजनीति में यथार्थवाद

पारंपरिक तुलनात्मक राजनीति में अक्सर पश्चिमी लोकतांत्रिक मॉडल को आदर्श मानकर अन्य देशों की तुलना की जाती रही है। इससे विकासशील देशों की जमीनी हकीकतें उपेक्षित रह जाती हैं। मार्क्सवादी दृष्टिकोण इस दोष को दूर करता है। यह दृष्टिकोण यह मानता है कि किसी भी राजनीतिक प्रणाली का मूल्यांकन उसके सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में किया जाना चाहिए।

मार्क्सवादी तुलनात्मक अध्ययन यह दिखाता है कि संविधान, विधायिका या न्यायपालिका जैसी संस्थाएं किस हद तक जनता की आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करती हैं और किस हद तक केवल सत्ता-elite के हितों की रक्षा करती हैं। यह दृष्टिकोण यह भी समझने में मदद करता है कि विभिन्न देशों में एक जैसे राजनीतिक ढांचे होते हुए भी उनमें किस प्रकार की वर्ग-संरचना और सत्ता-संबंध कार्य कर रहे हैं।

(च) अनुसंधान पद्धति में बदलाव

मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने राजनीतिक अध्ययन की पद्धति में भी मौलिक परिवर्तन लाया है। इसने केवल वर्णनात्मक या संस्थागत अध्ययन की सीमा को तोड़ा और राजनीतिक घटनाओं को आलोचनात्मक, संरचनात्मक और परिवर्तनशील दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति को जन्म दिया।

अब अध्ययन यह नहीं पूछता कि "क्या हो रहा है", बल्कि यह भी पूछता है कि "क्यों हो रहा है", "किसके हित में हो रहा है" और "इसे बदलने के लिए कौन-सी शक्तियां आवश्यक हैं"। इस प्रकार,

यह दृष्टिकोण एक वैज्ञानिक विश्लेषण को जन्म देता है जो सत्ता और संरचना की जटिलता को स्पष्ट करता है।

(छ) भविष्य के अनुमान और परिवर्तन की दिशा

मार्क्सवादी दृष्टिकोण की अंतिम लेकिन अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह केवल यथास्थिति का विश्लेषण नहीं करता, बल्कि भविष्य की संभावनाओं को भी पहचानने का प्रयास करता है। यह परिवर्तनशील दृष्टिकोण है जो न केवल समस्याओं की पहचान करता है, बल्कि उनके समाधान की दिशा भी प्रस्तुत करता है।

यह गरीबी, बेरोजगारी, जातीय असमानता, लैंगिक विषमता और प्रशासनिक अक्षमता जैसी समस्याओं को केवल आंकड़ों के माध्यम से नहीं देखता, बल्कि इनके मूल कारणों की पहचान कर उनके विरुद्ध संगठित सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष की दिशा दिखाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह दृष्टिकोण परिवर्तन का औजार भी है, केवल व्याख्या का माध्यम नहीं।

इस विवेचना से स्पष्ट होता है कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीति में केवल एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि यह एक **व्यावहारिक, परिवर्तनशील और वैज्ञानिक दृष्टिकोण** है, जो राजनीतिक यथार्थ की जटिलता को समझने में मदद करता है और बेहतर नीतिगत विकल्पों की ओर संकेत करता है।

अभ्यास प्रश्न:

1. मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण राजनीति को किस दृष्टिकोण से देखता है?

A.केवल संवैधानिक और संस्थागत
B. नैतिक और धार्मिक
C. सामाजिक-आर्थिक और ऐतिहासिक
D. सांस्कृतिक और भाषाई

2. मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार किसी राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता या अस्थिरता को किस आधार पर समझा जाना चाहिए?

A. चुनाव परिणामों के आधार पर
B. संवैधानिक संशोधनों के आधार पर
C. विदेशी संबंधों के आधार पर
D. सामाजिक वर्ग-संघर्ष और आर्थिक विषमताओं के आधार पर

3. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की विशेषता है?

A. यह सत्ता की गहरी जड़ों और वर्गीय संरचनाओं का अध्ययन करता है।

B. यह राजनीति को स्थिर और अपरिवर्तनीय मानता है।

C. यह केवल पश्चिमी लोकतंत्रों पर केंद्रित रहता है।

D. यह केवल कानूनी प्रक्रिया और न्यायपालिका पर केंद्रित होता है।

4. मार्क्सवादी दृष्टिकोण किस प्रकार की शोध-पद्धति को प्रोत्साहित करता है?

A. मात्र विवरणात्मक (Descriptive)
B. तथ्यहीन आलोचनात्मक
C. समस्या-केंद्रित, आलोचनात्मक और परिवर्तनशील
D. केवल तुलनात्मक सांख्यिकीय

4.7 निष्कर्ष

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण केवल एक वैचारिक संरचना नहीं, बल्कि तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की एक विश्लेषणात्मक और परिवर्तनशील पद्धति है, जो विशेष रूप से विकासशील और नवस्वतंत्र राष्ट्रों की राजनीतिक वास्तविकताओं को समझने के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है। यह दृष्टिकोण राजनीति को केवल संवैधानिक ढांचे, संस्थागत प्रक्रियाओं या चुनावी आंकड़ों तक सीमित नहीं रखता, बल्कि वह सत्ता, समाज और अर्थव्यवस्था के अंतर्संबंधों की गहन पड़ताल करता है।

यह दृष्टिकोण यह मानता है कि किसी भी राजनीतिक प्रणाली को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक, वर्गीय, सामाजिक और आर्थिक आयामों को साथ लेकर चलना आवश्यक है। यह केवल यह नहीं पूछता कि "क्या हो रहा है", बल्कि यह भी पूछता है कि "क्यों हो रहा है", "किसके लिए हो रहा है" और "किसके विरुद्ध हो रहा है"।

इसने तुलनात्मक राजनीति में यथार्थवाद को स्थापित किया, शोध-पद्धतियों में आलोचनात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया और सत्ता की प्रकृति को उसकी गहराई में समझने की दिशा दी। इसके माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक न्याय, समानता और परिवर्तन जैसे मूल्य केवल आदर्शवादी संकल्पनाएं नहीं, बल्कि विश्लेषण के केंद्रीय बिंदु बनने चाहिए।

वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, जहाँ पूंजीवाद की चुनौतियाँ और असमानताओं के नए रूप उभर रहे हैं, वहाँ मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण आज भी एक प्रभावी वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह न केवल आलोचना करता है, बल्कि परिवर्तन की दिशा भी सुझाता है। इसलिए, यह दृष्टिकोण न केवल राजनीतिक शैक्षिक विमर्श को समृद्ध करता है, बल्कि एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज के निर्माण की दिशा में सोचने की प्रेरणा भी देता है।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1-C , 2-D , 3-A , 4-C

4.9 शब्दावली

वर्ग-संघर्ष (Class Struggle), वह सामाजिक संघर्ष जो उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण रखने वाले शोषक वर्ग और श्रमिक वर्ग के बीच होता है।

औपनिवेशिक विरासत (Colonial Legacy), उपनिवेशवाद के काल में विकसित हुई प्रशासनिक, सामाजिक व आर्थिक संरचनाएँ जो स्वतंत्रता के बाद भी प्रभावी रहती हैं।राजनीतिक संस्कृति (Political Culture) किसी समाज के नागरिकों के राजनीतिक दृष्टिकोण, मूल्य, विश्वास और व्यवहार का समुच्चय।

समग्र दृष्टिकोण (Holistic Approach), किसी विषय को उसके सभी पक्षों—आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक—को मिलाकर समझने की प्रवृत्ति।

गत्यात्मकता (Dynamism), समाज और सत्ता की निरंतर बदलती प्रवृत्तियों की समझ और स्वीकार्यता।

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- **C.B. Gena (2002)** – *Comparative Politics: A Marxist Approach*
- **J.P.S. Johari (2005)** –*Comparative Politics*
- **P. Chatterjee (1997)** – *The Nation and Its Fragments: Colonial and Postcolonial Histories*

- **Prabhat Patnaik (2009)** – *The Value of Money*
- **Akeel Bilgrami (2012)** – *Secularism, Identity and Enchantment*
- **Randhir Singh (1981)** – *Reason, Revolution and Political Theory*
- **Ashok Mitra (1992)** – *Terms of Trade and Class Relations*
- **Aijaz Ahmad (1992)** – *In Theory: Classes, Nations, Literature*
- **Ashis Nandy (1983)** – *The Intimate Enemy: Loss and Recovery of Self under Colonialism*
- Karl Marx & Friedrich Engels (1848) – ***The Communist Manifesto***

4.11 निबंधात्मक प्रश्न:

1. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में मार्क्सवादी दृष्टिकोण किस प्रकार यथार्थवादी और परिवर्तनशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है?
2. मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण किस प्रकार शोध पद्धति में समस्या-केंद्रित और आलोचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है? विस्तार से विवेचना कीजिए।

इकाई -5 व्यवस्था विश्लेषण- राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2. उद्देश्य

5.3 व्यवस्था विश्लेषण

5.4 राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा

5.5 राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताएं

5.6 उपादेयता और सीमाएं

5.7. सारांश

5.8. शब्दावली

5.9.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.10.संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.11.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

5.12.निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

राजनीति विज्ञान की परम्परागत अवधारणा राजनीति के जिन गतिशील तत्वों की पहचान और उनका सम्यक विश्लेषण करने में असफल रही, उसको राजनीति विज्ञान की नयी अवधारणा ने, सार्वभौमिक रूप से समझने में सहायता प्रदान की। राजनीति विज्ञान की आधुनिक अवधारणा ने नए परिवर्तनों को समझने के लिए न सिर्फ नए पद्धतियों की पहचान की अपितु प्राचीन अवधारणाओं को उनकी प्रासंगिकता की कसौटी पर भी कसते हुए, उनकी उपादेयता की सीमाओ की पहचान भी की। नए और आधुनिक उपागम में वैज्ञानिक पद्धतियो के प्रयोग ने उसकी विश्वसनीयता को स्थापित करते हुए, उसकी आवश्यकता को रेखांकित किया। तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत उपागम राजनीतिक संरचनाओं के व्यवहार हो सही अर्थों में समझने में विफल साबित हुए। राजनीतिक प्रक्रियाओं और व्यवहार के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए, नए विधियों और उपागमों की खोज प्रारम्भ हुयी जिसमें व्यवस्था विश्लेषण सर्वाधिक आधारभूत और महत्वपूर्ण है।

5.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- राजनीति विज्ञान के आधुनिक अवधारणा के विकास को बेहतर रुप से समझ सकेंगे।
- राजनीति विज्ञान के परम्परागत अवधारणा की कमियों को जान सकेंगे।
- राज्य अथवा अन्य सांस्थानिक संरचनाओं के स्थान पर राजनीतिक व्यवहार को एक व्यवस्थागत संरचना के रूप में जान पाएंगे।
- राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं की गत्यात्मकता को समझ सकेंगे।

5.3 व्यवस्था विश्लेषण

विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में राजनीतिक व्यवस्था को समझने का यत्न है। व्यवस्था विश्लेषण राजनीतिक सिद्धांत को परम्परागत सिद्धांतों से हट कर एक सामान्य व्यवस्था उपकरण के रूप में विश्लेषित करता है, जो बिना किसी भेदभाव के सभी सांस्थानिक संरचनाओं के विश्लेषण के लिए एक उपयुक्त उपकरण के रूप में है। व्यवस्था सिद्धांत परम्परागत सिद्धांत के विपरीत राजनीतिक संरचना को एक उपकरण के रूप में स्वीकार करता है जो कुछ निश्चित सार्वभौमिक सिद्धांतों के साथ कार्य करता है एवं समस्त राजनीतिक सांस्थानिक व्यवस्था में एक समान रूप से कार्य करता है। राजनीति विज्ञान की गत्यात्मकता, इस विषय के साथ नए आयाम जोड़ती है और प्राचीन अवधारणाएं उन नवीन प्रवृत्तियों को उनकी समग्रता के साथ बढ़ते हुए विषयक्षेत्र और उनके विविध आयामों को समझने में पर्याप्त सिद्ध नहीं हुयीं। राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा इस कमी को दूर करने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुयी।

5.4 राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा

आधुनिक राजनीतिशास्त्र के अध्येताओं और विद्वानों ने यह महसूस किया कि, यदि राजनीतिक घटनाओं एवं संस्थाओं के गत्यात्मकता और उसके साथ विषय में जुड़ने वाले नवीन आयामों का अध्ययन करना है तो राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र में राज्य रूपी संस्था के अत्यधिक महत्व को कम करना होगा। राजनीति शास्त्र के गत्यात्मक तत्वों जैसे सामाजिक प्रक्रिया एवं राजनीतिक प्रक्रिया के अंतःसंबंधों, उनको प्रभावित करने वाली संरचनाओं एवं उनकी पद्धतियों, एक इकाई के रूप में राजनीतिक व्यवहार और पर्यावरण (राजनीतिक) से उसके अंतःसंबंधों का निरूपण एवं उसके अध्ययन को केन्द्र में लाना होगा, तभी एक समग्र अवधारणा का विकास एवं उसका अध्ययन संभव हो सकेगा।

राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के लिए व्यवस्था सिद्धांत की अभिप्रेरणा 'सामान्य व्यवस्था सिद्धांत' से प्राप्त होती है। सामान्य व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक लुडविग वान बर्टलनफी ने किया था। उन्होंने समस्त प्राकृतिक विज्ञानों के समायोजन पर जोर दिया था। प्राकृतिक विज्ञान से समाज विज्ञान के विषय, विशेष रूप से मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा नृविज्ञान तथा तत्पश्चात राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में भी इसका लगातार प्रयोग किया जाने लगा। अमरीकन राजनीतिशास्त्रियों जैसे डेविड ईस्टन, गैब्रियल आमण्ड, मार्टन काप्लान आदि के नाम इसमें प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। व्यवस्था सिद्धांत को आधुनिक राजनीतिक संरचनाओं और उनकी प्रक्रियाओं को समझने के लिए, आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत के एक सर्वमान्य उपकरण के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इसी व्यवस्था सिद्धांत के आधार को स्वीकार करते हुए कालांतर में अनेक नए आयामों को सम्मिलित करते हुए इसको विकसित करने का सफल प्रयास किया गया।

राजनीतिक व्यवस्था को समझने के लिए 'व्यवस्था' की अवधारणा को समझना भी समीचीन होगा। 'व्यवस्था' (system) शब्द भौतिक विज्ञान से लिया गया है जिसका अर्थ सुपरिभाषित अंतर-क्रियाओं के ऐसे समूह से है जिसकी सीमाएं निर्धारित की जा सकें। व्यवस्था की अवधारणा में विभिन्न समूह अंतःक्रिया और समन्वय की प्रक्रिया से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं और एक सीमा में पर्यावरण से प्रभावित होते और पर्यावरण को प्रभावित करते हुए स्थायित्व स्थापित करने का यत्न करते हैं। किसी भी व्यवस्था के अंतर्गत उसके विभिन्न अंग समन्वय की प्रक्रिया में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं और एक सांगठनिक स्वरूप का निर्माण करते हैं। जहां भी संगठन अथवा उसके गुण पाए जाते हैं जिसमें उसकी विभिन्न इकाईयां एक दूसरे से सम्बद्ध होकर, समन्वय स्थापित करते हैं वहां व्यवस्था पायी जाती है। राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के ये समस्त गुण, राजनीतिक व्यवस्था के रूप में राजनीतिक विकास और उसकी विभिन्न प्रक्रियाओं और उसके तत्वों को समझने में सहायक सिद्ध हुए। राजनीतिक व्यवस्था में, विभिन्न राजनीतिक संरचनात्मक तत्व एक दूसरे से सम्बद्ध होकर और परस्पर अंतःक्रिया करते हुए एक निश्चित पर्यावरण में कार्य करते हैं। राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा सामान्य रूप से सभी जगह बराबर रूप से लागू होती हैं जहां भी किसी प्रकार काराजनीतिकक्रिया कलाप दृष्टिगत होता है। यहां, यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि, बहुत बार एक व्यवस्था के अंतर्गत भी अनेक व्यवस्थाएं कार्य करती हुयी दिखायी देती हैं जिन्हें हम उप-व्यवस्था के रूप में पहचान सकते हैं। कोई भी मानवीय व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था बन जाती है यदि उसके अंतर्गत शक्ति, सत्ता, नियम एवं नियंत्रण के तत्व दिखायी देने लगते हैं। राजनीतिक संगठन एवं व्यवस्था अन्य संगठनों से इस रूप में भिन्न होते हैं कि, इसमें सत्ता और नियम विद्यमान रहते हैं जबकि अन्य में उनका अभाव रहता है अथवा नगण्य रूप में होता है। व्यवस्था के तीन गुण सामान्य रूप से सभी व्यवस्थाओं में सर्वव्यापक रूप से पाए जाते हैं-

1. व्यापकता (Comprehensiveness)

2. अन्योन्याश्रय (Interdependence) तथा

3. सीमाएं (Boundaries)।

व्यापकता- व्यापकता का अर्थ यह है कि, किसी भी व्यवस्था के अंतर्गत उसके संरचनात्मक तत्वों के अतिरिक्त भी वो समस्त तत्व जो किसी भी रूप में उसकी प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं अथवा किसी भी रूप में उससे सम्बद्ध होते हुए उससे प्रभावित होते हैं अथवा प्रभावित करते हैं, उस व्यवस्था का हिस्सा होते हैं। राजनीतिक व्यवस्था में, राजनीतिक संरचनाओं के अतिरिक्त उसकी विभिन्न प्रक्रियाएं, जाति, धर्म, परिवार, सामाजिक घटनाएं आदि भी उसका हिस्सा होती हैं।

अन्योन्याश्रय- अन्योन्याश्रय का अर्थ है परस्पर एक दूसरे पर आश्रित होना। व्यवस्था के अंतर्गत एक अंग के गुणों में परिवर्तन का प्रभाव दूसरे संघटकों पर स्वभाविक रूप से पड़ता है जिसे अन्योन्याश्रिता कहते हैं। राजनीतिक व्यवस्था में भी एक घटक के परिवर्तन का प्रभाव स्वभाविक रूप से दूसरे घटकों पर परिलक्षित होता है। सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट रूप से राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं पर देखा जा सकता है।

सीमाएं- सीमा से आशय है कि, प्रत्येक व्यवस्था किसी निश्चित बिन्दु से प्रारम्भ होकर किसी निश्चित बिन्दु तक रहती है जिसके अंदर ही उसकी समस्त अंतःक्रियाएं सम्पादित होती हैं। ऐसा बिन्दु जहां पर अन्य व्यवस्थाओं की परिधि समाप्त होती है और राजनीतिक संरचनाओं और इकाईयों की गतिविधियां प्रारम्भ होती हैं, राजनीतिक व्यवस्था की सीमा कहलाती है।

5.5 राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताएं

आधुनिक राजनीति विज्ञान के विकास में व्यवस्था विश्लेषण ने निर्विवाद रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। एक विश्लेषण के उपकरण के रूप में व्यवस्था विश्लेषण ने राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं को समझने का न सिर्फ नवीन आयाम प्रदान किया है अपितु इसको प्रभावित करने वाले और राजनीतिक विकास को उसकी गतिशीलता में समझने का सार्वभौमिक आधार प्रदत्त किया है। राजनीतिक व्यवस्था को समझने में आधुनिक राजनीतिक विज्ञानियों की निम्न परिभाषाएं सहायक होंगी।

राबर्ट डहल के अनुसार, ''राजनीतिक व्यवस्था मानव सम्बन्धों का वह स्थायी संरूप है जिसके अंतर्गत शक्ति, नियम और सत्ता महत्वपूर्ण मात्रा में निहित हों।'' डेविड ईस्टन के अनुसार, ''राजनीतिक व्यवस्था किसी समाज में अंतःक्रियाओं की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से बाध्यकारी या सत्तात्मक आवंटन निर्मित एवं कार्यान्वित होते हैं।'' औरन यंग राजनीतिक व्यवस्था को एक परिवर्तन प्रक्रिया मानते हैं जो कार्य करती है, निर्गत उत्पन्न करती है और पर्यावरण को परिवर्तित करती है जिसमें राजनीतिक व्यवस्था और उसके पर्यावरण में गतिशील प्रक्रिया के प्रचलन के आधार पर निरंतर आदान-प्रदान होता रहता है।'' आमण्ड तथा पावेल के अनुसार ''राजनीतिक

व्यवस्था के अंतर्गत न केवल सरकारी संस्थाएं जैसे विधान मण्डल, न्यायालय तथा प्रशासनिक अभिकरण सम्मिलित हैं, बल्कि सभी संरचनाओं के राजनीतिक रूप आते हैं।'' उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था की निम्न विशेषताओं को निर्दिष्ट किया जा सकता है-

1.बृहद सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत, राजनीतिक व्यवस्था सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जो अन्य सामाजिक संरचनाओं को भी प्रभावित करती है। अरस्तू की परिभाषा भी व्यक्ति को स्वभाविक रूप से एक राजनीतिक प्राणी के रूप में चिन्हित करता है और एक राजनीतिक इकाई के रूप में उसकी भूमिका सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा है।

2.राजनीतिक व्यवस्था समाज के भीतर मनुष्य के उन अंतःसंबंधों को व्यक्त करता है जिनके आधार पर मनुष्य यह निर्णय करता है कि, किन आकांक्षाओं और उद्देश्यों को सार्वजनिक नीतियों का रूप देते हुए उसका क्रियान्वयन किया जाय।

3.राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत औपचारिक के साथ साथ अनौपचारिक प्रक्रियाओं और भूमिकाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

4.कोई भी मानवीय संबंधों की संरचना राजनीतिक व्यवस्था का रूप धारण कर लेती है, यदि उसके अंतर्गत शक्ति, सत्ता, नियंत्रण एवं नियम के तत्व प्रभावी रूप में दिखायी देते हैं।

इसके अतिरिक्त भी राजनीतिक व्यवस्था की निम्न विशेषताएं सार्वभौमिक रूप से सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में पायी जाती हैं-

1.राजनीतिक संरचनाओं की समानता- समस्त राजनीतिक वयवस्थाओं में अनिवयर्यतः कुछ राजनीतिक संरचना पायी जाती है। इन संरचनाओं में परस्पर तुलना की जा सकती है। इन संरचनाओं में विभेद का अंतर केवल विशिष्टीकरण का होता है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में हितों के निर्धारण के साथ-साथ उनका मांग के रूप में व्यवस्था में प्रवेश, रूपांतरण की प्रक्रिया और नीतियों नियमों के रूप में निर्गत के रूप में पुनः पर्यावरण में प्रवेश, सामान्य रूप से पाए जाते हैं। ये विभिन्न कार्य एक दूसरे से पृथक-पृथक संरचनाओं अथवा मिश्रित रूप में भी हो सकते हैं, किन्तु ये संरचनाएं अनिवार्य रूप से सभी राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान होते हैं।

2.कार्यों की सर्वव्यापकता- राजनीतिक व्यवस्था में कुछ निश्चित कार्य एक बराबर रूप से पाए जाते हैं। हितों के निर्धारण से लेकर निर्गत प्रक्रिया और उनके मध्य अंतःक्रिया प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के कार्य के रूप में सर्वव्यापक रूप से पाए जाते हैं।

3.राजनीतिक संरचना की विविधता- राजनीतिक व्यवस्था में निश्चित निर्दिष्ट कार्यों को करने के लिए कुछ निश्चित संरचनाएं विद्यमान रहती हैं, जो अपने विशिष्ट कार्य की प्रकृति के कारण एक पृथक स्वरूप में दिखायी देती हैं जैसे कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका। कई बार इन संरचनओं के कार्य मिश्रित स्वरूप में भी दिखायी देते हैं।

4.राजनीतिक संरचनाओं का मिश्रित स्वरूप- कोई भी राजनीतिक व्यवस्था अपने विविध इकाईयों से अपनी अंतःक्रियाओं के कारण एक दूसरे से जुड़ी होती है। अंतःक्रियाओं के कारण कई बार राजनीतिक संरचनाओं का स्वरूप मिश्रित रूप में दृष्टिगोचर होता है।

5.वैधता का अर्जन- किसी भी व्यवस्था की तरह, राजनीतिक व्यवस्था भी अपने स्थायित्व का निरंतर प्रयास करती है और इस प्रयास में वह अपने पर्यावरण से समर्थन प्राप्त कर, अपने नीतिगत निर्णयों एवं अन्य निर्गतों के लिए वैधता अर्जित करती है।

6.राजनीतिक व्यवस्था के भागों में अंतःनिर्भरता- राजनीतिक व्यवस्था के विविध अंगों की परस्पर अंतःनिर्भरता उसे एक व्यवस्था का स्वरूप प्रदान करती है। विविध अंगों का समन्वय और उनकी अन्योन्याश्रिता राजनीतिक व्यवस्था को एक इकाई के रूप में परिणित करती है।

7.राजनीतिक व्यवस्था की सीमा- किसी भी व्यवस्था की तरह राजनीतिक व्यवस्था भी एक सीमा के अंदर कार्य करता है, जो किसी निश्चित बिन्दु से प्रारम्भ होकर निश्चित सीमा के अधीन होता है।

8.राजनीतिक व्यवस्था द्वारा बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग- राजनीतिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता, उसके अंदर एक बाध्यकारी शक्ति का पाया जाना होता है जो सत्ता के द्वारा विविध कार्यों को करते हुए, राजनीतिक व्यवस्था के लिए आवश्यक नियंत्रण स्थापित करता है।

5.6 उपादेयता और सीमाएं

व्यवस्था विश्लेषण की अवधारणा जो कि प्राकृतिक विज्ञान के सिद्धांत से अभिप्रेरित है समाज विज्ञान के विषयों, विशेष रूप से राजनीति विज्ञान की अवधारणा को समग्र दृष्टि प्रदान करते हुए, इस विषय को आधुनिक रूप प्रदान करने एवं विश्लेषण के उपकरण के रूप में समझने का यत्न है। इस उपागम से समाज के विभिन्न तत्वों की अंतर्निर्भरता पर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसके परिणाम स्वरूप अन्तःनिर्भरता व अन्तःक्रियाओं को नियन्त्रित किये जाने वाले नियमों की खोज की जाने लगी, विशेष रूप से राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ में। इस अवधारणा ने एक सामान्य सिद्धान्त के दिशा-निर्देश बनाने का प्रयास किया है जिसके माध्यम से इस विषय की बेहतर समझ विकसित करते हुए, इसके परिवर्तनकारी कारकों एवं गत्यात्मकता को विश्लेषित करते हुए नवीन सिद्धांतों की पहचान हो सके।

व्यवस्था विश्लेषण ने यद्यपि एक विश्लेषण के उपकरण के रूप में समाज विज्ञान सहित, राजनीतिक विज्ञान को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है तथापि इसकी सबसे बड़ी सीमा यह है कि, यह पूरी राजनीतिक व्यवस्था को एक उपकरण अथवा मशीन के रूप में देखता है। यह कोई मानकीकृत सिद्धांत प्रतिपादित न करते हुए, मात्र तथ्यपरक विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में ही कार्य करता है। दूसरी जो बड़ी कमी इस अवधारणा को लेकर है वह है, इसकी सीमाओं के निर्धारण की। समाज विज्ञान के विषयों की व्यापकता और परस्पर एक दूसरे से गुंथा होना, इन विषयों के विश्लेषण और

व्यवस्था सिद्धांत के रूप में इसकी सीमाओं का स्पष्ट निर्धारण करने में इसकी कमी के रूप में दिखायी देती है। तथापि अपनी सीमाओं के बावजूद भी व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीतिक सिद्धांत के विकास में एवं उसको आधुनिक बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अभ्यास प्रश्न

1.राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के लिए व्यवस्था सिद्धांत की अभिप्रेरणा किस सिद्धांत से प्राप्त होती है।

2.सामान्य व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन किस प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक ने किया था ?

3.किस राजनीतिक विचारक ने, राजनीतिक व्यवस्था को मानव सम्बन्धों का वह स्थायी संरूप माना है जिसके अंतर्गत शक्ति, नियम और सत्ता महत्वपूर्ण मात्रा में निहित हों ?

4.अंतःक्रिया एवं अंतःनिर्भरता राजनीतिक व्यवस्था का आवश्यक गुण है। यह कथन सत्य है अथवा असत्य?

5.7. सारांश

व्यवस्था विश्लेषण ने राजनीतिक प्रक्रियाओं और संरचनाओं को समझने का एक नवीन आयाम प्रदान किया है। राजनीतिक सिद्धांत को परम्परावादी अवधारणा से आधुनिक अवधारणा की तरफ ले जाने में व्यवस्था विश्लेषण का महत्वपूर्ण योगदान है। व्यवस्था विश्लेषण के द्वारा राजनीतिक प्रक्रियाओं और उसकी गत्यात्मकता को समझने में सहायता प्राप्त हुयी तथा आधुनिक एवं नवीन अवधारणाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीतिक व्यवस्था को समाज के अन्य घटकों के सापेक्ष समग्रता में विश्लेषित करने का यत्न किया। वर्तमान आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत के विकास में व्यवस्था विश्लेषण के सिद्धांत ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

5.8. शब्दावली

व्यवस्था- यह शब्द भौतिक विज्ञान से समाज विज्ञान में लिया गया है। व्यवस्था का अर्थ सुपरिभाषित अंतर-क्रियाओं के ऐसे समूह से है जिसकी सीमाएं निर्धारित की जा सकें। व्यवस्था की अवधारणा में विभिन्न समूह अंतःक्रिया और समन्वय की प्रक्रिया से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं और एक सीमा में पर्यावरण से प्रभावित होते और पर्यावरण को प्रभावित करते हुए स्थायित्व स्थापित करने का यत्न करते हैं।

मांग- किसी राजनीतिक व्यवस्था में पर्यावरण द्वारा कुछ निश्चित नियमों, सेवा अथवा वस्तु की अपेक्षा में अपने विचारों को राजनीतिक व्यवस्था में सम्प्रेषित करना, राजनीतिक व्यवस्था की मांग कहलाती है।

रूपांतरण- राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत जिस प्रक्रिया द्वारा विविध मांगों को निर्णयन की स्थिति में लाया जाता है उसे रूपांतरण कहा जाता है।

निर्गत- राजनीतिक व्यवस्था में मांग और समर्थन के सापेक्ष, रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा नियम, विनियम, विधि, व्यवस्था, वस्तु आदि के रूप में जो भी सरकार द्वारा प्रदत्त किया जाता है, उसे निर्गत कहा जाता है।

पर्यावरण- जिस राजनीतिक वातावरण और व्यवस्था में समस्त संरचनाएं कार्य करती हैं और मांग,समर्थन, रूपांतरण सहित पुर्ननिवेश की समस्त प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं, उसे राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण कहा जाता है।

अन्योन्याश्रय- अन्योन्याश्रय का अर्थ है परस्पर एक दूसरे पर आश्रित होना। व्यवस्था के अंतर्गत एक अंग के गुणों में परिवर्तन का प्रभाव दूसरे संघटकों पर स्वभाविक रूप से पड़ता है जिसे अन्योन्याश्रिता कहते हैं।

5.9.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के लिए व्यवस्था सिद्धांत की अभिप्रेरणा 'सामान्य व्यवस्था सिद्धांत' से प्राप्त होती है।

2.सामान्य व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक लुडविग वान बर्टलनफी ने किया था।

3.राबर्ट डहल ने राजनीतिक व्यवस्था को मानव सम्बन्धों का वह स्थायी संरूप माना है जिसके अंतर्गत शक्ति, नियम और सत्ता महत्वपूर्ण मात्रा में निहित हों।

4.यह कथन सत्य है।

5.10.संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, जैन

2.तुलनात्मक राजनीति, जे0 सी0 जौहरी

3.तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं

5.11.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

5.12.निबंधात्मक प्रश्न

1.राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ में व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत की विवेचना करें।

2.व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत मानवीकीय विषयों और विशेष रूप से राजनीति विज्ञान विषय के विश्लेषण के उपकरण के रूप में कहाँ तक उपयुक्त है? समालोचना करें।

3.व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत के विशेषताओं का उल्लेख करते हुए, इसकी उपादेयता एवं सीमाओं की विवेचना करें।

इकाई - 6 निवेश निर्गत विश्लेषण (डेविड ईस्टन)

इकाई की संरचना

6.1प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 विश्लेष्णात्मक अवधारणा

6.4 निवेश निर्गत विश्लेषण

6.5 निवेश निर्गत विश्लेषण के तत्व

6.6 उपादेयता और सीमाएं

6.7 सारांश

6.8. शब्दावली

6.9.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10.संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.11.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

6.12.निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

राजनीति विज्ञान को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने में जिस अवधारणा ने अपना सर्वाधिक योगदान दिया, वह डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था का सिद्धांत था। डेविड ईस्टन कनाडाई मूल के अमेरिकी राजनीति विज्ञानी थे, जो कि अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर थे। डेविड ईस्टन ने व्यवस्था सिद्धांत और निवेश-निर्गत विश्लेषण की अवधारणा का प्रतिपादन कर राजनीति विज्ञान को अपना अमूल्य योगदान दिया। डेविड ईस्टन ने न सिर्फ अपने राजनीतिक सिद्धांतों से 1950 के दशक में व्यवहारवादी सिद्धांतों और अवधारणओं को बल प्रदान किया अपितु 1970 के दशक के उत्तर व्यवहारवाद में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान दिखायी देता है।

व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन 1953 में डेविड ईस्टन ने अपने प्रसिद्ध लेख 'द पोलिटिकल सिस्टम: एन इन्क्वायरी इनटू द स्टेट ऑफ पोलिटिकल (*The Political System: An Inquiry into the State of Political Science*) में राजनीति विज्ञान के विश्लेषण के सिद्धांत के रूप में किया। यद्यपि 'व्यवस्था' की अवधारणा का प्रयोग इसके पूर्व समाजशास्त्र और मनोविज्ञान जैसे विषयों में हो चुका था, किन्तु राजनीति विज्ञान के विश्लेषण के संदर्भ इसका बेहतर प्रयोग डेविड ईस्टन के ही सिद्धांत द्वारा संभव हो सका। इस विषय को आधुनिक कलेवर देने का श्रेय अधिकांशतः तुलनात्मक राजनीति की धारा को जाता है, जिसमें व्यवस्था सिद्धांत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कालांतर में ईस्टन ने अपने विविध कृतियों जैसे 'एन एप्रोच टू द एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल सिस्टम'(1953), ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस'(1965), और 'ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ' (1965) द्वारा व्यवस्था सिद्धांत को और पुष्ट किया। व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीति की प्रक्रिया को समझने का एक सरल सार्वभौमिक आधार प्रदान किया जो एक समान रूप से किसी भी राजनीतिक प्रक्रिया को समझने में सहायक है। ईस्टन ने राजनीतिक विश्लेषण के क्षेत्र में एक सामान्य सिद्धांत का प्रतिपादन किया है जिसके द्वारा किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण एक पैमाने पर किया जा सकता है। ईस्टन के व्यवस्था सिद्धांत के द्वारा जहाँ विकसित राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं को विश्लेषित किया जा सकता है, वहीं अर्द्ध विकसित अथवा विकासशील व्यवस्था को भी उसी व्यवस्था सिद्धांत के द्वारा विश्लेषित किया जा सकता है। व्यवस्था सिद्धांत जहाँ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के विश्लेषण में सहायक है वहीं उसके द्वारा स्थानीय स्तर पर भी समस्याओं का विश्लेषण किया जा सकता है। डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा ने राजनीतिक व्यवस्था को समझने का एक सरल सार्वभौमिक आधार प्रदान किया, जोकि राजनीति को 'मूल्यों के आधिकारिक आवंटन' के रूप में ही देखती है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- राजनीति विज्ञान के संदर्भ में व्यवस्था विश्लेषण की अवधारणा को बेहतर रुप से समझ सकेंगे।
- डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को जान सकेंगे।
- राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ में आगत, निवेश, रूपांतरण और निर्गत की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- राजनीतिक व्यवस्था के तहत नीतिगत निर्माण की अंतः प्रक्रियाओं को समझ सकेंगे।

- राजनीतिक व्यवस्था के सामान्य और सार्वभौमिक तत्वों को पहचान सकेंगे।

6.3 विश्लेषणात्मक अवधारणा

डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में राजनीतिक प्रक्रियाओं को उनके सूक्ष्म स्तर पर समझने का यत्न है। ईस्टन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत दो अर्थों में सामान्य है-

प्रथम, ईस्टन इस विचार को स्वीकार नहीं करता है कि, अलग-अलग राजनीतिक संरचनाओं उनकी प्रक्रियाओं और समस्याओं के विश्लेषण के लिए अलग-अलग सिद्धांत होने चाहिए, अपितु एक ही सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से सभी स्तरों पर लागू होना चाहिए। दूसरा ईस्टन का यह मानना है कि, राजनीतिक सिद्धांत का मुख्य कार्य उन सामान्य समस्याओ, सिद्धांतों और प्रक्रिया का विश्लेषण करना है जो समस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं में एक समान रूप से पायी जाती है।

6.4 निवेश निर्गत विश्लेषण

डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था का निवेश-निर्गत विश्लेषण आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था का आधार है। ईस्टन ने राजनीतिक सिद्धांत को एक व्यवस्थित और सुसंगत विश्लेषण का आधार प्रदान किया है। ईस्टन के अनुसार, राजनीतिक व्यवस्था संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का एक जटिल समूह है जो समाज के भीतर आधिकारिक मूल्यों का आवंटन और विनियोजन करता है। राजनीतिक व्यवस्था अंतः क्रियाओं का एक समूह है जिसके अंतर्गत आगत मांगों को निर्गत में बदला जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन का महत्व इस रूप में है कि, राजनीतिक व्यवस्था के तहत सत्ता, पर्यावरण से प्राप्त मांगों को किस प्रकार रूपांतरित करती है और उसका समाज पर किस प्रकार का प्रभाव पुनः दृष्टिगत होता है। व्यवस्था के तहत किस प्रकार विभिन्न इकाईयों की अंतःक्रियाएं एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा अधिकारपूर्ण निर्णयों और उनके आधिकारिक आवंटन का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है, और इसके प्रभाव का विश्लेषण भी इस अवधारणा के द्वारा प्रभावी रूप से किया जा सकता है। राजनीतिक व्यवस्था के सत्ता द्वारा रूपांतरण की प्रक्रिया से प्राप्त परिणामों को उस राजनीतिक व्यवस्था का निर्गत अथवा प्रदा कहा जाता है। किसी व्यवस्था में निर्गत की प्रक्रिया, उसके आगत अथवा आदा पर निर्भर करती है।

व्यवस्था को चलायमान बनाए रखने के लिए एक निश्चित संतुलन के साथ व्यवस्था की विभिन्न इकाईयों का कार्य करना आवश्यक है। आगत (Input)के बिना कोई व्यवस्था कार्य नहीं कर सकती

और उससे होने वाला निर्गत (Output) उस व्यवस्था का लक्ष्य अथवा उद्देश्य। निर्गत अथवा प्रदा ही किसी राजनीतिक वयवस्था का आधार होती है जिसके द्वारा किसी राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को जाना जा सकता है। मूल्यों का आधिकारिक आवंटन और आधिकारिक निर्णय के साथ उनका वियोजन के द्वारा समर्थन प्राप्त करना हीराजनीतिकव्यवस्था के वैधानिकता का आधार है।

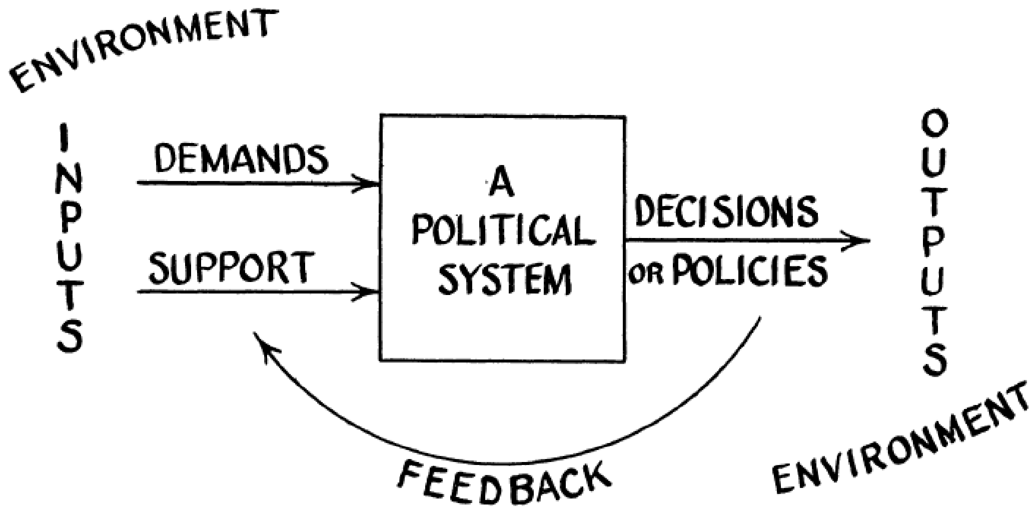

डेविड ईस्टन का निवेश निर्गत मॉडल

6.5 निवेश निर्गत विश्लेषण के तत्व

व्यवस्था सिद्धांत के निवेश-निर्गत विश्लेषण की विशेषताओं को उसके विभिन्न इकाईयों के रूप में समझना अपेक्षाकृत आसान होगा। निवेश-निर्गत विश्लेषण के निम्नलिखित तत्व इसकी विशेषताओं को भी इंगित करते हैं।

आगत (Input) - आगत अथवा आदा का अभिप्राय मांग तथा समर्थन से है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में पर्यावरण से कुछ मांगें रखी जाती हैं तथा उन मांगों के सापेक्ष रूपांतरण द्वारा निर्णय करने के निमित्त, व्यवस्था से कुछ समर्थन दिया जाता है। समर्थन उस राजनीतिक व्यवस्था में अपने निर्णयों के निमित्त दबाव बनाने अथवा उसके प्रति आकर्षित करने के निमित्त प्रयोग में लाया जाता है। राजनीतिक व्यवस्था को प्राप्त समर्थन, उसके लिए वैधता स्थापित करता है। इसके साथ ही समर्थन, राजनीतिक तंत्र को विभिन्न प्रकार की मांगों के दबाव से निपटने की शक्ति प्रदान करता है क्योंकि राजनीतिक तंत्र का अस्तित्व ही इस बात पर निर्भर करता है कि, उसे जनता का कितना समर्थन प्राप्त है। मांगों की वैधता तंत्र की क्षमता तथा स्थायित्व को समझने में सहायता करती है। मांग हमें यह समझने में सहायता करती है कि, किस तरह पर्यावरण सम्पूर्ण राजनीतिक तंत्र पर अपना प्रभाव डालता है।

माँग (Demand) - माँग मत की अभिव्यक्ति है, जो किसी राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक सत्ता से पर्यावरण के द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के रूपांतरण की अपेक्षा में व्यक्त की जाती है। माँगें विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं किन्तुराजनीतिकसत्ता सिर्फ उन्हीं माँगों को स्वीकार करती है जो उसराजनीतिकव्यवस्था के अनुकूल हो और जिसको पूरा कर सकने की उसकी क्षमता हो। माँगों की अपनी एक निर्दिष्ट दिशा होती है जिसका बहाव सदैव सत्ता की ओर होता है।

समर्थन (Support) - राजनीतिक व्यवस्था को अपने आप को सुचारू रूप से संचालित करने एवं उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों की वैधता स्थापित करने के निमित्त समर्थन की आवश्यकता होती है जो उसराजनीतिकव्यवस्था के पर्यावरण से प्राप्त होती है। राजनीतिक व्यवस्था का स्थायित्व और उस राजनीतिक व्यवस्था की कार्यकुशलता, उसको प्राप्त समर्थन के स्तर और उसकी प्रकृति पर निर्भर करता है। माँगों को औचित्यपूर्ण बनाने में समर्थन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समर्थन ही राजनीतिक व्यवस्था को पर्यावरण से जोड़ती है।

निर्गत (Output)- निर्गत, वे उत्पादित वस्तुएं अथवा सेवाएं अथवा नीतियां हैं, जो आगत के रूपांतरण के बाद प्राप्त होती हैं। आगत को समर्थन के सूत्र के साथराजनीतिकसत्ता तंत्र के समक्ष निर्णयन हेतु रखा जाता है और उन विभिन्न माँगों के सापेक्षराजनीतिकसत्ता द्वारा लिया गया निर्णय, निर्गत की श्रेणी में आता है।

पुनर्निवेश (Feedback) - निर्गत का उद्देश्य, विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उपजी हुयी आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। निर्गत के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में, नीतियों, वस्तुओं और सेवाओं के रूप में नवीन तत्वों के प्रवेश के फलस्वरूप उत्पन्न व्यवस्था के बारे में राजनीतिक व्यवस्था में जो पुनः मत अथवा माँग के रूप में अभिव्यक्ति अथवा प्रतिक्रिया व्यक्त होती है, उसे पुनर्निवेश कहा जाता है। राजनीतिक व्यवस्था के भीतर सम्पादित होने वाले सभी कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य पुनर्निवेशन-चक्र का है, क्योंकि इसके द्वारा राजनीतिक कार्यों का चक्र संचालित होता रहता है।

पर्यावरण (Environment)- राजनीतिक व्यवस्था सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में अन्य व्यवस्थाओं जैसे कि- आर्थिक, धार्मिक आदि की तरह ही एक उपव्यवस्था है। पर्यावरण द्वारा इसकी अन्य सहयोगी उप-पद्धतियों का बोध होता है। कोई भी व्यवस्था एक निश्चित पर्यावरण में ही कार्य करती है अथवा दूसरे शब्दों में किसी भी व्यवस्था के संचालित होने के निमित्त एक पर्यावरण आवश्यक होता है। आंतरिक सामाजिक पर्यावरण को देखने से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक व्यवस्था वातावरण, मानव जनित क्रियाकलापों और सामाजिक पद्धतियों से प्रभावित होता है।

चरण	तत्व	कार्य	संबंध
1	**सामाजिक परिवेश**	आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ	इनपुट को प्रभावित करता है
2	**इनपुट** (Input)	जनता की **माँगें** और **समर्थन**	राजनीतिक प्रणाली को प्रविष्ट
3	**राजनीतिक प्रणाली** (Political System)	इनपुट को प्रक्रिया में लाकर निर्णय लेती है	आउटपुट उत्पन्न करती है
4	**आउटपुट** (Output)	**नीतियाँ** और **निर्णय**	समाज को प्रभावित करते हैं
5	**प्रभाव / परिणाम** (Impact)	नीतियों का सामाजिक प्रभाव	प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है
6	**फीडबैक** (Feedback)	जनता की प्रतिक्रिया	फिर से इनपुट को आकार देती है

6.6 उपादेयता और सीमाएं

निवेश निर्गत विश्लेषण में ईस्टन ने पुनर्निवेशन की प्रक्रिया को समाहित कर इसे गत्यात्मकता प्रदान की है। यह सिद्धांत राजनीतिक प्रक्रियाओं की गतिशीलता को समझने का यत्न करते हुए उस व्यवस्था में उत्पन्न हो रहे माँगों की प्रक्रिया को समझने का यत्न है। राजनीतिक परिवर्तन और विकास को समझने में इस सिद्धांत से बड़ी सहायता प्राप्त होती है। यह सिद्धांत किसी भी स्तर की राजनीतिक व्यवस्था को समझने और विश्लेषण हेतु उपयुक्त है। इस सिद्धांत ने अपने आप को किसी विशिष्ट राजनीतिक संरचना और व्यवस्था से न जोड़ते हुए, तुलनात्मक विश्लेषण को एक नयी अंतर्दृष्टि प्रदान करते हुए, सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया है। औरन यंग के अनुसार ''यह सिद्धांत राजनीतिशास्त्रियों द्वारा राजनीतिक विश्लेषण के लिए विकसित सभी क्रमबद्ध सिद्धांतों में सर्वाधिक अन्तर्वेशित सिद्धांत है।''

निवेश-निर्गत सिद्धांत की उपयोगिता और विशेषताओं के बावजूद इसकी कुछ सीमाएं भी दिखायी देती हैं जो विभिन्न आलोचकों के विचारों में भी अभिव्यक्त होता है। पॉल क्रेस के शब्दों में, ''ईस्टन का सिद्धांत राजनीति का सारहीन दर्शन है।'' ग्वीशियानी के अनुसार, ''यह सिद्धांत यथास्थितिवाद

को पुष्ट करता है।'' लिप्सन के अनुसार ईस्टन का सिद्धांत 'यांत्रिक व्याख्या' है। ईस्टन के निवेश निर्गत सिद्धांत की कमियों को निम्न रूप में देख सकते हैं-

1.यथास्थितिवाद- ईस्टन का सिद्धांत व्यवस्था को बनाए रखने पर बल देता है, यह व्यापक परिवर्तन और क्रांति का विश्लेषण नहीं करता है।

2.मानवीय तत्व की उपेक्षा- ईस्टन द्वारा व्यवस्था में प्रक्रिया तथा अंतःक्रिया पर विशेष बल दिया गया है, जिससे मानवीय तत्व की उपेक्षा प्रतीत होती है।

3.राजनीतिक तत्व की उपेक्षा- ईस्टन के सिद्धांत में सामाजिक पर्यावरण के विशद और व्यापक तत्वों को समाहित किया गया है, जिससे राजनीतिक तत्व की उपेक्षा का भान होता है। पर्यावरण में उपस्थित अनेक तत्वों को राजनीतिक स्वरूप में मानने में कठिनाई होती है।

यह सिद्धांत अपनी तमाम आलोचनाओं के बावजूद राजनीतिक सिद्धांत को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी है। इस सिद्धांत ने तुलनात्मक राजनीति और विश्लेषण की अवधारणा के विकास में नवीन मानदण्ड स्थापित किया है। यथास्थिति को लेकर होने वाली इसकी आलोचना पूर्ण रूपेण सत्य नहीं है क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था के अंदर क्रिया और अंतःक्रिया निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया को गतिशील बनाए रखता है और व्यवस्था के स्थायित्व को भी बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यस्था के अंदर क्रियाएं और अंतःक्रियाएं भी मानवीय तत्वों के कारण ही संभव है, अतैव यह आलोचना भी समीचीन प्रतीत नहीं होता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के साथ ही अपने अस्तित्व और विकास के लिए एक साथ कई भूमिकाओं का निर्वहन करता है जिससे कई बार भूमिकाएं मिश्रित स्वरूप में दिखायी देती हैं। विभिन्न अंगों की इकाई के रूप में कार्य करते हुए वह एक राजनीतिक इकाई के रूप में भी कार्य करता है अतएवराजनीतिकतत्वों की उपेक्षा किसी भी व्यवस्था में और विशेष रूप से राजनीतिक व्यवस्था में संभव प्रतीत नहीं होता। ईस्टन द्वारा प्रतिपादित निवेश-निर्गत सिद्धांत ने राजनीतिक सिद्धांतों को एक नए आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का माध्यम उपलब्ध कराया जिससे भिन्न-भिन्न परिवेश में कार्य रहे राजनीतिक व्यवस्थाओं को एक ही सार्वभौमिक मापदण्ड पर विश्लेषित किया जा सके। इसके साथ कुछ ऐसे सार्वभौमिक तत्वों और प्रक्रियाओं की पहचान की जो समस्त व्यवस्थाओं में सामान्य और अनिवार्य रूप से पाए जाते हों।

अभ्यास प्रश्न

1.डेविड ईस्टन द्वारा व्यवस्था सिद्धांत कब तथा किस लेख द्वारा प्रतिपादित किया गया ?

2.डेविड ईस्टन मूलतः कहाँ का था ?

3.ईस्टन राजनीति को किस रूप में परिभाषित करते हैं ?

4.राजनीतिक व्यवस्था में समर्थन कहाँ से प्राप्त होता है ?

5.राजनीतिक व्यवस्था में रूपांतरण की प्रक्रिया किसके द्वारा सम्पादित की जाती है ?

6.7 सारांश

डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था सिद्धांत, राजनीतिक सिद्धांत के आधुनिकीकरण की दिशा में एक मील का पत्थर है। व्यवस्था सिद्धांत ने न सिर्फ विश्लेषण के निमित्त आधुनिक परिप्रेक्ष्य उपलब्ध कराया, अपितु राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के कुछ सर्वमान्य सिद्धांतों और तत्वों की भी पहचान की। नीति विश्लेषकों के द्वारा ईस्टन के सिद्धांत के पाँच चरणों यथा - आगत, रूपांतरण, निर्गत, पुनर्निवेश तथा पर्यावरण के द्वारा नीतियों का विश्लेषण और अध्ययन किया जाता है जिससे नीतिगत निर्माण की प्रक्रिया को बेहतर बनाने में सहायता मिल सके। राजनीति की गत्यात्मकता और उसकी विभिन्न अंतःक्रियाओं को भी इस सिद्धांत द्वारा समझ पाने में सहायता प्राप्त हुयी। डॉ0 एस0 पी0 वर्मा ने ईस्टन के राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण उपागम की दो विशेषताओं का उल्लेख किया है। प्रथम, इस विश्लेषण पद्धति में सन्तुलन दृष्टिकोण से आगे तक जाकर व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों और गत्यात्मकताओं पर ध्यान दिया गया है। यह व्यवस्था को ऐसी निरंतरता मानता है जिसमें विभिन्न तत्वों और पर्यावरण में अदान प्रदान बना रहता है तथा व्यवस्था की अनुकूलन क्षमता बढ़ती रहती है। दूसरा, इसके द्वारा प्रस्थापित प्रत्ययों, प्रविधियों और अवधारणओं के माध्यम से तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक व्यवस्था का तुलनीय अवलोकन संभव हो पाता है।

ईस्टन ने राजनीति को 'मूल्यों के आधिकारिक आवंटन' के रूप में परिभाषित किया है, इस रूप में मूल्य कितने आधिकारिक हैं और इनका आवंटन किस प्रकार हुआ है, इसको समझने में डेविड ईस्टन का यह निवेश-निर्गत सिद्धांत महत्वपूर्ण है। ईस्टन का राजनीतिक व्यवस्था का यह सिद्धांत निश्चित रूप से राजनीतिक सिद्धांत के विकास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है।

6.8 शब्दावली

निवेश - राजनीतिक व्यवस्था के अंदर जो मांग और समर्थन विभिन्न माध्यमों/संरचनाओं से आता है, उसे राजनीतिक व्यवस्था का निवेश कहा जाता है।

रूपांतरण- राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत जिस प्रक्रिया द्वारा विविध मांगों को निर्णयन की स्थिति में लाया जाता हैउसे रूपांतरण कहा जाता है।

निर्गत- राजनीतिक व्यवस्था में मांग और समर्थन के सापेक्ष, रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा नियम, विनियम, विधि, व्यवस्था, वस्तु आदि के रूप में जो भी सरकार द्वारा प्रदत्त किया जाता है, उसे निर्गत कहा जाता है।

पर्यावरण- जिस राजनीतिक वातावरण और व्यवस्था में समस्त संरचनाएं कार्य करती हैं और मांग,समर्थन, रूपांतरण सहित पुर्ननिवेश की समस्त प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं, उसे राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण कहा जाता है।

समर्थन - राजनीतिक व्यवस्था को अपने आप को सुचारू रूप से संचालित करने एवं उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यो की वैधता स्थापित करने के निमित्त समर्थन की आवश्यकता होती है जो उसराजनीतिकव्यवस्था के पर्यावरण से प्राप्त होती है।

पुनर्निवेश ; - निर्गत के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में, नीतियों, वस्तुओं और सेवाओं के रूप में नवीन तत्वों के प्रवेश के फलस्वरूप उत्पन्न व्यवस्था के बारे में राजनीतिक व्यवस्था में जो पुनः मत अथवा माँग के रूप में अभिव्यक्ति अथवा प्रतिक्रिया व्यक्त होती है, उसे पुनर्निवेश कहा जाता है। राजनीतिक व्यवस्था के भीतर सम्पादित होने वाले सभी कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य पुनर्निवेशन-चक्र का है, क्योंकि इसके द्वारा राजनीतिक कार्यों का चक्र संचालित होता रहता है।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.डेविड ईस्टन द्वारा व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन 1953 में प्रकाशित लेख 'एन एप्रोच टू द एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल सिस्टम' में किया गया।

2.डेविड ईस्टन मूलतः कनाडाई मूल का था।

3.ईस्टन राजनीति को 'मूल्यों के आधिकारिक आवंटन' के रूप में परिभाषित करते हैं।

6.राजनीतिक व्यवस्था में समर्थन, पर्यावरण से प्राप्त होता है।

4.राजनीतिक व्यवस्था में रूपांतरण की प्रक्रिया राजनीतिक सत्ता द्वारा सम्पादित की जाती है।

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.एन एप्रोच टू द एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल सिस्टम, डेविड ईस्टन

2.तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, जैन

3.तुलनात्मक राजनीति, जे0 सी0 जौहरी

6.11.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

6.12.निबंधात्मक प्रश्न

1.ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीति विज्ञान के सिद्धांत को एक नयी दिशा प्रदान की। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

2.राजनीति मूल्यों का आधिकारिक आवंटन है। इस कथन की समीक्षा करें।

3.ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था सिद्धांत की विशेषताओं और उसकी सीमाओं की विवेचना करें।

4.ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था सिद्धांत, राजनीति विज्ञान के विश्लेषण का सार्वभौमिक सिद्धांत है। व्याख्या करें।

इकाई - 7 संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 विश्लेष्णात्मक अवधारणा

7.4 संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम

7.5 उपादेयता और सीमाएं

7.6. सारांश

7.7. शब्दावली

7.8.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9.संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.10.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

7.11.निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

राजनीति विज्ञान के विकास के चरण को आधुनिक कलेवर देने का श्रेय अधिकांशतः तुलनात्मक राजनीति की धारा को जाता है। तुलनात्मक राजनीति को यदि, व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीति की प्रक्रिया को समझने का एक सरल सार्वभौमिक आधार प्रदान किया तो संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम ने राजनीतिक व्यवस्था को उसकी विभिन्न संरचनाओं और उसकी कार्यप्रणाली तथा उसके प्रभावों के संदर्भ में देखते हुए व्यवस्था सिद्धांत को एक पूर्णता प्रदान की। संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम, की प्रेरणा नृविज्ञान से प्राप्त होती है जो अपने अध्ययन में संरचनाओं और उन संरचनाओं के कृत्यों पर बल देता है तथा यह मानता है कि, संरचनाओं का कुछ निश्चित कृत्य ही समस्त व्यवस्था को चलायमान बनाए हुए है और इसलिए संरचनाओं के अस्तित्व और उनके स्थायित्व को समझने के लिए उन कृत्यों और संरचनाओं को जानना आवश्यक है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- राजनीति विज्ञान के संदर्भ में संरचना की अवधारणा बेहतर रुप से समझ सकेंगे।
- राजनीति विज्ञान के संदर्भ में कृत्य की अवधारणा को जान सकेंगे।
- व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत, जिन प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम प्रतीत नही होता, उसका समाधान संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम करने का यत्न करता है।
- संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम, कृत्यों और संरचनाओं के विश्लेषणात्मक उपागम के रुप में एक मूल्यांकनात्मक मॉडल प्रस्तुत करता है।

7.3 विश्लेषणात्मक अवधारणा

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम, विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में राजनीतिक व्यवस्था के संरचनाओं और प्रकार्यों को समझने का यत्न है। संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम के अंर्तगत सरकारों की संरचना एवं कार्यों का विश्लेषण किया जाता है। संरचनाओं के व्यवहार की प्रवृत्ति का विश्लेषण उसके स्थिरता और परिवर्तनशीलता को इंगित करती है। जिन संरचनाओं के निरंतर सम्पादित होने वाले व्यवहारों से संरचना के अस्तित्व को स्थिरता प्राप्त होती है उन क्रियाओं को प्रकार्यात्मक कहते हैं, जबकि इसके विपरीत जिन व्यवहारों से, संरचनाओं की स्थिरता पर प्रश्न लगता है अथवा खतरा होता है, उन्हें दुष्क्रियात्मकता की संज्ञा दी जाती है। संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम इन्हीं प्रकार्यात्मकता और दुष्क्रियात्मकता के संदर्भो में राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण एवं उनके विकास का मूल्यांकन करता है।

7.4 संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम

राजनीति विज्ञान में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम को 1960 तक सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त के विकास के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपागम माना गया था। यह उपागम ईस्टन के निवेश-निर्गत विश्लेषण से उत्पन्न असन्तोष के कारण अस्तित्व में आया, तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों में इसका प्रयोग विशेष रूप से आमण्ड ने किया है। यह उपागम समाज को अलग-अलग भागों में देखने के बजाय उसे एक समग्र के रूप में देखता है। इसमें किसी प्रणाली के हर एक भाग और उपभाग की संरचनाओं और कार्यों एवं इसके प्रकार्यात्मक पक्षों पर बल दिया जाता है।

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण दो संकल्पनाओं पर आधारित है। पहला संरचना और दूसरा प्रकार्य। संरचना को हम राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों के निष्पादन की व्यवस्था को कह सकते हैं। हर राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों की क्रिया, जिस व्यवस्था के द्वारा की जाती है उस व्यवस्थात्मक संगठन को संरचना का नाम दिया जाता है। संरचना द्वारा यह जरूरी नहीं कि वह एक ही प्रकार के कार्य करे, वह एक साथ कई प्रकार के कार्य कर सकती है। जैसे राजनीतिक दल, राजनीतिक व्यवस्था के भीतर एक संरचना मात्र है जो कई कार्य करते हैं जिसमें जनमत को सरकार को प्रेषित करना, महत्वपूर्ण विषयों पर जनमत तैयार करना, राजनीति व्यवस्था में अधिक से अधिक लोगों को व्यापक पैमाने पर भाग लेने के लिए प्रेरित करना आदि कार्य शामिल है।

ऑमण्ड का संरचनात्मक- प्रकार्यात्मक मॉडल

राजनीतिक प्रणाली (Political System)

इनपुट कार्य रूपांतरण **प्रक्रिया** **आउटपुट कार्य**

निर्णय निर्माण की प्रक्रिया

हित अभिव्यक्ति (Interest Articulation) **नियम निर्माण (Rule Making)**

हित समग्रण (Interest Aggregation) **नियम अनुप्रयोग (Rule Application)**

राजनीतिक समाजीकरण व भर्ती (Political Socialization & Recruitment) **नियम व्याख्या (Rule Adjudication)**

राजनीतिक संचार (Political Communication)

संरचना, व्यवस्था के भीतर उन प्रबंधों को बनाती है जो प्रकार्यों का निष्पादन करते हैं। राजनीतिक संदर्भों में जो व्यवस्था काम करती है, उसका एक ढांचा होता है और यह ढांचा (structure) या संरचना अपने आप में एक गतिशील मशीन की भांति कार्य करती है।

प्रकार्यों की संकल्पना के अर्थ को समझाते हुए एस0 पी0 वर्मा की मान्यता है कि, प्रकार्य में तीन बुन्यादी प्रश्न सम्मिलित हैं-

1. किसी व्यवस्था में कौन से बुनियादी कार्य किये जाते हैं?

2. यह कार्य किस उपकरण से किये जाते हैं? और

3. किन परिस्थितियों में इन प्रकार्यों का निष्पादन किया जाता है?

मर्टन ने प्रकार्य को परिभाषित करते हुए कहा है- ''प्रकार्य, वे प्रेक्षित परिणाम हैं जो किसी पद्धति के अनुकूल या पुनः समायोजन की व्याख्या करते हैं, और उन प्रेक्षित परिणामों की अपक्रिया (dysfunction) करते हैं जो व्यवस्था के अनुकूल या समायोजन को कम करतें हैं।''

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताएं-

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम इस बात की व्याख्या करता है कि कौन सी संरचना, राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत कौन से कार्यो का सम्पादन करती है। यह वस्तुतः व्याख्या और परीक्षण का एक उपकरण है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की मान्यता यह है कि, मनुष्य सुसंगत ढंग से क्रिया करता है और पुरानी क्रियाओं को दोहराता रहता है। जहाँ ईस्टन ने राजनीति व्यवस्था को, 'मांगों-समर्थनों' तथा 'नीतियों, निर्णयों' के रूप में समझने का प्रयास किया है, वहीं ऑमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था को संरचना एवं प्रकार्य के विश्लेषण के रूप में विशेष तरीके से समझने का प्रयत्न किया है। इस कारण से संरचनात्क-प्रकार्यात्मक विश्लेषण की विशेषताएं निवेश, निर्गत विश्लेषण से कुछ भिन्न प्रकार की हो जाती हैं। ऑमण्ड के अनुसार राजनीति व्यवस्था के चार लक्षण है-

1.राजनीतिक व्यवस्था के भागों में आत्मनिर्भरता।

2.राजनीतिक व्यवस्था की सीमा।

3.राजनीतिक व्यवस्था द्वारा बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग।

संरचात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम में ऑमण्ड ने संरचनाओं और प्रकार्यों को विश्लेषित करने में राजनीतिक व्यवस्था को ही आधार बनाया है, परन्तु ऑमण्ड इस बात में अधिक आगे बढ़ गया कि,

इसने उन सब संरचनाओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया है जो राजनीतिक व्यवस्थाओं को विशेष प्रकृति प्रदान करती हैं।

इस उपागम में यह मानकर चला जाता है कि, राजनीतिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए व्यवस्था की संरचनाओं का कुछ कार्य या विकार्य अनिवार्यतः निष्पादित होने चाहिए। ईस्टन की भांति आमण्ड भी संरचनाओं और कार्यों को विश्लेषित करने में राजनीतिक व्यवस्था का ही आधार रखता है। इसने उन सब संरचनाओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया है जो राजनीतिक व्यवस्थाओं को विशेष प्रकृति प्रदान करती है। ’कार्य’ शब्द का व्यवहार भी विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होता है, कुछ संरचनाएं विशिष्ट और स्पष्ट कार्य करती हैं जिसे स्पष्ट कार्य ;डंदपमिज निदबजपवदेद्ध कहा जाता है जैसे संसद के द्वारा विधि निर्माण, न्यायपालिका द्वारा नीति-निर्णयन आदि। अधिकांशतः संविधानिक व्यवस्थाओं में स्पष्ट कार्यों का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है। इसके विपरीत, संरचनाओं के कुछ कार्य स्पष्ट नहीं होते और उनका पता तब तक नहीं हो पाता जबतक कि उनकी खोज नहीं की जाती। ऐसे कार्यों को अव्यक्त कार्य ;(Latent functions)कहा जाता है।

ऑमण्ड के अनुसार व्यवस्था में संरचनात्मक विभिन्नीकरण या विविधता हो सकती है, दूसरे शब्दों में किसी राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों का संपादन ’अ’ प्रकार की संरचनाओं के द्वारा हो सकता है तो किसी अन्य व्यवस्था में इन्हीं कार्यों का निष्पादन ’ब’ प्रकार की संरचनाएं का सकती हैं। यहाँ संरचनाओं की समानता मौलिक नहीं है, किन्तु व्यवस्था में बने रहने के लिए प्रकार्यों का एक सा निष्पादन अनिवार्य है। कुछ स्थितियों में कुछ संरचनाएं एक सी प्रतीत हो सकती हैं, किन्तु उनके कार्यों में बहुत हद तक भिन्नता पायी जाती है, जैसे भारतीय संसद और अमेरिकन कांग्रेस, चीन का साम्यवादी दल और भारत तथा अन्य लोकतांत्रिक देशों केराजनीतिकदल।

संरचनात्मक एकरूपता के स्थान पर इस उपागम में यह स्वीकार किया गया है कि, संस्कृति विशेष के अनुसार संरचनाओं में हेर-फेर या इनका रूप परिवर्तन या उनके स्थान पर नई प्रकार की संरचनाओं का निर्माण हो सकता है। संरचनाएं हर समय केवल प्रकार्य ही करती हो ऐसा इस उपागम में नहीं माना गया है। एक ही संरचना एक समय में प्रकार्य और दूसरे समय में विकार्य करने की स्थिति में धकेली जा सकती हैं। सामान्य तौर पर संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की कुछ सामान्य लक्षणों को निम्नवत देखा जा सकता है-

1.प्रत्येक व्यवस्था में संरचनाएं विद्यमान होती हैं, जिनकी पहचान की जा सकती है।

2.इन संरचनाओं के अंग व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करते हैं।

3.व्यवस्था की संरचनाओं के अंगों द्वारा किए गए कार्यों का महत्व,व्यवस्था के कार्यों के परिप्रेक्ष्य में ही है।

4.व्यवस्था की संरचनाओं के अंग कार्य की दृष्टि से अन्योन्याश्रित होते हैं।

5.ठन कार्यों का महत्व उसी समय तक है, जब तक वे व्यवस्था के अंग हैं।

6.व्यवस्था की प्रवृत्ति साम्य (Equillibrium) की ओर होती है।

राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्याख्या

ऑमण्ड के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था ''अन्तः क्रियाओं की ऐसी व्यवस्था है जो उन सभी स्वतन्त्र समाजों में पायी जाती है जो, कम व अधिक विधिसम्मत भौतिक बाध्यता को काम में लाते हुए या उसकी धमकी देते हुए एकीकरण और अनुकूलन स्थापित करने के कार्यों में लगे हुए है।'' ऑमण्ड की राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या से तीन बातें स्पष्ट होती हैं जो इस प्रकार है-

(अ) राजनीतिक व्यवस्था का स्थूल घटक है जो पर्यावरण को प्रभावित करता है और स्वयं पर्यावरण से प्रभावित होताहै और विधिसम्मत बल प्रयोग का प्रावधान उसे बनाये रखने का प्रमुख कारण है।

(ब) अन्तःक्रियाएं व्यक्तियों के बीच नहीं किन्तु उनके द्वारा स्वीकृत भूमिकाओं के बीच होती रहती है।

(स) राजनीतिक व्यवस्था एक ऐसी खुली हुई व्यवस्था है जो अपनी सीमाओं से बाहर स्थित घटकों और व्यवस्थाओं के साथ एक अनवरत् संरचारण सम्बन्ध के द्वारा जुड़ी हुई हैं।

ऑमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्यवस्था में ईस्टन के समान ही तीन चरण स्वीकार किये हैं-

(1) राजनीतिक व्यवस्था के निवेश

(2) रूपान्तरण प्रक्रिया तथा

(3) राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत।

राजनीतिक व्यवस्था का निवेश प्रकार्य राजनीतिक प्रकृति के प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाऐ होती हैं। ये चार वर्गों में रखी गयी हैं, यथा

(1) राजनीतिक समाजीकरण एवं भर्ती,

(2) हित स्वरूपण,

(3) हित समूहन और

(4) राजनीतिक संचार।

दूसरे शब्दों में राज व्यवस्था के औपचारिक स्वरूप तक पहुँचने के पहले व्यक्तिओं को राजव्यवस्था के मूल्यों एवं लक्ष्यों में शिक्षित व प्रशिक्षित हो जाना चाहिए। राजव्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि, पहले यह लघु स्तर पर विभिन्न मांगों एवं हितों को प्रकट एवं स्पष्ट कर लें। इसके पश्चात व्यापक आधार पर विभिन्न हितों से तालमेल बैठाकर समूहीकृत किया जाय। इन निवेश प्रकार्यो में राजनीतिक संचरण का महत्वपूर्ण स्थान होता है। संचरण के बिना राजव्यवस्था न बन सकती है और न ही कार्य कर सकती है।

प्रथम निवेश प्रकार्य 'राजनीतिक समाजीकरण' वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृति के मूल्य, विश्वास तथा संवेग, प्रमान और आगामी पीढ़ियों को प्रदान किये जाते हैं। व्यक्ति इसके माध्यम से किसी राजनीतिक घटना के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है तथा विभिन्न प्रकार के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पर्यावरण का मूल्यांकन करता है। यही प्रक्रिया व्यक्ति या व्यक्ति-समूह की राजनीतिक मनोवृत्तियों तथा मूल्यों का निर्धारण करती है।

समाजीकरण की शैली विशिष्ट या विस्तृत हो सकती हैं। इसका संचार राजनीतिक संरचनाओं की विभिन्नीकृत और विशिष्ट प्रकृति हो सकता है। उसका स्वरूप सार्वभौमिक या एकदेशीय जैसे रक्त सम्बन्ध, हित समूह दल आदि की गतिविधियां हो सकती हैं। ये विभिन्न प्रकार्य, विभिन्न प्रकार तथा मात्रा में निष्ठाएं उत्पन्न करते हैं। विकसित और विकासशील प्रकार्यों में यह द्वितीयक एवं विशिष्ट संरचनाओं द्वारा विशिष्ट एवं अभिव्यक्त व्यक्तिकार्यों ;तवसमद्ध के रूप में हो सकता है।

राजनीतिक समाजीकरण की संधिरेखा पर ही राजनीतिक भर्तीकरण का प्रकार्य अवस्थित है। वह व्यवस्था के सदस्यों को समाजीकरण के आधार पर विभिन्न व्यक्तिकार्यों, पदों निपुणताओं आदि के लिए भर्ती करता है। वहां से राजनीतिक ज्ञानात्मक मानचित्र मूल्य, प्रत्याशाएं, प्रभाव आदि प्राप्त होते हैं। इस प्रकार राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक संस्कृति के दीक्षा की प्रक्रिया है तथा राजनीतिक भर्ती राजव्यवस्था के सदस्यों का राजनीति में प्रवेश है।

हित-स्वरूपीकरण मुख्य रूप से किसी व्यवस्था की राजनीतिक सीमाओं को निर्धारित करता है। यह राजनीतिक संस्कृति व राजनीतिक समाजीकरण पर आधारित होता है। इसमें हित अभिव्यक्ति, प्रथम चरण होता है, जिसमें व्यक्ति और समूह अपनी मांगों को राजनीतिक व्यवस्था के ध्यान देने योग्य बनाने के लिए प्रारम्भिक रूप प्रदान करके सत्ताओं को अपने उद्देश्यों के अनुरूप विधियों से संबोधित करते हैं। यह प्रकार्य अभिव्यक्त या अप्रकट, विस्तृत या विशिष्ट, सामान्य या एकदेशीय, साधनात्मक या भावनात्मक शैली से किया जा सकता है।

विभिन्न हितों का स्वरूप स्पष्ट हो जाने पर उन्हें पुनः समूहीकृत करना आवश्यक होता है। राजनीतिक व्यवस्था विभिन्न हितों दावों और मांगों का समूहीकरण करके नीति निर्माण करती है। ऑमण्ड की यह मान्यता है कि, हित समूहीकरण सही अर्थोंमेंनिर्णय के लिए या स्थानान्तरण के लिए मांगों के संयुक्तीकरण के माध्यम से अनेक विकल्प प्रस्तुत करना है। हित समूहीकरण का प्रकार्य दो प्रकार से संचालित किया जा सकता हैः

(1) विभिन्न हितों को संयुक्त अथवा समायोजित करके या

(2) एकदेशी नीति के प्रतिमान के प्रति निष्ठा रखने वाले राजनीतिक व्यक्तियों की भर्ती द्वारा।

हित समूहीकरण से व्यवस्था के निर्गत प्रकार्यों को सरल, कार्य कुशल, मापनीय, दायित्वपूर्ण तथा सीमा संधारण (Boundry Maintenance)मेंसहायक बनाया जा सकता है।

राजनीतिक संरचरण हर प्रकार की राजनीतिक अंतः क्रियाओं में होता है। संचार की संरचनाओं से ही रूपान्तरण प्रक्रिया के लिए मांग और समर्थन राजनीतिक व्यवस्था में आते हैं और इन्हीं के माध्यम से राजनीतिक रूपान्तरण, राजनीतिक व्यवस्था के निर्गतों के रूप में पहुँचते हैं अतः संचार की संरचनाए निवेशों को रूपान्तरण के लिए ले जाने और रूपान्तरणों को निर्गतों के रूप में राजनीतिक व्यवस्था और अन्य व्यवस्थाओं तथा पर्यावरण में पहुँचाने का कार्य करती है। संचार शैली अभिव्यक्त या अप्रकट, विस्तृत या विशिष्ट, व्यापक या एकदेशीय, भावात्मक तटस्थ या भावात्मक हो सकती है। इसे हम चार दृष्टियों से देख सकते हैं (1)सूचनाओं में समरसता (2)गतिशीलता (3)मात्रा तथा (4) दिशा।

निर्गत प्रकार्यः-

राजनीतिक व्यवस्था में मांग और समर्थन के सापेक्ष, रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा नियम, विनियम, विधि, व्यवस्था, वस्तु आदि के रूप में जो भी सरकार द्वारा प्रदत्त किया जाता है, उसे निर्गत कहा जाता है। नियम निर्माण राजव्यवस्थाएं सदा से करती आयी हैं। पहले इनका धार्मिक, राजतंत्रतीय तथा रूढ़िगत आधार होता था। वर्तमान प्रजातंत्रों में यह कार्य विधान मण्डलों, कार्यपालिकाओं, न्यायपालिकाओं तथा उच्च अधिकारी वर्ग द्वारा किया जाता है। इन्हें नियम निर्माण की संरचनाएं बताया गया है। इनकी शक्तिओं को संविधान या ''विधि के शासन'' की धारणा द्वारा नियंत्रित कर दिया जाता है। किन्तु जनतंत्रात्मक शासन में निर्वाचित संरचना जैसे लोकसभा को सर्वोपरि माना जाता है। व्यवहार में ये संरचनाएं भी दलों, गुटों, दबावसमूहों आदि के निर्देशन में कार्य करती हैं।

नियम प्रयुक्ति राजव्यवस्था का बृहद निर्गत है। यह नियम-निर्माण के पश्चात उसके क्रियान्वयन से संबंधित होता है। आधुनिक राजव्यवस्था में इसके निए नौकरशाही का विशाल संगठन खड़ा किया

गया है। इसके अतिरिक्त और भी दूसरी संरचनाएं यह कार्य करती हैं। नियम प्रयुक्ति में नियमों को साधारण रूप से सभी पर लागू कर दिया जाता है।

नियम अधिनिर्णयन (Rule- Adjudication) में उन नियमों को विशेष या व्यक्तिगत मामलों में लागू किया जाता है। राजव्यवस्था के उत्तर जीवन के लिए यह आवश्यक है कि इस अधिनिर्णयन प्रकार्यों को कुशल, योग्य, विशेषज्ञ तथा निष्पक्ष संरचनाओं द्वारा सम्पन्न कराया जाय। इससे राजव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों को निष्पादित करने के लिए प्रायः न्यायालयों का गठन किया जाता है।

राजव्यवस्थाओं का वर्गीकरणः-

आमण्ड ने उपर्युक्त प्रकार्य संवर्गों की तुलनात्मक योजना के अनुसार विकासशील देशों का अध्ययन किया है। संरचनात्मक-प्रकार्यवाद की समस्त अवधारणाओं को काम में लेते हुए उन्होंने विकासशील राजव्यवस्थाओं का वर्णन किया है। ऑमण्ड ने विकासशील देशों का अध्ययन करके 5 प्रारूप प्रस्तुत किये हैं जो इस प्रकार है। -

1.पहले प्रारूप को वे राजनीतिक प्रजातंत्र कहते हैं जैसे जापान, भारत, इजराईल आदि।

2.दूसरा प्रारूप घाना, नाईजीरिया आदि देशों में पाया जाता है इसे वह अभिभावक प्रजातन्त्र कहते हैं। इसके लोकतन्त्र की आकारात्मक संरचनाओं के होते हुए भी कार्यपालिकाओं और सेवीवर्गों में शक्ति के गुण होता है। व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका की स्थिति दुर्बल होती है।

3.तीसरा प्रारूप आधुनिकीकरणशील अल्पतन्त्र है, जिसमें प्रजातन्त्रात्मक संविधान स्थगित रहते हैं और सेवीवर्ग या सेना का प्रभुत्व स्थापित रहता है, जैसे- पाकिस्तान, सूडान आदि।

4.चौथा प्रारूप सर्वाधिकार वादी अल्पतन्त्र है, जैसे- उत्तर कोरिया आदि।

5.पांचवां प्रारूप परम्परात्मक अल्पतन्त्र है जो कि प्रायः राजतन्त्रात्मक, वंश परम्परागत होते हैं। भर्ती का आधार प्रास्थिति एवं रक्तवंश होता है। जैसे- भूटान, सउदी अरब आदि।

आमण्ड के अनुसार विकसित एवं विकासशील देशों की संसचनाओं एवं प्रकार्यों में भी अन्तर होता है। अमरीकी और ब्रिटिश व्यवस्थाओं की अनौपचारिक संरचनाएं, औपचारिक, प्राथमिक एवं द्वितीयक संरचनाओं द्वारा अनुप्राणित तथा उत्संस्कारित होती हैं जबकि, अपश्चिमी व्यवस्थाओं में इसका उल्टा होता है। यहां राजनीतिक प्रकार्य भी प्रायः शासनिक संरचनाओं द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। शहरों और ग्रामों का भेद वास्तविकता को छिपा नही सकता। इसमें शासनिक संरचनाओं का अधिक महत्व होता है।

7.5 उपादेयता और सीमाएं

संरचनात्मक प्रकार्यवादी उपागम आलोचना का शिकार रहा है। इस उपागम के सभी समर्थक यथास्थिति, स्थायित्व, संतुलन जैसी अनुदारवादी अवधारणाओं के पक्षधार हैं। इस उपागम में स्थायित्व और व्यवस्था अनुरक्षण की परिस्थितिओं पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है। केवल सन्धारणात्मक पक्ष पर जोर देने के कारण उसमें मानकीय तत्वों का समावेश हो जाता है। यह नियन्त्रण, शक्ति, नीति-निर्माण, प्रभाव आदि बलों के विश्लेषण में सक्षम नहीं है। इस उपागम की प्रयुक्ति के पश्चात किसी सामान्य सिद्धान्त के विकास की बात कहना भूतार्थ-निर्णयन (ex post facto jugdement) मात्र है, क्योंकि सिद्धान्त का अधिग्रहण तो पहले ही किया जा चुका है। इससे सोद्देश्यवादिता (Teleology) साफ-साफ झलकती है। प्रकार्यात्मक अपेक्षाओं की धारणा निगमनात्मक है जिसके कारण आनुभाविक यथार्थ को तोड़-मरोड़ कर प्रतिस्थापित करना पड़ता है।

हॉल्ट एवं रिचर्डसन ने आक्षेप किया है कि, ऑमण्ड संरचनाओं की व्याख्या प्रकार्यों की दृष्टि से करता है जो अनुचित है, क्योंकि इस तरह कभी सम्भावता सिद्धान्त का निर्माण नहीं किया जा सकता है। सरंचनाओं एवं प्रकार्यों में कोई युक्तियुक्त सम्बन्ध स्थापित नहीं किया गया। अनेक धारणाएं वर्तुलाकार ;ब्पतबनसंतद्ध है जो एक दूसरे पर आधारित होने के कारण किसी को भी स्पष्ट नहीं करती जिन्हें स्थापित करना शेष रहता है, उन्हें वह पूर्वधारणा बना लेता है।

ऑमण्ड ने जिन प्रकार्यों का विवेचन किया है, वे प्रकार्य राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा पूरी तरह से निष्पादित होते हैं या नही इसको निश्चय करने का कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसके आलावा आलोचकों द्वारा यह कहा जाता है कि, विकासशील देशों में से अनेक देशों में संरचनाएं स्वतः विकसित न होकर आरोपित की गयी है। इसी तरह स्वेच्छाधारी और सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं में संरचनाओं के स्वभाविक होने की परिस्थितियां बहुत कम होती हैं। यद्यपि इन व्यवस्थाओं में यह संरचनाएं संवैधनिक होती हैं फिर भी इनको स्वभाविक नहीं कहा जा सकता। अनेक देश ऐसे हैं जहां पर आरोपित संरचनाओं द्वारा व्यवस्थाओं का स्थायित्व व अनुरक्षण ही नही हो रहा अपितु उनमें विकास भी तेजी से होता पाया गया है, अतः इस दृष्टि से यह दृष्टिकोण दुर्बल पड़ जाता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम सर्वाधिक लोकप्रिय एवं बृहद् उपलब्धि है। इसी उपागम के कारण तुलनात्मक राजनीति का व्यापक अध्ययन आरम्भ हुआ है। इसने राजनीतिक घटनाओं, आंकड़ों, परिवर्तनों तथा प्रक्रियाओं के अध्ययन के प्रबन्धकीय संवर्ग प्रदान किये हैं। इस उपागम से समाज के विभिन्न तत्वों की अंतर्निर्भरता पर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसके परिणाम स्वरूप अन्तःनिर्भरता व अन्तःक्रियाओं को नियन्त्रित किये जाने वाले नियमों की खोज की जाने लगी। इस उपागम ने अनेक महत्वपूर्ण अवधारणाएं, मानकीकृत

शब्दावली तथा एक आधुनिक विचार बन्ध दिया है। सबसे बढ़कर इसने एक सामान्य सिद्धान्त के प्रति दिशा-निर्देश बनाने का प्रयास किया है। सिद्धान्त, तथ्य एवं शोध के एकीकरण पर जोर देने में यह सर्वथा अग्रणी उपागम रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1.संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम किसके द्वारा प्रतिपादित है?

2.संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण किन दो संकल्पनाओं पर आधारित है?

3.आगत कितने प्रकार के होते हैं?

4.ऑमण्ड ने विकासशील देशों के राज्यव्यवस्थाओं कितने प्रकार के प्रारूप बताए हैं?

5.परम्परात्मक अल्पतन्त्र का एक उदाहरण बताइए।

7.6. सारांश

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम के कारण तुलनात्मक राजनीति का व्यापक अध्ययन आरम्भ हुआ है जिसने राजनीतिक व्यवस्थाओं के समझ के लिए एक व्यापक और निरपेक्ष अवधारणा प्रदान किया है। इसने राजनीतिक घटनाओं, आंकड़ों, परिवर्तनों तथा प्रक्रियाओं के अध्ययन को नया परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है। इस उपागम से समाज के विभिन्न तत्वों की अंतर्निर्भरता पर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसके परिणाम स्वरूप अन्तःनिर्भरता व अन्तःक्रियाओं को नियन्त्रित किये जाने वाले नियमों की खोज की जाने लगी। इस उपागम ने अनेक महत्वपूर्ण अवधारणाएं, मानकीकृत शब्दावली तथा एक आधुनिक विचार बन्ध दिया है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम ने राजनीतिक व्यवस्था के कुछ मूलभूत संरचनाओं और प्रकार्यों की पहचान कर राजनीतिक व्यवस्थाओं, विशेष रूप से विकासशील देशों के राजनीतिक विकास के विविध पक्षों की पड़ताल हेतु एक दृष्टि प्रदान करता है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर बल देते हुए संरचनाओं में प्रकार्यात्मक अन्तर्निर्भरता का विश्लेषण करता है।

7.7. शब्दावली

संरचना- हर राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों की क्रिया, जिस व्यवस्था के द्वारा की जाती है उस व्यवस्थात्मक संगठन को संरचना का नाम दिया जाता है।

प्रकार्य- वे प्रेक्षित परिणाम हैं जो किसी पद्धति के अनुकूल या पुनः समायोजन की व्याख्या करते हैं, और उन प्रेक्षित परिणामों की अपक्रिया (dysfunction) करते हैं जो व्यवस्था के अनुकूल या समायोजन को कम करतें हैं।

निवेश- राजनीतिक व्यवस्था के अंदर जो मांग और समर्थन विभिन्न माध्यमों/संरचनाओं से आता है, उसे राजनीतिक व्यवस्था का निवेश कहा जाता है।

रूपांतरण- राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत जिस प्रक्रिया द्वारा विविध मांगों को निर्णयन की स्थिति में लाया जाता है उसे रूपांतरण कहा जाता है।

निर्गत- राजनीतिक व्यवस्था में मांग और समर्थन के सापेक्ष, रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा नियम, विनियम, विधि, व्यवस्था, वस्तु आदि के रूप में जो भी सरकार द्वारा प्रदत्त किया जाता है, उसे निर्गत कहा जाता है।

पर्यावरण- जिस राजनीतिक वातावरण और व्यवस्था में समस्त संरचनाएं कार्य करती हैं और मांग,समर्थन, रूपांतरण सहित पुर्ननिवेश की समस्त प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं, उसे राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण कहा जाता है।

7.8.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम ऑमण्ड द्वारा प्रतिपादित है।

2.संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण संरचना और प्रकार्य की संकल्पनाओं पर आधारित है।

3.आगत चार प्रकार के होते हैं।

4.ऑमण्ड ने विकासशील देशों के राज्यव्यवस्थाओं के पांच प्रारूप बताए हैं।

5.परम्परात्मक अल्पतन्त्र का उदाहरण भूटान है।

7.9.संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, जैन

2.तुलनात्मक राजनीति, जे0 सी0 जौहरी

3.तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं

7.10.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

7.11.निबंधात्मक प्रश्न

1.तुलनात्मक राजनीति की अवधारणा को संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम ने एक नवीन आयाम दिया है। इस कथ की विवेचना करें।

2.कृत्य और अपकृत्य को परिभाषित करते हुए, संरचना एवं पर्यावरण पर इसके पड़ने वाले प्रभाव की विवेचना करें।

3.संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को दर्शाते हुए, इसकी उपादेयता एवं सीमाओं की विवेचना करें।

इकाई 8 : राजनीतिक विकास

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 राजनीतिक विकास उपागम का अर्थ एवं व्याख्या

8.4 राजनीतिक विकास के लक्षण

8.5 राजनीतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

8.6 राजनीतिक विकास की विशेषताएं

8.7 राजनीतिक विकास के चरण

8.8 राजनीतिक विकास के संकट एवं चुनौतियां

8.9 राजनीतिक विकास के अभिकरण

8.10 आलोचना

8.11 सारांश

8.12 शब्दावली

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.14 संदर्भ ग्रंथ

8.15 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

8.16 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

राजनीतिक शास्त्र के विषय क्षेत्र में हुए परिवर्तनों तथा नवीन विकास के परिणामस्वरूप नये उपागमों का सृजन किया गया जिन्होंने राजनीति के अध्ययन को अधिक तर्कमूलक एवं व्यवहार संगत बनाया । परन्तु उन अध्ययनों की एक कमी यह जरूर थी कि उनके द्वारा मात्र विकसित एवं पश्चिमी देशों कि राजनीतिक व्यवस्था का ही अध्ययन किया जा सकता था, विकासशील एवं समस्याग्रस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं का नहीं ।

इसी समस्या ने राजनीति शास्त्रियों को ऐसी दिशा में सोचने के लिए विवश कर दिया जिससे पिछड़े एवं विकासशील देशों एवं समाजों की व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जा सके। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् **अन्तर्राष्ट्रीय** स्तर पर अनेक स्वतंत्र सम्प्रभु राष्ट्रों का उदय हुआ था । राजनैतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के उपरान्त भी इन राष्ट्रों के समक्ष राष्ट्र निर्माण से सम्बन्धित अनेक समस्याएॅ थीं । इन समस्याओं का अध्ययन एवं उनका निराकरण वास्तव में राजनीतिशास्त्रियों के लिए एक चुनौती थी। इसी कारण से राजनीतिशास्त्र में विकास उपागम का सृजन किया गया।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

1.राजनीतिक विकास उपागम के अर्थ को जान सकेंगे

2.राजनीतिक विकास के लक्षण उसको प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जान सकेंगे

3.राजनीतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

4.राजनीतिक विकास की विशेषताएं उसके विभिन्न चरण के बारे में जान सकेंगे

5.राजनीतिक विकास के अभिकरण उसके संकट और चुनौतियों के बारे में जान सकेंगे

8.3 राजनीतिक विकास उपागम का अर्थ एवं व्याख्या

राजनीतिक विकास की व्याख्या करना सरल कार्य नहीं है वस्तुत: विभिन्न विद्वानों ने इसका अर्थ अपने-अपने ढंग से निकालनेका प्रयत्न किया है । हटिंग्टन के अनुसार राजनीतिक विकास को विभिन्न ढंग से परिवर्तन के एक प्रतिरूप में परिभाषित किया गया है जो एक विशिष्ट प्रकार के समाज में विशिष्ट कारणों से विशिष्ट लक्ष्यों की ओर निर्दिष्ट है अथवा जो विशिष्ट प्रकार की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाओं में प्रकार्य के लिए आवश्यक है।

इजनस्टेड के अनुसार राजनीतिक विकास सम्बन्धी परिभाषा का अध्ययन करने से इसकी चार विशेषताएॅ स्पष्ट होती हैं :-

1.राजनीतिक विकास सम्बन्धी तथ्यों का आधार विवेकीकरण होता है इसमें विभिन्नीकरण तथा उपलब्धि का मापदण्ड विशिष्ट महत्व रखता है।

2.राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय एकता से सम्बद्ध प्रश्नों को भी राजनीतिक विकास के साथ जोड़ा जाता है। राष्ट्रीय व्यक्तिव के संकट तथा राजनैतिक समुदाय के जातीय आधार को राष्ट्रीयता से सम्बद्ध करके देखा जाता है।

3.बहुलवाद, प्रतिद्वन्दिता, सत्ता की समानता इत्यादि लोकतांत्रिक मान्यतायें भी राजनीतिक विकास का आधार लेकर चलती है।

4.विकेन्द्रीकरण, एकीकरण तथा जनतंत्रीकरण को राजनीतिक विकास की परिभाषाओं का सार काहा जाता है।

रोस्टोव ने राजनीतिक विकास के सम्बन्ध में दो स्थितियॉ बतलाई हैं-

1.बढ़ती हुई राजनीतिक राष्ट्रीय एकता।

2.राजनीतिक सहभागिता का व्यापक आधार।

राजनीतिक विकास के दो दृष्टिकोण से स्पष्ट किया जा सकता हे :-

1.एकमार्गी दृष्टिकोण के अनुसार राज्यों के विकास का केवल एक मार्ग है। सभी राष्ट्र इस मार्ग पर चलते हुए अपना राजनीतिक विकास कर सकते हैं। राजनीतिक विकास के लिए प्रयत्नशील राष्ट्रों के समक्ष विकसित राज्यों – पश्चिमी राष्ट्र, सोवियत संघ तथा चीन का आदर्श है। इन्हीं के आधार पर विभिन्न राज्यों की विकास अवस्थाओं का मापन किया जा सकता है।

2.बहुमार्गी दृष्टिकोण के अनुसार राजनीतिक विकास बहुआयामी होता है तथा वह अनेक दिशाओं में प्रयत्नशील होता है। राजनीतिक विकास बहुगार्मी ही होता है क्योंकि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के विकास एवं लक्ष्य निर्धारण में ऐतिहासिक, आर्थिक , सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का योगदान होता है।

वास्तव में राजनीतिक विकास की इतनी अधिक परिभाषायें मिलती हैं कि लूसियन डब्ल्यू पाई ने इसे अर्थ-भ्रांन्ति कहा है जो सिद्धान्त के विकास में अवरोध है। परन्तु पाई ने इस भ्रम के पीछे ठोस आधार ढूंढने का भी प्रयत्न किया है। एस0 पी0 वर्मा के विचार से लूसियन पाई ने ही सर्वप्रथम राजनीतिक विकास संप्रत्यय पर गहराई से विचार किया है तथा राजनीतिक विकास के समस्त साहित्य पर उनकी अमिट छाप है।

लूसियन डब्ल्यू पाई ने अपने ग्रन्थ Aspect of Political Development में व्यापक रूप से राजनीतिक विकास की संकल्पना का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। पाई ने अपने विचारों का वर्णन करने से पूर्व विभिन्न विद्वानों के विचारों को दस शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है जो इस प्रकार है :-

आर्थिक विकास की राजनीतिक पूर्वपेक्षाओं के रूप में राजनीतिक विकास

वेशन, बुशमैन इत्यादि विद्वानों ने इस बात पर बल दिया है कि आर्थिक विकास को राजनीतिक विकास को पूर्व अपेक्षा के रूप में देखा जा सकता है। राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियॉ, आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण निभा सकती है। पाई के मतानुसार यह एक नकारात्मक दृष्टिकोण है क्योंकि प्रत्येक देश की राजनीतिक एवं आर्थिक समस्यायें अलग-अलग होती हैं। अतएव दोनों के विकास को मिलाना तर्कसंगत नहीं है।

औद्योगिक समाजों के लिए विशिष्ट राजनीति के रूप में राजनीतिक विकास

यह धारणा आर्थिक हितों से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। रोस्टोव राजनीतिक विकास को औद्योगिक विकास से सम्बन्धित मानता है। यह धारणा भी राजनीतिक विकास एवं आर्थिक विकास को सम्मिलित रूप से देखती है, अतएव लूसियन पाई इसे स्वीकार नहीं करते।

राजनीतिक आधुनीकरण के रूप में राजनीतिक विकास

अनेक विद्वान जैसे कोलमैन डायस एवं लिपसेट पश्चिम व्यवहार एवं व्यवस्था को आधुनिक मानते हैं तथा उसे ही राजनितिक विकास का मानदण्ड मानते हैं। पाई के मत से पश्चिमी एवं आधुनिक शब्दों में भेद का कुछ अतिरिक्त आधार होना अनिवार्य है।

राजनीतिक विकास राष्ट्र राज्य के विकास के रूप में

सिलवर्ट, शिल्स तथा विलियम मैम्फोर्ड आदि विद्वानों ने रानीतिक विकास को राष्ट्र निर्माण से जोड़ने का प्रयास किया है। आधुनिक राष्ट्र राज्य के राजनीतिक जीवन का संगठन तथा राजनीतिक विकास के लिए अपरिहार्य समझे जाते हैं। इसके विपरीत पाई का यह मानना है कि राष्ट्रवाद राष्ट्रीय विकास को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक तो है परन्तु यह एक अनिवार्य शर्त नहीं है। राजनीतिक विकास को राष्ट्र निर्माण के अनुरूप समझा जाता है। परन्तु मात्र राष्ट्रवाद राजनीतिक विकास के लिए पर्याप्त नहीं है।

प्रशासनिक एवं कानूनी विकास के रूप में राजनीतिक विकास

पारसन्स तथा बेबर ने राजनीतिक विकास को प्रशासनिक एवं कानूनी विकास से सम्बद्ध करने का प्रयास किया है। उनकी राय के अनुसार आधुनिक राज्य के विकास के लिए कुशल प्रशासनिक व्यवस्था तथा प्रभावशाली नौकरशाही आवश्यक है। यहॉ पाई का मानना है कि प्रशासनिक व्यवस्था अधिक चुस्त करने से राजनीतिक विकास का मार्ग अवरूद्ध हो सकता है। प्रशासनिक

व्यवस्था के साथ-साथ नागरिक प्रशिक्षण एवं सहभागिता भी राजनीतिक विकास के लिए अनिवार्य है।

1.बहुसंख्यक सहभागिता के रूप में राजनीतिक विकास

यदि जनता राजनीतिक कार्य में अधिक से अधिक भाग ले तो राजनीतिक विकास सम्भव है। पश्चिमी देशों के विकास में इस तत्व का विशिष्ट योगदान है। इस दृष्टि से नये राष्ट्रों के विकास में राजनीतिक चेतना, राजनीतिक सहभागिता तथा मताधिकार के विस्तार इत्यादि को आवश्यक समझा जाता है। लूसियन डब्ल्यू पाई जन सहभागिता से इंकार नहीं करते परन्तु इससे भ्रष्ट्राचार पनपने का खतरा जिससे समाज की शक्तियों को नष्ट हो जाने का भय है।

2.लोकतंत्र के निर्माण के रूप में राजनीतिक विकास

लापारोम्बारा तथा रोनाल्ड पेनोक ने लोकतंत्र के निर्माण को ही राजनीतिक विकास का मार्ग माना है। लोकातांत्रिक संस्थाओं एवं व्यवहारों की स्थापना से ही राजनीतिक विकास सम्भव है। लूसियन डब्ल्यू पाई ने इससे असहमति प्रकट की है। उनके अनुसार लोकतंत्र एक मूल्य परक संप्रत्यय है जबकि विकास मूल्य से स्वतंत्र संप्रत्यय हे अतएव दोनों को परस्पर जोड़ना अनुचित है क्योंकि ऐसी स्थिति में विकास को पश्चिमी एवं अमेरिकी मूल्यों के रूप में देखा जायेगा जाक किसी भी दृष्टि से औचित्यपूर्ण नहीं होगा।

3.स्थायित्व एवं व्यवस्थित परिवर्तन के रूप में राजनीतिक विकास

अनेक विद्वानों के अनुसार विकास सामाजिक एवं आर्थिक विकास से सम्बन्धित होता है, अतएव उन्होंने स्थायित्व के होने पर ही उद्देश्यपूर्ण एवं व्यवस्थित परिवर्तन सम्भव है। पाई का मानना है कि व्यवस्था की मात्रा एवं उद्देश्य की अनिश्चितता के कारण यह दृष्टिकोण व्यवहारिक दृष्टि से वांछनीय नहीं है।

4.परियोजना एवं शान्ति के रूप में राजनीतिक विकास

कोलमैन, आमंड, परसन्स आदि विद्वानों ने राजनीतिक विकास को व्यवस्था की निर्बाध शान्ति की मात्रा एवं स्तर पर भी परियोजना की क्षमता के रूप में विचार किया है। पाई का मानना है कि इस प्रकार की व्याख्या को लोकतांत्रिक व्यवस्था पर ही लागू किया जा सकता है।

5.सामाजिक परिवर्तन की बहुस्तरीय प्रक्रिया के रूप में राजनीतिक विकास

इस दृष्टिकोण के अनुसार राजनीतिक विकास, सामाजिक, आर्थिक, परिवर्तन की प्रक्रिया का ही घटक है जो अन्य प्रकार के विकासों से सम्बन्धित है। इस दृष्टिकोण से सभी प्रकार के विकास यथा सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक को परस्पर सम्बन्धित माना जाता है । पाई इस आधार पर इस विचार की प्रशंसा करता है कि यहॉ विकास के रूप में ये एक दूसरे से सम्बद्ध है, विकास कार्य आधुनीकीकरण ही है।

8.4 राजनीतिक विकास के लक्षण

राजनीतिक विकास के उपर्युक्त विभिन्न अर्थों से यह स्पष्ट है कि इस अवधारणा की व्याख्या के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद एवं भ्रम है तथा इस भ्रम के पीछे भी कुछ ठोस सहमति का आधार है। पाई ने राजनीतिक विकास संप्रत्यय के तीन प्रमुख लक्षण बताये हैं । इन्हें वह समानता, क्षमता तथा विभिन्नीकरण कहता है। पाई की इस संकल्पना कों 'विकास संलक्षण' का नाम भी दिया जाता है। पाई ने अपने विश्लेषण को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

1.समानता

इसका अर्थ राजनीतिक गतिविधियों में जन-सहभगिता तथा जन-अन्तर्ग्रस्तता है । राजनीतिक विकास इस बात की अपेक्षा करता है कि लोग राजनीतिक क्रिया-कलापों में भाग लें और इन गतिविधियों से सम्बन्ध हो। यह भागीदारी लोकतांत्रिक अथवा सर्वाधिकारवादी हो सकती है परन्तु लोग सक्रिय नागरिक बन जाये तथा एक लोकप्रिय शासन का आधार प्रस्तुत किया जा सके । समानता का दूसरा अर्थ कानूनों का सार्वदेशिक स्वरूप होना आवश्यक है जो राज्य के सभी सदस्यों पर समान रूप से लागू होता है। समानता का तीसरा अर्थ यह है कि राज्य के विभिन्न पदों के लिए भर्ती करते समय सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति करते समय योग्यता तथा कार्य सम्पादन का मापदण्ड लागू होना चाहिये। इन तीन मापदण्डों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी राजनीतिक व्यवस्था में समानता का सिद्धान्त किसी सीमा तक लागू किया जा सकता है।

क्षमता

इससे राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता का बोध होता है। यह राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत कार्यों से सम्बन्धित है तथा यह एक सीमा तक समाज एवं अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकती है। इसका सम्बन्ध सरकारी निष्पादन तथा उन परिस्थितियों से है जो इस प्रकार के निष्पादन को प्रभावित करते हैं । इसका अर्थ सार्वजनिक नीति के क्रियान्वयन में प्रभावपूर्ण तथा कुशलता से भी हैं । इससे प्रशासन में विवेकपूर्णता नीतियों कि विवेकी अभिमुखताओं का भी बोध होता है।

विभेदीकरण तथा विशिष्टीकरण

इससे राज्य की संरचनाओं में विभेदीकरण एवं विशिष्टिकरण के तत्वों का बोध होता है । विभेदीकरण का तात्पर्य है समाज तथा राज्य के विभिन्न अंगों, पदों एवं विभागों का स्पष्ट होना तथा उनके कार्य निश्चित करना । व्यवस्था के विभिन्न राजनीतिक कार्यों की सुस्पष्टता होनी चाहिए जिससे विभिन्न अंगों की जटिल प्रक्रियाओं का एकीकरण हो सके तथा व्यवस्था का विघटन न हो।

पाई ने आगे कहा है कि राजनीतिक विकास के ये तीनों तत्व आसानी से एक दूसरे के साथ समाविष्ट हो या नहीं हो सकते तथा इसलिए समानता की मांग क्षमाताओं की अपेक्षा तथा अधिकरण विभेदीकरण की प्रक्रिया के लिए अधिक तनाव हो अथवा नहीं हो सकता । अधिक समानता के लिए दबाव व्यवस्था की क्षमता के लिए एक चुनौती हो सकता है तथा गुणात्मकता तथा विशेष ज्ञान पर अधिक बल देकर विभेदीकरण समानता को कम कर सकता है।

विकास की प्रक्रिया स्पष्टत: एकरेखीय नहीं है, न ही तीव्र एवं विशिष्ट अवस्थायें इस पर लागू होती हैं बल्कि ऐसी समस्यायें इसका विनिमय करती हैं जो अलग-अलग अथवा एक साथ पैदा हो सकती हैं । वास्तविकता यह है कि अन्तिम विश्लेषण में राजनीतिक विकास की समस्यायें राजनीतिक संस्कृति, प्रभावीकरण, संरचनाओं तथा सामान्य राजनीतिक प्रक्रिया के सम्बन्धों के मध्य घूमती रहती हैं । अल्फ्रेड डायमेन्ट के शब्दों में राजनीतिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राजनीतिक व्यवस्था के नये प्रकार के लक्ष्यों को निरन्तर सफल रूप से प्राप्त करने की क्षमता बनी रहती है।

आमण्ड के अनुसार, राजनीतिक विकास राजनीतिक संरचनाओं की अभिवृद्धि विभिन्नीकरण एवं विशेषीकरण तथा राजनीतिक संस्कृति का बढ़ा हुआ लौकिकीकरण है।

सी0 एस0 डाक ने विकास के दो अर्थ बतलाये हैं :-

1.केवल परिवर्तन के अर्थ में

2.किसी निश्चित लक्ष्य की ओर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में।

लूसियन डब्लयू पाई के विचारों को आगे बढ़ाते हुए ल्योनार्ड वाइन्डर ने राजनीतिक विकास की विस्तार से व्यख्या प्रस्तुत की है। अमेरिका की तुलनात्मक राजनीतिक समिति द्वारा इसकी सराहना की गई जिसके तत्वावधान में एक और महत्वपूर्ण रचना प्रकाशित हुई जिसमें बाइन्डर ने निम्नलिखित निहितार्थ बताये हैं :-

1.धार्मिक से जातीय एवं संकीर्ण से सामाजिक पहचान में परिवर्तन।

2.वैधता में इन्द्रियातीत से अतिर्भूत स्त्रोतों में परिवर्तन।

3.राजनीतिक सहभागिता में सम्भ्रान्त से जन तथा परिवार से समूह में परिवर्तन।

4.क्षमता एवं विशेषधिकार से वितरण का उपलब्धि में परिवर्तन।

5.सामाजिक संरचना तथा देश के दूरस्थ क्षेत्रों में प्रशासनिक व वैध अन्तर्वेषण की मात्रा में परिवर्तन।

नि:संन्देह राजनीतिक विकास की महत्वपूर्ण कसौटी कार्य कुशलता है। वास्तव में राजनीतिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे एक राजनीतिक व्यवस्था एवं प्रभावी ढंग से व्यवस्था के अन्तर्गत अथवा पर्यावरण से उत्पन्न तनावों, चुनौतियों एवं मांगों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है।

8.5 राजनीतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

परम्परागत राजनीतिक व्यवस्थाओं कि आधुनिक व्यवस्था में रूपान्तरण की प्रक्रिया विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में भिन्न-भिन्न होती है। किसी राजनीतिक व्यवस्था में विकास तीव्र मतभेदों तथा हिंसक घटनाओं के माध्यम से होता है। कोई समाज बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको सरलता से ढाल लेता है जबकि किसी समाज में बदलती हुई परिस्थितियॉं स्वयं समाज के अस्तित्व के लिए चुनौती प्रस्तुत करती हैं।

किसी समाज के राजनीतिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नांकित हैं :-

1.औद्योगिकरण (2) शहरीकरण (3) शिक्षा का प्रसार (4) जनसंचार प्रसारण के साधनों में अभिवृद्धि (5) धर्मनिरपेक्षता का विस्तार (6) आधुनिक नौकरशाही का विस्तार (7) राष्ट्रवाद की भावना (8) राजनैतिक दलों का स्वस्थ विकास (9) जनसहभागिता का

विस्तार (10) लक्ष्यों संसाधनों तथा स्रोत्रों के सम्बन्ध में राजव्यवस्था की क्षमता में अभिवृद्धि।

किसी भी राजनीतिक समाज में विकास प्रक्रिया विभिन्न चरों से प्रभावित होती है। इन विभिन्न चरों को छ: भागों में विभक्त किया जा सकता है।

अवस्था परिवर्तन -इससे राजनीतिक विकास का पारम्परिक संक्रमणकालीन तथा आधुनिक अवस्था का अभिज्ञान होता है। संक्रमणकालीन तथा आधुनिक अवस्थाओं की राजनीतिक विकास की प्रक्रिया तथा इन अवस्थाओं में राजनीतिक विकास की प्रकृति का निर्माण पारम्परिक समाज एवं राजनीतिक अवस्था की प्रकृति से प्रभावित होता है।

तत्व -राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं तथा परिणामों में सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक तत्वों का क्या प्रभाव होता है इस दृष्टि से भी राजनीतिक विकास की व्यवस्था की जा सकती है। उदाहरण के लिए साम्यवादी सिद्धान्त में आर्थिक तत्वों पर बल दिया जाता है तो कुछ गैरमार्क्सवादी दृष्टिकोणों में आर्थिक विकास के अन्य पहलुओं पर बल दिया जाता है।

पर्यावरण -किसी समाज का राजनीतिक विकास उसके बाहरी तथा आन्तरिक पर्यावरण से प्रभावित होता है। पर्यावरण राजनीतिक विकास की रीति तथा प्रक्रिया का नियमन करता है।

समय मापन-समय सीमा का भी राजनीतिक विकास से गहरा सम्बन्ध है, उदाहरणार्थ विकसित राज्यों की अपेक्षा विकसित राज्यों में औद्योगिकरण की प्रक्रिया में पूंजीवादी वर्ग कमजोर होता है। इसी प्रकार सामाजिक गतिशीलता की स्थिति में सामाजिक तनाव के अधिक होने की सम्भावना रहती है।

अनुक्रम-जिस क्रम में राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रक्रियाएं होती हैं उससे राजनीतिक विकास गम्भीरतापूर्वक प्रभावित होता है। एक राजनीतिक व्यवस्था में अहिंसक स्थायी लोकतांत्रिक रूप में विकसित होने की अधिक सम्भावना होती है।

दर -सामाजिक और सांस्कृतिक तथा राजनीतिक अवयवों में परिवर्तन की दरों का राजनीतिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं तथा सहभागिता पर प्रभाव पड़ता है। सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की तीव्र गति में, मन्द गति की अपेक्षा सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की तीव्र गति में, मन्द गति की अपेक्षा सामाजिक संघर्ष तथा राजनीतिक उपद्रव अधिक होते हैं।

8.6 राजनीतिक विकास की विशेषताएं

डोड के अनुसार राजनीतिक विकास की चार प्रमुख विशेषताएॅ होती हैं :-

समानता के प्रति ऐसी सामान्य भावना जिससे राजनीति में भाग लेने तथा सरकारी पदों के लिए प्रतियोगिता करने के सामान अवसरों की अनुमति रहे।

राजनीतिक व्यवस्था में नीतियों के निर्धारण तथा उनको क्रियान्वित करने क्षमता हो।

राजनीतिक कार्यों का ऐसा विभिन्नीकरण तथा विशेषीकरण हो जो उनकी समग्र एकता की कीमत पर न हो।

राजनीतिक प्रेक्रियाओं का ऐसा लौकिकीकरण हो जिससे राजनीति को धार्मिक प्रभावों एवं उद्देश्यों से पृथक रखा जा सके।

आमण्ड तथा पावेल ने राजनीतिक विकास की तीन विशेषताओं को प्रमुख माना है :-

1.भूमिका विभिन्नीकरण -पाई के विपरीत आमण्ड एवं पावेल का मानना है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं में संरचनाओं का विभिन्नीकरण इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि भूमिकाओं का विभिन्नीकरण। उदाहरणके लिए राजनीतिक व्यवस्था में कार्यपालिका, कार्यपालिका की ही भूमिका का निष्पादन करे तथा व्यवस्थापिका या न्यायपालिका की भूमिका का निष्पादन नहीं करे तो इसको भूमिका का निष्पादन नहीं करे तो इसको भूमिका विभिन्नीकरण माना जायेगा।

2.उप व्यवस्था स्वायतत्ता -आमण्ड राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता के लिए उप व्यवस्था की स्वायत्ता शब्द का प्रयोग करते हैं। आमण्ड एवं पावेल मतानुसार भूमिका विभिन्नीकरण तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक राजनीतिक व्यवस्था की उप व्यवस्थाओं को स्वायत्ता न प्राप्त हो सकता जब तक राजनीतिक व्यवस्था की उप व्यवस्थाओं को स्वायत्ता न प्राप्त हो। उप व्यवस्था की स्वायत्ता शक्ति के एक स्थान पर विकेन्द्रीकरण का संकेत है। इसका परिणाम यह होता है कि मांगों की रूपान्तरण प्रक्रिया तथा निर्माण की प्रक्रिया अनेक स्तरों पर पाई जाती है।

3.लौकिकीकरण -आमण्ड तथा पावेल ने लौकिकीकरण को परम्परागत मूल्यों से तथा धर्मनिरपेक्षता को वैधानिक स्तर से जोड़ा है। किसी समाज में लौकिकीकरण का सम्बन्ध लोगों की अभिवृत्तियों में परिवर्तन आने से है।

8.7 राजनीतिक विकास के चरण

राजनीतिक विकास का अध्ययन करते समय इस बात का ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि राजनीतिक व्यवस्था के विकास में किन कारणों का योगदान होता है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के विकास में किन कारकों का योगदान होता है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को विकास करते समय अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो उसके विभिन्न चरणों से सम्बद्ध होती है। आमण्ड तथा पावेल ने राजनीतिक विकास को चार चरणों से सम्बद्ध होती है। आमण्ड तथा पावेल ने राजनीतिक विकास को चार चरणों में सम्बद्ध किया है।

(1) राज्य निर्माण का स्तर अर्थात् केन्द्रिय सत्ता का निर्माण तथा विभिन्न समूहों का केन्द्रीय सत्ता के अधिकार क्षेत्र में एकीकरण होना।

(2) राष्ट्र निर्माण का स्तर अर्थात् छोटे-छोटे समूहों ग्रामों एवं नगरों से निष्ठा तथा प्रतिबद्धता को राष्ट्र भक्ति एवं निष्ठा से सम्बद्ध करना।

(3) सहभागिता का स्तर अर्थात् व्यक्तिएवं समूहों का राजनीतिक प्रेक्रिया में व्यापक रूप से भागीदार होना।

(4) वितरण का स्तर अर्थात् सामाजिक लाभों के लिए धर्म, जाति, गुट, रंग आदि के भेद-भाव के बिना राष्ट्रीय आय या सम्पत्ति का वितरण किया जाना।

आमण्ड एवं पावेल अपने राजनीतिक लाभों की दशा में उन पॉच कारकों की ओर करते हैं जिनका विश्लेषण में अवश्य ध्यान रखना चाहिए :-

1.राजनीतिक व्यवस्था का सामना करने वाली समस्याओं की प्रकृति क्या है ?

2.राजनीतिक व्यवस्था के पास अपनी मांगों को पूर्ण करने के लिए कहॉ तक किस सीमा तक संसाधन उपलब्ध हैं ?

3.वह राजनीतिक व्यवस्था किस सीमा तक विदेशी सामाजिक व्यवस्थाओं से प्रभावित होती है ?

4.उस राजनीतिक व्यवस्था के प्रकार्यात्मक प्रतिमान क्या हैं ?

5.राजनीतिक दृष्टि से सम्भ्रान्त व्यक्तियों अथवा अभिजनों की भूमिका कहॉ तक प्रभावशाली है ?

6.हंटिंग्टन के अनुसार राजनीतिक के तीन चरण या अवस्थायें मानी जाती हैं।

7.सत्ता कि बुद्धि संगततता का स्तर अर्थात् समाज के विभिन्न समूहों एवं भागों को केन्द्रिय सत्ता का निर्माण।

8.नये राजनीतिक कार्यो का विभिन्नीकरण तथा उनके लिए विशिष्ट संरचनाओं का विकास।

9.सहभागिता का बढ़ा हुआ स्तर अर्थात् समाज के विभिन्न समूहों एवं भागों को केन्द्रिय सत्ता में सहभागी बनाना।

हैटिंग्टन का मानना है कि विकास की यह प्रकिया तभी सम्भव है जब ये तीनों क्रिया स्तर क्रमिक रूप से उपलब्ध किये जाएॅ अर्थात् प्रथम के बाद दूसरा तथा फिर तीसरा स्तर का एक दूसरे के ऊपर या नीचे साथ-साथ प्रचालन घातक हो सकता है तथा उससे राजनीतिक विकास नहीं बल्कि राजनीतिक पतन आ जाता है। आरगेन्सकी ने अपनी पुस्तक "Stages of Political Development" में राजनीतिक विकास को राष्ट्र के मानवीय एवं भौतिक स्रोत्रों का उपयोग करने में सरकार की बढ़ती हुई कार्य दक्षता के आधार पर समझने का प्रयत्न किया है। राजनीतिक विकास के हर स्तर पर अपनी विशिष्टतायें होती हैं जो अन्य स्तर पर अधिक से अधिक आंशिक रूप में ही पाई जा सकती है। राजनीतिक विकास का एक स्तर पूर्ण रूप से प्राप्त होने के उपरान्त उसके आगे के स्तर पर जाना सम्भव है।

आरगेन्सकी ने राजनीतिक विकास के चार स्तर माने हैं :-

1.आदिम एकीकरण का राजनीतिक -यह राजनीतिक विकास का प्रथम चरण है। इस अवस्था में राष्ट्रीय सरकारें अपनी जनसंख्या पर प्रभावशाली राजनीतिक नियंत्रण स्थापित करती हैं। वस्तुत: यह चरण राज्य की सुस्थिरता का चरण है।

2.औद्योगिकरण की राजनीति -राजनीति विकास का यह चरण औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं तथा सामाजिक राजनीतिक दृष्टि से ऐसे परिवर्तनों से सम्बन्धित है जिसमें नये वर्ग निर्मित होते हैं। सहभागिता का विस्तार तथा अभिवृद्धि राष्ट्रीय एकीकरण होता है। इसके तीन माडल हैं। बुर्जुआ माडेल, स्टालिन का माडेल तथा समन्वयी माडेल।

3.राष्ट्रीय लोककल्याण की राजनीति -यह विकास का अगला चरण है इसमें जनता को शोषण से मुक्त रखा जाता है तथा पूंजी साधनों को व्यापक स्तर पर जनता में वितररित कर दिया जाता है।

4.समृद्धि की राजनीति -यह राजनीतिक स्तर अमेरिकी राजनीति की ओर इशारा करता है। यह स्तर वैज्ञानिक तकनीकों तथा अत्यधिक परिष्कृत उपकरणों से अत्यधिक उत्पादकता है जिसमें प्रत्येक के लिए वस्तुओं की सामान्य उपलब्धि रहती है। रह राजनीतिक विकास की चरम एवं जटिल अवस्था है।

राजनीतिक आधुनिकीकरण का अध्ययन करने वाले राजनीतिक शास्त्रियों ने राजनीतिक विकास को एक निर्भर परिवर्त्य माना है तथा इसीलिए औद्योगीकरण नगरीय विस्तार, शिक्षा एवं साक्षरता का फैलाव, जनसंचार साधनों का विकास, लौकिक संस्कृति के विस्तार को अध्ययन का आधार माना है। इस हेतु प्रत्ययी माडेल प्रस्तुत किये जाते हैं एक को निरन्तरता वाला माडेल कहा जाता है तथा

दूसरे को विभिन्न चरणों पर आधारित रहने वाला माडेल। प्रथम माडेल विकासात्मक प्रक्रिया को पृथक परिवत्वों के रूप में देखता है जैसे जनसंख्या में शिक्षित व्यक्तियों का प्रतिशत, चुनाव में सहभागिता का स्तर इत्यादि। परन्तु यह माडेल अध्ययन के लिए अधिक उपयोगी एवं व्यवहारिक नहीं सिद्ध हुआ है क्योंकि इसमें विस्तृत सिद्धान्त का अभाव है। इस दृष्टि से दूसरा माडेल जो तीन चरणों पर आधारित है अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके तीन चरण इस प्रकार हैं :-

1.परम्परागत चरण जिसकी मुख्य विशेषता ग्रामीण समाज एवं कृषि अर्थव्यवस्था है।

2संक्रमणकालीन चरण जिसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक संस्कृति पायी जाती है। क्योंकि इसमें यद्यपि औद्योगीकरण का प्रारम्भिक स्तर पद्धति में प्रवेश करता है परन्तु ग्रामीण समाज एवं संस्कृति की प्रधानता बनी रहती है।

3.आधुनिक चरण जो राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से एक विकसित चरण है।

8.8 राजनीतिक विकास के संकट एवं चुनौतियां

लूसियन डब्लू पाई ने राजनीतिक विकास के क्रम में छ: प्रकार के संकटों का भी उल्लेख किया है जो विभिन्न क्रम में उपस्थित होते हैं :-

1.तादात्म्य का संकट -लोगों को अपनी राजनीतिक व्यवस्था से तादात्म्य होना चाहिए। नवीन राज्य के लोगों में राष्ट्रीय प्रदेश के साथ आत्मीयता जोड़ना तथा सभी व्यक्तियों की पहचान को देश के प्रादेशिक क्षेत्र के साथ अभिन्न बनाना एक कठिन कार्य है – अधिकांश नवीन राष्ट्रों में जाति, भाषा कबीला समूह की भावना अत्यधिक प्रबल रहती है जो तादाम्य का संकट उत्पन्न करती है। तादाम्य के व्यवहारों की समस्या का समाधान अनिवार्य है।

2.औचित्यपूर्णता का संकट -इसका आशय सत्ता के औचित्य तथा सरकारके उचित दायित्वों की समस्याओं के समाधान से हे। अधिकांश नवीन राष्ट्रों का वैधता का संकट स्पष्ट रूप से संवैधानिक समस्या है। केन्द्र एवं राज्यों का संकट स्पष्ट रूप से संवैधानिक समस्या है। केन्द्र एवं राज्यों का क्षेत्राधिकार राजनीतिक जीवन में विभागीय तंत्र तथा सैन्य बल की सीमायें संवैधानिक समस्याओं के प्रमुख उदाहरण हैं। औचित्यपूर्णता का संकट पिछड़े समाज में अधिक पाया जाता है जहॉ धार्मिक मूल्यों की जड़ें अधिक गहरी है तथा लोग अभी भी ऐसे विचारों से जुड़े हुए हैं कि राजनीतिक संरचना उनके धार्मिक विश्वासों के अनुकूल होनी चाहिए।

3.प्रवेशन संकट -नवीन राष्ट्रों में प्रशासन की नाजुक समस्यायें प्रवेशन संकट की जन्मदाता है। इनक अर्न्तगत सरकार का समाज की निचले तह तक पहुॅचने तथा उनकी उसकी मूल नीतियों का प्रभावित करने की समस्या अर्न्तनिहित हैं । संक्रमणकालीन समाज में सरकार प्रभावी ढ़ग से परम्परागत नियंत्रण के प्रतिमानों को भंग करने में सफल होती है । अतएव महत्वपूर्ण विकास सम्बन्धी नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए सरकार को ग्राम स्तर एक आवश्य पहुॅचने में सक्षम होना चाहिए। यदि सरकार प्रभावी ढंग से परम्परागत नियंत्रण के प्रतिमानों को भंग करने में सफल होती है तो सरकारी नीतियों को व्यापक ढंग से प्रभावित करने की मांग भी उठती है जिससे एक अन्य प्रकार के संकट का जन्म होता है।

4.सहभागिता का संकट -राजनीतिक विकास में राजनीतिक सहभागिता में अभिवृद्धि अनिवार्य है । सहभागिता के विस्तार की दर में अनिश्चितता तथा विद्यमान संस्थानों में नये लोगों को शामिल किये जाने से तनाव की स्थिति पैदा होती है तथा सहभागिता संकट उत्पन्न हो जाता है। राजनीतिक सहभागिता के लिए सबसे बड़ी चुनौती नवीन हितों एवं नवीन मूल्यों के उदय से होती है जिनका समन्वय राजनीतिक संरचनाओं, राजनीतिक दलों एवं विभिन्न हित समहों की कार्यप्रणाली के साथ होना आवश्यक माना जाता है।

5.एकीकरण संकट-इसका सम्बन्ध उस सीमा से है जहॉ तक समस्त राज्य व्यवस्था संगठन अंतर्क्रियात्मक सम्बन्धों की व्यवस्था के रूप में किया गया है । चॅूकि समाज में विभिन्न समूहों के विभिन्न हित होते हैं, अतएव सरकार को यहॉ एकीकरण की चुनौतीका सामना करना पड़ता है । सर्वप्रथम इसमें सरकार के कार्यालयों एवं अभिकरणों, तत्पश्चात् विभिन्न समूहों एवं हितों द्वारा व्यवस्था पर रखी जाने वाली मांगों तथा अंत में सरकार एवं प्रगतिशील नागरिकों के मध्य सम्बन्धों की स्थापना द्वारा समाधान किया गया है। यदि सरकार इसमें समन्वय नहीं स्थापित कर पाती तो एकीकरण का संकट उत्पन्न हो जाता है।

6.वितरण संकट-विकास प्रक्रिया के अर्न्तगत सरकारी शक्तियों का प्रयोग किस प्रकार से किया जाय जिससे सम्पूर्ण समाज में मूल्यों सेवाओं एवं पदार्थों का वितरण प्रभावित हो, इन प्रश्नों से सम्बन्धित संकटों को वितरण संकट कहते हैं । सरकार से कौन लाभान्वित हो तथा समाज के विभिन्न खण्डों को अधिक लाभान्वित करने के लिए सरकार को क्या करना चाहिए, ये वितरण संकट की समस्यायें हैं।

लूसियन डब्ल्यू पाई का मानना है कि किसी देश में विकास का विशेष प्रतिमान काफी सीमा तक उपर्युक्त संकटों के क्रम तथा उनके समाधान पर निर्भर करता है। इग्लैंड में प्रजातंत्र के विकास के संकटों की उत्पत्ति उपर्युक्त क्रम में हुई थी तथा ये संकट पृथक ढंग से उत्पन्न हुए थे। इसके विपरीत यूरोप के अन्य देशों एशिया तथा अफ्रिका के देशों में विकास अस्त-व्यस्त ढंग से विकास सम्भव

हुआ। अधिकांश विकासशील देशों ने सभी संकट एक साथ उत्पन्न हो रहे हैं तथा सरकार को वितरण संकट के समाधान के फलस्वरूप अन्य प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ा रहा है। अत: आवश्यकता इस बात कि है कि राजनीतिक विकास के किसी भी उपयोगी सिद्धान्त को उन समस्याओं का मुकाबला करने की स्थिति में अवश्य होना चाहिए जिन्हें संकट की कोटि के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

8.9 राजनीतिक विकास के अभिकरण

राजनीतिक विकास के प्रमुख अभिकरण इस प्रकार हैं :-

क्रान्तिकारी राजनीतिक नेता -क्रान्तिकारी नेता किसी संकट की स्थिति में सत्ता में आते हैं तथा उन्हें सत्ता में आने के साथ ही अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। क्रान्तिकारी नेताओं के कुछ विशिष्ट गुणों का होना आवश्यक है और वे अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण देश के राजनीतिक विकास को गति देते हैं। इस दृष्टि से उसे संतुलित एवं मध्यम मार्ग का अनुसरण करना पड़ता है।

राजनीतिक दल -राजनीतिक दल भी विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं। राजनैतिक दलों का महत्व लोकतांत्रिक व्यवस्था तथा साम्यवादी व्यवस्था दोनों में ही पाया जाता है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में राजनीतिक दल मतदान का विस्तार करके राजनीतिक सहभागिता के अवसर प्रदान करते हैं। भारत के राजनीतिक विकास में स्वतंत्रता के पूर्व तथा बाद में कांग्रेस पार्टी का योगदान अत्यन्त उपयोगी रहा है। साम्यवादी व्यवस्था में भी साम्यवादी दल का प्रयोग जनता में साम्यवादी विचारों की प्रतिष्ठा तथा उन्हें साम्यवादी विचारों के अनुरूप संगठित करने के लिए किया जा रहा है।

सेना-जब विशिष्ट वर्ग तथा राजनीतिक दल राजनीतिक विकास को नेतृत्व प्रदान करने में असफल रहते हैं तो विकासशील देशों में सेना समस्त शक्तियों को अपने हाथ में लेकर राजनीतिक विकास की प्रक्रिया में अपना योगदान देती हैं। सेना का उद्देश्य राजनीतिक तंत्र को अधिक कार्यकुशल तथा अधिक सक्षम बनाना होता है। विकासशील देशों के शासन को स्थायित्व प्रदान करने का कार्य सेना करती है। एशिया, अफ्रिका तथा लैटिन अमेरिका के अनेक देशों के राजनीतिक विकास में सेना का योगदान रहा है।

आधुनिक नौकरशाही -आधुनिक नौकरशाही भी राजनीतिक विकास में परिवर्तन की भूमिका अदा करती है। नौकरशाही शासन को स्थिरता प्रदान करती है। परम्परागत समाज को आधुनिक परिवेश में लाने का प्रयत्न करती है तथा सुदृढ़ एवं कुशल नीतियों के माध्यम से राजनीतिक विकास का पथ

प्रशस्त करती है। स्वतंत्र भारत के राजनीतिक विकास में नौकरशाही का योगदान अतिमहत्वपूर्ण रहा है।

राष्ट्रभावना -राष्ट्रीयता की भावना के विकास तथा एक राष्ट्रीय राज्य के निर्माण में भी राजनीतिक विकास होता है। जापान के राजनीतिक विकास में यह तत्व सर्वप्रमुख रहा है।

राजनीतिक सहभागिता-राजनीतिक सहभागिता के विस्तार में भी राजनीतिक विकास को बल मिलता है इससे देश की जनता भी राजनीतिक सक्रियता एवं मनोदशा का पता चलता है। पिछले दो दशकों में भारत, पाकिस्तान तथा बांगलादेश में जन सक्रियता के परिणामस्वरूप राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई है जिससे इन तीनों देशों में राजनीतिक विकास तीव्र गति से हुआ है।

8.10 आलोचना

राजनीतिक विकास अवधारणाओं की अनेक आधारों पर आलोचना की जाती है :-

1.सर्वप्रथम यह अवधारणा अपने आप में स्पष्ट नहीं हो पायी है। यही कारण है कि इसका क्षेत्र स्पष्ट नहीं हो सका है। परिणामस्वरूप राजनीतिक विकास का अर्थ स्पष्ट न हो सका है। वह राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकास के बिन्दुओं पर ही उलछ गया है। फ्रेड डब्लू रिग्स ने उचित ही कहा है कि न तो विकास न ही राजनीतिक शब्द के अभिप्राय के बारे में कोई सर्वसम्मति राय बन सकी है अतएव यह संकल्पना अपना निहित अर्थ बतलाने में असफल रही है।

2.डेविड एम0 बुड का मानना है कि राजनीतिक विकास का सिद्धान्त निश्चित राजनीतिक प्रतिमान बनाने में असफल रहा है। इस दृष्टि से अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीतिक विज्ञान के विषय कोअर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञानों के समुद्रों में ढकेल दिया गया है। प्रो0 एन0 पी0 वर्मा का भी मानना है 'राजनीतिक विकास को आकार प्रदान करने में सामाजिक आर्थिक प्रशासनिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक चरों की संगतता से इनकार नहीं किया जा सकता लेकिन यह निर्धारण करना कठिन है कि किसी विशेष कारण का कितना महत्व है।'

3.राजनीतिक विकास की संकल्पना किसी ऐसे प्रतिमान को प्रस्तुत नहीं करती जिसे एक ही रूप में विश्व के सभी देशों पर लागू किया जा सके। वास्तव में यह संकल्पना साम्यवादी विद्वानों की वर्गहीन समाज की स्थापना के सिद्धान्त से मेल नहीं खाती। अमेरिकी लेखकों ने राजनीतिक विकास में जो विभिन्न विश्लेषण प्रस्तुत किये हैं वे एक दूसरे को आलोचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। डॉ0 एस0 पी0 वर्मा के अनुसार, ''राजनीतिक विकास के सिद्धान्तशास्त्री तीसरे विश्व के देशों की राजनीतिक वास्तविकताओं को समझने में असमर्थ रहे हैं क्योंकि उन्होंने अफ्रो एशियाई क्षेत्रो के गरीब एवं पिछड़े लोगों को शिकागों एवं हारवर्ड विश्वविद्यालयों से समृद्ध चश्मों से देखने का प्रयास

किया है। यही कारण है कि आज तक राजनीतिक विकास के बारे में जिन सिद्धान्तों का विकास हुआ है, वे अब ध्वस्त पड़े हैं।''

4.राजनीतिक विकास की धारणा का तालमेल मार्क्सवादी उपागम से सम्भव नहीं प्रतीत होता। मार्क्सवादी सिद्धान्त जिस सर्वहारी वर्ग की तानाशाही का समर्थन करता है उससे एक बन्द समाज एवं एकलवादी व्यवस्था का ही आभास मिलता है ऐसे में इसे राजनीतिक विकास का प्रतीक माना जाय अथवा राजनीतिक ह्रास का इसे स्पष्ट नहीं किया जा सका है।

अभ्यास प्रश्न:

प्रश्न 1: 'राजनीतिक विकास' की अवधारणा को सबसे पहले किसने व्यापक रूप से प्रस्तुत किया?
a) डेविड ईस्टन
b) ल्यूसियन पाइ
c) गेब्रियल ऑमण्ड
d) सैमुअल हंटिंगटन

प्रश्न 2: सैमुअल हंटिंगटन के अनुसार राजनीतिक विकास का प्रमुख संकेतक क्या है?
a) आर्थिक विकास
b) धार्मिक स्वतंत्रता
c) राजनीतिक संस्थाओं की संस्थागत क्षमता
d) सैन्य शक्ति

प्रश्न 3: निम्न में से कौन-सा राजनीतिक विकास का लक्षण नहीं है?
a) संस्थाओं की जटिलता
b) राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि
c) शासन में अस्थिरता
d) कानून का शासन

प्रश्न 4: ल्यूसियन पाइ ने राजनीतिक विकास के कितने प्रमुख आयाम बताए हैं?
a) दो
b) चार
c) छह
d) तीन

8.11 सारांश

राजनीतिक विकास के सिद्धान्त के इन गम्भीर दोषों के बावजूद यह सत्य है कि इस उपागम ने तुलनात्मक राजनीतिक तथा अन्य सदृश विज्ञानों की सीमाओं का रेखाकंन किया है तथा राजनीतिशास्त्रियों का ध्यान तीसरे विश्व के विकास और उससे सम्बन्धित समस्याओं कि ओर आकृष्ट किया है। आमण्ड तथा पावेल ने इस उपागम को निम्न दृष्टियों से उपयोगी माना है।

1.इससे राजनीतिक व्यवस्था का विवेचन, तुलना, स्पष्टीकरण तथा उनके बारे में भविष्यवाणी करने का आधार स्थापित करने में सहायता मिलती है।

2.इससे राजनीतिक व्यवस्थाओं का उनके राजनीतिक अतीत और भविष्य के सम्बन्ध में वर्गीकरण करने में सहायता मिलती है।

3.इससे राजनीतिक व्यवस्था के अर्थपूर्ण मानदण्डों के आधार पर तुलना करना सम्भव होता है।

4.राजनीतिक व्यवस्थाओं के बारे में सामान्यीकरण करने में सहायता मिलती है।

8.12 शब्दावली

राजनीतिक विकास का एक मार्गी दृष्टिकोण – इसके अनुसार राज्यों के विकास का केवल एक मार्ग है,

राजनीतिक विकास का बहुमार्गी दृष्टिकोण - इसके अनुसार राजनीतिक विकास बहुआयामी होता है

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.(b), 2.(c), 3.(c), 4. (a)

8.14 संदर्भ ग्रंथ

1.Lucian W. Pye (Ed) Communication and Political Development, Princeton, 1963, P. 29

2.Lucian W. Pye : Aspects of Political Development (Boston) little Power 1966) P. 63

3.Lucian W. Pye – P. 48

4.Approaches to Development Politics, Administration and Change, 1966, Alfred Diament, P. 15

5.G. A. Almond and G. B. Powell , Jr Comparative Politics a Development Approach, 1966, P. 25

6.Fre. W. Riggs: The Theory of Political Development In Tames C. Charles with, Contemhoray Political Analysis (New York Macmillan Free Press 1967) P. 318

7.David M. Wood : Comparative Government and Politics P. 506

8.Dr. S. P. Verma : Modern Political Theory (Delhi VPH) P 279 80

9.Dr. S. P. Verma lbid P. 290

8.15 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

8.16 निबंधात्मक प्रश्न

1.राजनीतिक विकास के विविध पक्षों की विवेचना कीजिये |

2. राजनीतिक विकास के प्रमुख अभिकरणों की विवेचना कीजिए।

3. समकालीन भारत के संदर्भ में राजनीतिक विकास के समक्ष उत्पन्न प्रमुख संकटों का परीक्षण कीजिए।

इकाई 9 : राजनीतिक आधुनिकीकरण

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण

9.4 कार्ल डायश एवं आमण्ड पावेल के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेंषतायें

9.5 राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख लक्षण

9.6 राजनैतिक आधुनिकीकरण डेविड ऐप्टर का दृष्टिकोण

9.7 राजनीतिक आधुनिकीकरण के अभिकरण

9.8 राजनैतिक विकास एवं राजनैतिक आधुनिकीकरण में अन्तर

9.9 सारांश

9.10 शब्दावली

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.12 संदर्भ ग्रंथ

9.13 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना:

आधुनिकीकरण विश्व के नये उदित राष्ट्रों तथा विकासशील समाजों की उस परिवर्तन प्रक्रिया का नाम है जो उन्हें आधुनिक मूल्यों, मान्यताओं एवं विश्वासों से जोड़ती है। क्लाउड वेल्स के मतानुसार इसमें संसाधनों का विवेकपूर्ण रूप से उपयोग होता है तथा इसका उद्देश्य एक आधुनिक समाज की स्थापना करना होता है। हंटिगटन इसे मानव चिंतन तथा गतिविधि के समस्त क्षेत्रों में परिवर्तन लाने वाली बहुमुखी प्रक्रिया मानता है। बेन्जामिन स्वार्टज की दृष्टि में ”विभिन्न मानवीय प्रयोजनों की सिद्धि हेतु मानव की शक्ति सामर्थ्य एवं क्षमता के व्यवस्थित तथा निरंतर मुक्ति युक्त कार्यान्वयन के द्वारा मानव के भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को नियंत्रित करने का प्रयास ही आधुनिकीकरण है।“

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्नलिखित विषयों में जानने में सक्षम होंगे

1.राजनीतिक आधुनिकीकरण

2. कार्ल डायश एवं आमण्ड पावेल के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेंषतायें

3. राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख लक्षण

4. राजनैतिक आधुनिकीकरण डेविड ऐप्टर का दृष्टिकोण

5. राजनीतिक आधुनिकीकरण के अभिकरण

6. राजनैतिक विकास एवं राजनैतिक आधुनिकीकरण में अन्तर

9.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण

डेविड ऐप्टर ने अपनी पुस्तक ''दि पालिटिक्स आफ मार्डनाइजेशन" में आधुनिकीकरण को चयन करने की योग्यता एवं अनवेषण तथा प्रश्नात्मक धारणाओं से जोड़ा है साइरल ब्लैक ने भी आधुनिकीकरण का प्रमुख तत्व प्राकृतिक शक्तियों पर व्यक्ति के तीव्र गति से बढ़ते हुए नियंत्रण को माना है। विलियम फीडलैंड की दृष्टि मे यह समाज की वह योग्यता है एवं क्षमता है जो उसे परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति जागरूक बनाती है। इसके अर्न्तगत ऐसी अनेक गतिविधियाँ है जिन्हें आधुनिकीकरण की विशेषताओं के रूप में देखा जा सकता है।

(1) पर्यावरण एवं प्रकृति पर बढ़ता हुआ नियंत्रण

(2) प्राकृतिक एवं भौतिक साधनों का अधिकतम उपयोग

(3) औद्योगीकरण

(4) नगरीकरण

(5) व्यापक साक्षरता

(6) बढ़ती हुई राष्ट्रीयता एवं व्यक्तिगत आय

(7) शासन के कार्यों में बढ़ती हुई सहभागिता

(8) जनसंचार की तकनीकी तथा साधनों का विकास एवं विस्तार

(9) सामाजिक गतिशीलता

(10) राष्ट्रीय एकता के प्रति निष्ठा

(11) समानता के सिद्धान्त के प्रति आस्था में वृद्धि।

आधुनिकीकरण का स्वरूप एकरस नहीं होता उसके अनेक पक्ष, क्षेत्र स्मर या रूप होते हैं। आधुनिकीकरण का अवलोकन निम्न स्तर पर किया जा सकता है:-

(1) मनोवैज्ञानिक स्तर

इस स्तर पर व्यक्ति के मूल्यों, अभिवृत्तियों प्रत्याशाओं, आकांक्षाओं आदि में परिवर्तन आने लगता है।

(2) राजनैतिक स्तर

इस स्तर में लोगों में आधुनिकमूल्यों, मान्यताओं तथा अभिवृत्तियों के प्रति झुकाव बढ़ता है।

(3) बौद्धिक स्तर

इस स्थिति में व्यक्ति का अपने पर्यावरण के विषय में ज्ञान बढ़ जाता है। उसकी रूचि, शिक्षा, संगठन, सहयोग, विचार विनियम आदि की ओर बढ़ने लगती है।

(4) आर्थिक स्तर

इसमें आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हो जाता है तथा समाज में व्यापारिक एवं औद्योगिक गतिविधियां बढ़ने लगती हैं।

(5) सामाजिक स्तर

इस स्तर पर व्यक्तिका निष्ठा, परिवार, जन-जाति वर्ग या ग्राम के प्रति न रहकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर परिलक्षित होने लगती है।

(6) जन सांख्यकीय स्तर

इस स्तर पर शहरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है लोग भौगोलिक दृष्टि से गतिशील हो जाते हैं तथा व्यक्तियों के स्वास्थ्य, आयु, व्यवसाय के प्रकार आदि में परिवर्तन देखा जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से आइजन्नटेड ने अपनी पुस्तक ''मार्डनाइजेशन प्रोटेस्ट एण्ड चेंज'' में बतलाया है कि पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में सत्रहवीं से उन्नीशवीं शताब्दी तक होने वाले सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं में हुए परिवर्तन की प्रक्रिया को आइजनस्टेड के अनुसार आधुनिकीकरण कहा जाता है। इनके अनुसार राजनीतकि आधुनिकारण के लिए निम्न तीन बातें महत्वपूर्ण हैं:-

(1) राजनैतिक व्यक्ति कार्यों एवं संस्थाओं में उच्च मात्रा का विभिन्नीकरण तथा केन्द्रीयकृत तथा एकीकृत शासन व्यवस्था का विकास।

(2) केन्द्रीय प्रशासनिक एवं राजनीतिक संगठनों की गतिविधियों का विस्तार तथा उनकी समस्त सामाजिक क्षेत्रों में क्रमिक व्यापकता।

(3) समाज की अन्तर्निहित शक्ति का अधिक से अधिक समूहों तथा वयस्क नागरिकों तक विस्तार होना।

9.4 कार्ल डायश एवं आमण्ड पावेल के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेंषतायें

इस प्रकार हैं:-

(1) राज्य की लौकिक राजनीतिक सत्ता की वृद्धि तथा शक्ति का बढ़ता हुआ केन्द्रीयकरण।

(2) विशिष्ट एवं स्वशासी उपव्यवस्थाओं संरचनाओं तथा व्यक्ति के अधिकाधिक संरचना अर्थात संरचनात्मक विभिन्नीकरण।

(3) राजनीति में नागरिकों की बढ़ती हुआ सहभागिता तथा सम्पूर्ण राजव्यवस्था में आस्था।

(4) नवीन सामाजिक संगठन जिसमें पुरानी निष्ठायें मिलती जाती हैं। तथा मनुष्य शिक्षा, निवास, नगर, व्यवसाय, आय आदि के आधुनिक प्रतीकों के प्रति आकर्षित हो जाता है।

(5) विशिष्ट कार्यों से सम्बद्ध अनेक संगठनों का निर्माण ये प्रायः गुण उपलब्धि, स्वेच्छा, तकनीकी ज्ञान विषयों आदि के आधार पर कार्य करते हैं।

(6) आधुनिकीकरणक में अभिरूचि रखने वाले अनेक अभिजनों की उपस्थिति।

(7) समान राजनीतिक सहभागिता

(8) हित समूहों राजनीतिक दलों, प्रेस सम्मेलनों आदि के माध्यम से राजनीतिक मार्गों तथा गतिविधियों का हित स्वरूपण।

सभी नवीन विकासशील राज्य आधुनिकीकरण की बाधाओं से जूझते हुए इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। इसमें एक प्रमुख प्रवृत्ति आद्योगीकरण की है और वे इसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक मनोवैज्ञानिक तथा राजनैतिक परिणामों का भी सामना कर रहे हैं,। पुराने मूल्यों रीति-रिवाजों, मानकों आदि का स्थान नवीन मूल्यों एवं आदर्शो द्वारा ले लिया जाता है इससे समस्त समाज एवं उसकी इकाइयों में उथल पुथल, अस्थायित्व तथा असन्तुलन आ जाता है। परन्तु जापान जैसे देश अपने परम्परागत मूल्यों को बनाये रखते हुए उनके साथ आधुनिक मूल्यों की स्थापना करने में सफल हो गये।

9.5 राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख लक्षण

सामान्य रूप से राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार है:-

(1) राजनीतिक आधुनिकीकरण का प्रमुख लक्षण यह है कि मानव जीवन की गतिविधियों से सम्बन्धित सभी प्रकार की शक्तियों का राज्य या राजनीतिक व्यवस्था में केन्द्रीयकरण होने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शक्ति की महत्ता बढ़ने लगती है।

(2) राजनीतिक आधुनिकीकरण के लिए सरकारी जनता तक पहुँच बुद्धिपरक होनी चाहिये। इसका अर्थ राज्य एवं सरकार की समाज में बढ़ती हुई सक्रियता एवं सम्पर्कों से है। यह तभी सम्भव होता है जब सरकारें सकारात्मक कार्यो के निष्पादन में आगें बढ़े।

(3) आधुनिक राजनीतिक समाजों में राजनीतिक व्यवस्था एवं समाज में सक्रियता बढ़ जाती है। राजनीतिक दल, हित एवं दबाव समूह नौकरशाही एवं निर्वाचनों के माध्यम से यह सम्पर्कता बढ़ती है तथा संचार के साधनों द्वारा इसमें निरन्तर अर्न्तक्रिया बनी रहती है।

(4) आधुनिक राजनीतिक समाजों में धार्मिक, परम्परागत, पारिवारिक तथा जातीय सत्ताओं का स्थान एक लौकिकीकृत तथा राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता के द्वारा ले लिया जाता है। सत्ता के परम्परागत स्त्रोतों के निर्बल होने तथा उनके स्थान पर राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता की स्थापना राजनीतिक आधुनिकीकरण की सबसे अधिक

एवं चुनौतियाँ अनेक हैं - राष्ट्रीय एकीकरण को चुनौती, प्रजाति परम्परा भाषा इत्यादि के प्रति विषय प्रतिबद्धता नये पुराने मूल्यों का संघर्ष, प्रतिरोधी समाजीकरण की प्रक्रियायें, राजनीतिक क्षय इत्यादि। सी0ई0 एप्टर आर्गेन्सकी, रार्बट सिनाई, रिग्स, आइजन्स्टैड, पालोम्बारा, पाई लर्नर, वर्बा, वीनर इत्यादि विद्वानों ने इस समस्याओं का अध्ययन किया है।

9.6 राजनैतिक आधुनिकीकरण डेविड ऐप्टर का दृष्टिकोण

वस्तुतः राजनैतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया जटिल है। इसमें अनेक अभिकरणों, माध्यमों एवं बलों का योगदान शामिल है परन्तु इनका मुख्य स्वरूप आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक होता है। इस दृष्टि से डेविड ऐप्टर का अध्ययन विचारणीय है।

डेविड ऐप्टर ने नवीन देशों की उभरती हुई शासन व्यवस्थाओं को अपने वैज्ञानिक अध्ययन की विषय सामग्री बनाया है। उनकी रूचि, उनकी ठोस समस्याओं तथा उनके समुचित अध्ययन के लिए विश्लेषणात्मक पद्धतियों तथा प्रविधियों के विकास की ओर रही है। वह केवल व्यवस्था उपागम का ही प्रयोग नहीं करता परन्तु उसके साथ साथ विभिन्न व्यवस्थाओं का वर्गीकरण तथा प्रकारों को भी प्रस्तुत करता है। इनका अध्ययन करने के लिए वह व्यापक सामाजिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण

करता है। उसके अध्ययन का विषय है आधुनिकीकरण की राजनीति जिसके लिए यह नियंत्रण विचार को विश्लेषणात्मक तथा नैतिक रीतियों की एकता को आवश्यक मानता है।

ऐप्टर के अनुसार राजनीति प्रमुखतः मानकीय तथा गौण रूप से अनुभवात्मक प्ररूपों के साथ आरम्भ होती है।

उसकी केन्द्रीय चयन विषय है चयन या निर्णय के साथ नैतिक धारणायें जुड़ी होती है। आधुनिकीकरण हो जाने से सामाजिक संस्कृति व्यक्ति को प्रकृति तथा समाज के सम्बन्ध में आलोचनात्मक दृष्टि अपना सकने का अवसर देती है उस व्यवस्था में मनुष्य विभिन्न प्रकार के विकल्प तथा चयन व्यक्तिगत सामाजिक या संरचनात्मक तथा नैतिक उपनाने लगता है। समाज में किये जाने वाले चयन शासकों के सामान्यीकृत चयनों से भिन्न होते हैं। उसके द्वारा किये गये चयन दीर्घकाल तक अस्तित्व में रहकर समाज के नैतिक उद्देश्य बन जाते हैं। इस प्रकार ऐप्टर अपने समाज विज्ञान के आधुनिकरण के उपकरणों के द्वारा परम्परागत सिद्धान्त शास्त्रियों की रूचि के विषयों का विश्लेषण करता है।

ऐप्टर की दृष्टि में शासन के कतिपय विशिष्ट प्रकार विशेष सामाजिक उद्देश्यों को उपलब्ध करने के लिए अधिक श्रेष्ठ होते हैं। सरकारों के प्रकार समाज की संरचनात्मक दशाओं के स्वाभाविक परिणाम न होकर व्यक्तियों के इच्छित चयनों के परिणाम होते हैं। ये चयन समाज में मनुष्य के अन्तिम लक्ष्य सम्बन्धी विचारों से सम्बन्धित होते हैं। इन नैतिक प्रवृतियों के आधार पर राज व्यवस्थाओं को दो वर्गों धर्म निरपेक्ष, उदारतापूर्ण तथा पवित्त समूहवादी में विभक्त किया जा सकता है।

उसने अफ्रीका के जिन स्वशासी क्षेत्रों का विश्लेषण किया उनमें गोल्ड कोस्ट तथा युगाण्डा का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। वहाँ की परम्परागत सामाजिक राजनैतिक व्यवस्थाओं में नवीन एवं आधुनिक राजनैतिक संस्थाओं के स्थानान्तरण का प्रश्न था। उनकी मुख्य समस्याओं में से एक नवीन परिवर्तन को सुव्यवस्थित ढंग से कार्यान्वित करने तथा दूसरी शासकीय सत्ता के उत्तराधिकार को शान्तिपूर्ण बनाने से सम्बन्धित थी। इस प्रकार ये औपनिवेशिक क्षेत्र सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों की रंगस्थली बन गया था जिसका वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रयोगशाला के रूप में उपयोग किया था।

ऐप्टर प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के विश्लेषणों को एक दूसरे से भिन्न मानताह। यह भिन्नता प्रविधियों के अतिरिक्त नैतिक दृष्टिकोण के कारण भी है। राजनैतिकविश्लेषणात्मक अपने कार्यों को अपना अर्थ प्रदान करते हैं तथा इस स्थिति का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसी कारण राजनीतिक विश्लेषणकर्ता में वैज्ञानिक ज्ञान के अतिरिक्त नैतिक अन्तप्रर्ज्ञा भी होनी चाहिए। मूलतः ऐप्टर सामाजिक संरचना के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तथा सरकार के रूपों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्ध रखता है उसमें वह यह देखना चाहता है कि सत्ता किस सीमा तक चयन एवं निर्णय करने में सक्षम होती है।

ऐप्टर आधुनिकीकरण को सामान्यतः विकास तथा औद्योगीकरण दोनों से भिन्न मानता है। आधुनिकीकरण विकास की प्रक्रिया का एक पक्ष है। विकास समाज में प्रकार्यात्मक व्यक्ति कार्यो का प्रबुद्ध विशेषीकरण है। उसमें समाज का लौकिकीकरण हो जाता है। औद्योगीकरण आधुनिकीकरण का एक भाग है जिसमें उत्पादन क्रिया से सम्बन्धित व्यक्ति कार्यो का विशेषीकरण हो जाता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पूर्व औद्योगीकृत समाजों में परिचालित होती है। उसका सम्बन्ध व्यवसायिक तकनीकी प प्रशासनिक व्यक्ति कार्यो तथा उन्हें सहारा देने वाली संस्थाओं, अस्पताल विद्यालय, विश्वविद्यालय, नौकरशाही आदि से होता है। इनसे नवीनीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। तथा राजनैतिक नवीन समस्यायें उत्पन्न होती है। यह आधुनिकीकरण की राजनीति स्वतः एक महत्वपूर्ण तथा आकर्षक विषय है। इससे नवीनता के भय का अन्तहीन एवं अज्ञात क्रम आरम्भ हो जाता है। ऐप्टर की विचारधारा का क्रम इस प्रकार है।

इसके विश्लेषण के लिए वह आमण्ड की तरह संरचनात्मक प्रकार्यवादी विश्लेषण के पक्ष में है। क्योंकि व्यक्ति कार्य प्रकार्यो द्वारा परिभाषित व्यवहार के संस्थापक रूपों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। परन्तु यह व्यवहार में अन्तर्निहित अभिप्रायों का भी विश्लेषण करता है। उसके राजनीतिक विश्लेषण में (1) चयन (2) चयन का परिवेश या सन्दर्भ, दोनों शामिल है। उनका विश्लेषण संरचनात्मक होने के साथ-साथ व्यवहारवादी भी है।

वह आधुनिकीकरण की अवस्था में सरकार द्वारा सत्ता बनाये रखने की दशाओं का विश्लेषण करता है। उसे औचित्यपूर्वता की समस्या कहा जा सकता है। वह खुले तौर पर सरकार की संस्थाओं तथा उनके व्यवस्थागत आधारों का विश्लेषण करता है।

(1) सत्ता-व्यवस्था में केन्द्रीकरण की मात्रा या पदसोपान की मात्रा।

(2) सत्ता द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त मूल्य व्यवस्था।

कहने का तात्पर्य यह है कि ऐप्टर नैतिक संरचनात्मक तथा व्यवहारवादी सिद्धान्त का विकास करना चाहता है।

राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया इतनी जटिल है कि उसके सुनिश्चित प्रतिमान नहीं बना पाया है परन्तु एडवर्ड शिल्स ने अपनी पुस्तक पोलिटिकिल मार्डनाइजेशन में यह बताने का प्रयत्न किया है कि आधुनिकीकरण के आधार पर यदि समस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं को देखा जाय तो उन्हें पाँच प्रतिमानों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। उनके अनुसार सभी राजनीतिक व्यवस्थायें राजनीतिक आधुनिकीकरण की निश्चित रेखा पर कहीं न कहीं अंकित की जा सकती है। ये प्रतिमान इस प्रकार हैं।:-

(1) राजनीतिक लोकतंत्र -राजनीतिक लोकतंत्र से तात्पर्य उस शासन व्यवस्था से है जिसको अपनाने का प्रयत्न आधुनिकीकरणशील राष्ट्र कर रहे हैं जिनमें नागरिकों को स्वतंत्रतायें प्राप्त होती हैं। इस

प्रकार की शासन व्यवस्था में वयस्क मताधिकार, चुनाव व्यवस्था, राजनीतिक दल स्वतंत्र न्यायपालिका, लोकतंत्रीय अधिकार इत्यादि वे सब व्यवस्थायें पायी जाती हैं जो कि लोकतंत्रीय व्यवस्था के लिए आवश्यक मानी जाती है। अमेरिका, ब्रिटेन तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों के लोकतंत्र इसका उदाहरण हैं।

(2) अभिभावक लोकतंत्र-अनेक समाजों में कुछ लोग राजनीतिक लोकतंत्र के सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं में आस्था तो रखते हैं परन्तु उसकी स्थापना की परिस्थितियों के आभाव में लोकतंत्र लाने के लिए प्रयत्नशील ही हो सकते हैं। वास्तव में लोकतंत्रीय व्यवहार की असम्भावना के कारण ऐसे लोग लोकतंत्र के रक्षक या अभिभावक बन जाते हैं। ये लोग व्यवस्थापिका तथा राजनीतिक दलों की शक्ति को सीमित रखकर कार्यपालिका में शक्तियों का केन्द्रीकरण कर लेते हैं जिससे देश में राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना की परिस्थितियों को पैदा किया जा सके। इस नामात्र के लोकतंत्र की सफलता उस बात पर निर्भर है कि शासक वर्ग किस सीमा तक राजनीतिक लाकतंत्र की स्थापना करने के लिए तैयार हैं। अभिभावक लोकतंत्र उसी रूप में अपनाया जाता है जबकि उस राज्य में राजनीतिक लोकतंत्र के लिए स्वस्थ दशायें मौजूद न हो तथा जनता में उन दशाओं का विकास करने का प्रयत्न किया जा रहा हो। ऐसे लोकतंत्र एक प्रकार से राजनीतिक लोकतंत्र का मार्ग प्रशस्त करता है। भारत में लोकतंत्र की यही अवस्था है।

(3) आधुनिकीकरणशील वर्गतंत्र-कई बार लोकतांत्रिक संरचनाओं का विद्यमान रहना अपने आप में राजनीतिक आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधा बनने लगता है। ऐसे में राजनेतागण सामाजिक तथ आर्थिक आधुनिकता प्राप्त करने के लिए अधिक अधिकारवादी राज्य की स्थापना करते हैं जिसका उद्देश्य एक शक्तिशाली स्थायी तथा ईमानदार शासन स्थापित करना होता है। ऐसे शासन को आधुनिकीकरणशील वर्गतंत्र कहा जाता है। इस व्यवस्था में सारी शासन सत्ता कार्यपालिका में निहित होती है। संसद के हाथों में कोई अधिकार नहीं होता । एक को छोड़कर समस्त राजनीतिक दल गैर कानूनी घोषित कर दिये जाते हैं तथा नौकरशाही का बोलबाला हो जाता हैं। अतः ऐसे शासन में एक अधिकारवादी राज्य की ओर उन्मुखता होती हैं। यहद किसी राजनीतिक व्यवस्था को सौभाग्य से ऐसा नेतृत्व समाज में तेजी से आधुनिकता ला पायेगा। जूलियस न्येरेरे, केनेथ कौण्डा, सुकर्ण आदि नेताओं को ऐसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

(4) सर्वाधिकारी वर्गतंत्र-यह शासन का वह स्वरूप है जो राजनीतिक आधुनिकीकरण की अपेक्षा आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र को प्राथमिकता देता है ऐसे गुटतंत्र में एक विचारधारा के आधार पर संगठित एकाधिकरवादी राजनीतिक दल के नेतृत्व में आधुनिकीकरण के सभी पक्षों को एक साथ आगे लाने का प्रयत्न किया जाता है। उसमें साम्यवादी या फासिस्टवादी विचारधारा के अनुसार शासन चलाया जाता है। पूरी तरह एकदलीय व्यवस्था के आधार पर तानाशाही सरकार की स्थापना होती है। लोकतंत्रीय संस्थाओं जैसे मौलिक अधिकार, स्वतंत्र चुनाव आदि का इस व्यवस्था में कोई

स्थान नहीं होता । जनता को दल या सरकार द्वारा निश्चित की गयी नीति के अनुसार अपने को ढालना पड़ता है। चीन का उदाहरण यहाँ सर्वोचित है।

(5) परम्परागत वर्गतंत्र -परम्परागत वर्गतंत्रीय व्यवस्था सही अर्थों में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का खुला विरोधी है। क्योंकि आधुनिकता तथा परम्परागत साथ-साथ नहीं चल सकते। परम्परागत वर्गतंत्रीय व्यवस्था चलते आ रहे धार्मिक विश्वासों से सम्बन्धित शक्तिशाली राजतंत्रीय सिद्धान्तों पर आधारित होती है। ऐसी व्यवस्था में शासक रक्तवंश के आधार पर नियुक्त किये जाते हैं। ऐसी शासन व्यवस्था में कोई विधानमंडल नहीं होता। कानून बनाने का कार्य शासक अपने सलाहकारों की सहायता से करते हैं। जनसेवा के कार्यो को कोई महत्व नहीं दिया जाता। सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का आधार सामन्तवादी व्यवस्था होती है जिसके कारण केन्द्र अधिकशक्तिशाली नहीं हो पाता नेपाल, भूटान तथा पश्चिम एशिया के देशों में ऐसी प्रणाली पायी जाती है।

शिल्स की मान्यता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण का यह प्रतिमान राजनीतिक व्यवस्थाओं को आधुनिकता के स्तर तक पहुँचाने का संकेतक है। राजनीतिक आधुनिकीकरण का श्रेष्ठतम रूप लोकतंत्र का है। जान काटस्की ने भी अपनी पुस्तक ''पॉलिटिकल चेंज इन अन्डरडेवेलप्ड कन्ट्रीज नेशनलिज्म एण्ड कम्यूनिज्म (1962)'' में भी रजनीतिक आधुनिकीकरण को पाँच श्रेणी में रखा है।

1.परम्परागत कुलीनतंत्रात्मक अधिकारवादी व्यवस्था।

2.राष्ट्रीय बुद्धिजीवियों के प्रभुत्व की संक्रान्तिकालीन व्यवस्था।

3.कुलीनतंत्रों की सर्वाधिकारवादी व्यवस्था।

4.बुद्धिजीवियों की सर्वाधिकारवादी व्यवस्था।

5.प्रजातंत्रातात्मक व्यवस्था।

9.7 राजनीतिक आधुनिकीकरण के अभिकरण

राजनीतिक आधुनीकीकरण एक पेचीदा परिवर्तन प्रक्रिया है जिसमें कई अभिकरणों एवं माध्यमों की भूमिका रहती है। डॉ0 एस0पी0 शर्मा ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ''सामाजिक संचारण एवं आर्थिक विकास दोनों ही राजनीतिक आधुनिकीकरण के निर्णायक तत्व माने जाते हैं तथा इनसे विकासशील देशों के लिए घातक परिणाम निकले हैं।'' मुख्य तौर से राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख अभिकरण इस प्रकार हैं:-

1. बुद्धिजीवी -बुद्धिजीवी द्वारा राजनीतिक व्यवस्था के साध्यों, गन्तव्यों तथा उद्देश्यों के विकल्प सुझाये जाते हैं इन विकल्पों में से कुछ का चयन करके राजनीतिक शक्ति को संरचनात्मक रूप प्रदान किया जाता है। इसमें अभिजनों द्वारा सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया जाता है। उनकी विचारधाराएँ,

विशेष प्रकार की मान्यतायें एवं आकांक्षायें राजनीतिक आधुनिकीकरण का परिप्रेक्ष्य तैयार करती है इन्हीं के द्वारा राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सक्रिय एवं शिथिलि होती है।

2. राजनीतिक दल -राजनीतिक दल भी राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख अभिकरण होते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में इनकी भूमिका सर्वविदित है। सर्वाधिकारी शासनों में तो एकाधिकारवादी राजनीतकि दल ही राजनीति का संचालन माना जाता है और वह अपनी विचारधारा से आधुनिकीकरण में योगदान करता है। भारत में स्वतंत्रा आन्दोलन में निरन्तर कांग्रेस पार्टी की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

3. सरकारें-आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में सरकारों के माध्यम से ही अधिकांश कार्यो की पहल होती है इसीलिए वे राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में सक्रिय होकर राजनीतिक आधुनिकीकरण की अभिप्रेरक बन जाती है। भारत में इन्दिरा गांधी का शासनकाल (1966-1977) इसका उदाहरण प्रस्तुत करता है।

9.8 राजनैतिक विकास एवं राजनैतिक आधुनिकीकरण में अन्तर

राजनीतिक विकास एवं राजनीतिक आधुनिकीकरण दोनों ही धारणायें विकासशील समाजों समस्याओं से सम्बन्धित का अध्ययन करती है। यह भी सत्य है कि दोनों में अन्तर करना सरल कार्य नहीं है। यह अन्तर भी मात्रा की अपेक्षा प्रभाव से सम्बद्ध है। इस सम्बन्ध में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं:-

1.राजनीतिक विकास की धारणा से आधुनिकीकरण की धारणा अपेक्षाकृत अधिक संकुचित मानी जाती है। वस्तुतः राजनीतिक विकास आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का एक भाग है परन्तु उसका क्षेत्र केवल राजनीतिक है।

2.रजनीतिक विकास एक लक्ष्योन्मुख प्रक्रिया है जिसे अपनी दिशा या गन्तव्य ज्ञात है परन्तु आधुनिकीकरण विभित्र दिशाओं एवं क्षेत्रों में लाया जाने वाला व्यापक परिवर्तन है तथा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यद्यपि राजनीतिक आधुनिकीकरण की धारणा राजनीतिक विकास के अधिक समीप है फिर भी समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र से सम्बद्ध होने के कारण राजविज्ञान के लिए उपयोगी नहीं है। आधुनिकीकरण की धारणा में राजनीतिक विकास एक आश्रित चर बनकर रह जाता है परन्तु बिना आधुनिकीकरण के राजनीतिक विकास आरम्भ किया जा सकता है।

3.राजनीतिक विकास कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर परिवर्तन करता तथा दिशाओं का आंकलन करता है जबकि आधुनिकीकरण का सम्बन्ध आधुनिक मूल्यों मान्यताओं तथा विश्वासों से है जिसके माध्यम से राजनैतिक संरचनाओं संस्थाओं तथा अर्थतंत्र के समय के अनुरूप बनाया जाता है।

4.राजनीतिक आधुनिकीकरण की मान्यता प्रतिमानों पर अधिक आश्रित है। कहीं इसे पश्चिमीकरण से जोड़ा जाता है तो कहीं इसे लोकतंत्र से या फिर इसे औद्योगीकरण से। इस प्रकार यह दुष्टिकोण कुछ पाक्षपातपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह परम्परा और आधुनिकता को एक दूसरे का विरोधी मानता है। दूसरी ओर राजनीतिक विकास परम्परा तथा आधुनिकता में अन्तर करते हुए भी दोनों को विरोधी नहीं मानता बल्कि दोनों में सामंजस्य स्थापित करता है।

5.कुछ विश्लेषणों के अनुसार राजनीतिक विकास आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का परिणााम है। आधुनिकीकरण का सम्बन्ध प्रायः विकासशील समाजों से किया जाता है। राजनीतिक विकास का समस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं चाहें वे विकसित हों या विकासशील या अविकसित के संदर्भ में प्रयोग किया जा सकता है। दूसरी ओर आधुनिकीकरण सामाजिक परिवर्तनों की सम्पूर्ण प्रकृति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। वह एक परम्परागत समाज द्वारा विकसित या आधुनिक समाजों की विशेषताएँ धारण करने के प्रयासों तथा प्रक्रियाओं का नाम है। डेविड ऐप्टर ने Tha politics of modernization 1965 तथा conceptual approaches to the study of modernization 1968 1968 धारणा का उपयोग किया है।

6.राजनीतिक विकास केवल राजनैतिक विन्यास संरचनाओं प्रक्रियाओं पर पड़ने वाले तीव्र सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के प्रभावों से सम्बद्ध है। वह केवल उन राजनीतिक संस्थाओं तथा बलों में रूचि रखता है जो विकासात्मक परिवर्तनों को कार्यान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं।

राजनीतिक आधुनिकीकरण से सम्बन्धित विचारक भी इन्हीं पक्षों के अध्ययन में रूचि रखते हैं परन्तु अनेक विचारकों ने सामान्य रूप से आधुनिकीकरण के कुछ मापदण्ड तैयार किये हैं तथा उन्हीं के आधार वे आधुनिकीकरण का निर्धारण करते हैं।

7.राजनीतिक विकास चूंकी निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो निश्चित परिवर्तन को विकास से सम्बद्ध मानकर चलती है परन्तु जैसा कि हंटिंग्टन की मान्यता है कि यदि वे परिवर्तन सकारात्मक न सिद्ध हुए तो राजनैमिक विकास की अपेक्षा राजनैतिक क्षय या विनाश की ओर ले जाते हैं। जहाँ तक आधुनिकीकरण की प्रश्न है वह मूल्यों से आबद्ध बहुमुखी धारणा है और एक बार यदि किसी व्यवस्था द्वारा सकारात्मक रूप से इनको अपना लिया जाता है तो उसमें पीछे हटने या क्षय होने की सम्भावना नहीं रह जाती।

अभ्यास प्रश्न

1. Tha politics of modernization पुस्तक किसने लिखी है ?

2. पॉलिटिकल चेंज इन अन्डरडेवेलप्ड कन्ट्रीज नेशनलिज्म एण्ड कम्यूनिज्म पुस्तका के लेखक कौन है ?

9.9 सारांश

सम्पूर्ण विश्लेषण के उपरान्त यह कहना सर्वोचित है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण उपागम आधुनिक राज व्यवस्था का अध्ययन करने वाला यथार्थवादी उपागम है। राजनीतिक विकास उपागम की अपेक्षा यह जीवन के राजनीतिक पहलू को अधिक समग्रता के साथ जोड़ने का प्रयत्न करता है। परन्तु इसमें सबसे बड़ी कमी तुलनात्मक पद्धति को लेकर है। जब तक आधुनिकीकरण की सामान्य प्रक्रिया से राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को अलग एवं स्वायत्त प्रक्रिया के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया जाता इस उपागम का प्रयोग राजनीतिक तुलनाओं में नहीं किया जाता। पुनः यह अवधारणा समाजशास्त्रीय तथा आर्थिक विकास से सम्बन्धित है जिससे राजवैज्ञानिकों कोयह आशंका प्रतीत होती है कि राजनीति को समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के अधीन बना दिया गया है, जिससे राजनीतिक के एक स्वायत्त विषय के रूप में अध्ययन में बाधा उत्पत्र होती है। परन्तु उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद राजनीतिक आधुनिकीकरण की संकल्पना व्यवहारिक तथा यथार्थवादी अध्ययन का उपर्युक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है इस अवधारणा के सहारे राजनीतिक विश्लेषणों में तर्कसंगतता एवं औचित्य का समावेश किया जा सकता है।

9.10 शब्दावली

आधुनिकीकरण – यह विश्व के नये उदित राष्ट्रों तथा विकासशील समाजों की उस परिवर्तन प्रक्रिया का नाम है जो उन्हें आधुनिक मूल्यों, मान्यताओं एवं विश्वासों से जोड़ती है।

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. डेविड ऐप्टर ने , 2. जान काटस्की ने

9.12 संदर्भ ग्रंथ

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

9.13 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.आधुनिकीकरण को परिभाषित कीजिए | इसके विविध अभिकरणों की विवेचना कीजिए |

2. राजनीतिक विकास और राजनीतिक आधुनिकीकरण में अंतर स्पष्ट कीजिए|

इकाई 10 : राजनीतिक समाजीकरण

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 राजनीतिक समाजीकरण: अर्थ एवं व्याख्या

10.4 राजनीतिक सामाजीकरण के प्रत्यय

10.5 राजनीतिक सामाजीकरण के दो स्वरूप होते हैं- व्यक्त तथा अव्यक्त।

10.6 राजनीतिक सामाजीकरण के निर्माणकारी तत्व

10.7 राजनीतिक सामाजीकरण के अभिकरण

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.11 संदर्भ ग्रंथ

10.12 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

10.13 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

आधुनिक राजनीति शास्त्र में व्यवहारपरक अध्ययन की प्रधानता बढ़ी है और यह व्यवहारपरक अध्ययन मनोवैज्ञानिक दुष्टिकोण से प्रभावित होता है और इसी दुष्टिकोण ने एक नई प्रकार की अवधारणा को जन्म दिया जिसे हम राजनीतिक समाजीकरण की संज्ञा देते हैं।

राजनीतिक समाजीकरण वास्तव में राजनैतिक संस्कृति का विस्तारीकरण है जिसके द्वारा किसी व्यवस्था के मूल्यों एवं विश्वासों को न केवल बनाये रखा जाता है बल्कि उन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित भी किसा जाता है। वास्तव में इस संकल्पना का उद्देश्य व्यक्तियों को इस तरह से प्रशिक्षित एवं उनका विकास करना है कि वे राजनीतिक समुदाय के सुकार्यकारी सदस्य बन सकें।

रार्बट सीगल के अनुसार इसके विशिष्ट अर्थ में यह मनोवैज्ञानिक आयाम निहित है कि यह संचालनशील राजनीतिक व्यवस्था के स्वीकार्य मानकों, अभिवृत्तियों तथा व्यवहार को क्रमिक ढंग से सीखना है। इससे यह स्पष्ट है कि राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया बचपन एवं किशोरावस्थ के माध्यम से निरन्तर प्रक्रिया में रहती है और जिसके दौरान नई पीढ़ी वयस्क जनता के बीच विद्यमान नियमों को ग्रहण करती है। राजनैतिक सामाजहकरण को पहले नागरिकता, नागरिक प्रशिक्षण तथा नागरिक समाजीकरण राजनीति एवं राजनीतिक व्यवहार के क्षेत्र में समाजीकरण की प्रक्रिया का परिसीमन है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त निम्नलिखित के बारे में जान सकेंगे

1.राजनीतिक समाजीकरण: अर्थ एवं व्याख्या

2.राजनीतिक सामाजीकरण के प्रत्यय

3.राजनीतिक सामाजीकरण के दो स्वरूप होते हैं- व्यक्त तथा अव्यक्त।

4.राजनीतिक सामाजीकरण के निर्माणकारी तत्व

5.राजनीतिक सामाजीकरण के अभिकरण

6.राजनीतिक सामाजीकरण एक सतत् प्रक्रिया

10.3 राजनीतिक समाजीकरण: अर्थ एवं व्याख्या

राजनैतिक सामाजीकरण एक मनौवैज्ञानिक अवधारणा है। इस अवधारणा का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति को राजनीतिक समुदाय का सफल संचालनकर्ता बनाना है। चूँकि किसी भी सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का स्थायित्व उसके सदस्यों के सामाजीकरण पर निर्भर है अतएव इसके लिए विशेष ढंग से उसका प्रशिक्षण एवं विकास आवश्यक है। अतएव राजनीतिक सामाजीककरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनैतिक संस्कृतियों का अनुरक्षण एवं उसमें नागरिकों का प्रशिक्षण इस प्रकार होता है जिससे वे संवैधानिक व्यवस्था द्वारा राजनैतिक परिवर्तन की कला सीखते हैं। उन्हें समस्या के समाधारन हेतु बल प्रयोग, प्रदर्शन, हिंसक उपद्रवों इत्यादि का सहारा नहीं लेना पड़ता है।

सामाजीकरण विकास की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति ज्ञान, निपुणता, विश्वासों, मूल्यों मनोवृत्तियों एवं वृत्तियों को प्राप्त करता है तथा ये उसे समाज के एक प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में कार्य करने के योग्य बनाते हैं।

राजनीतिक समाजीकरण का विषय क्षेत्र व प्रक्रिया है जिससे नागरिक राजनीतिक मूल्यों को सीखते हैं तथा उसे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करते रहते हैं तथा राजव्यवस्था में स्थापित्व एवं संतुलन बना रहता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सामाजीकरण सीख व अभ्यास की वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति अपनी समूह संस्कृति के प्रशिक्षण एवं समूह में अपनी भूमिका के माध्यम से सामाजिक समूह का अभिन्न अंग बनता है।

राजनीतिक सामाजीकरण का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया गया है। विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में इस प्रकार है सीगल के अनुसार, "राजनीतिक समाजीकरण सीख की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था द्वारा स्वीकृत आदर्शो धारणाओं एवं व्यवहारों की क्रमशः सीख मिलती है।''

लेंगटन के अनुसार, ''राजनैतिक सामाजीकरण वह तरीका है जिसके द्वारा समाज राजनीतिक संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। यह प्रक्रिया एक तरफ तो परम्परागत राजनीतिक आदर्शो एवं धारणाओं को बनाये रखने में सहायक है तथा दूसरी ओर यह राजनीतिक तथा मानसिक परिवर्तन के एक साधन के रूप में कार्य करती है।''

आई0 एल0 चाइल्ड के अनुसार, ''सामाजीकरण वह सम्पूर्ण प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति में विशाल व्यावहारिक सम्भावना के रहते हुए भी उसमें ऐसे वास्तविक व्यवहार कोउत्पन्न किया जाता है जिसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है। यह क्षेत्र उसके समूह के प्रचलित एवं स्वीकृत मानदण्डों के अनुसार होता है।"

आमण्ड एवं पावेल के शब्दों में, ''राजनैतिक समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृतियों का अनुरक्षण एवं उनमें परिवर्तन किया जाता है। इस कार्य के निष्पादन के माध्यम से व्यक्तियों को राजनीतिक संस्कृतियों में सम्मिलित किया जाता है तभी राजनैतिक वस्तुओं के प्रति उनके अभिविन्यास का निर्माण किया जाता है।''5

ग्रीन स्टेन के अनुसार, ''राजनीतिक सामाजीकरण को सीमित तथा व्यापक अर्थों मे परिभाषित किया जा सकता है। सीमित अर्थ में राजनीतिक सामाजीकरण सांस्थनिक एजेण्टों के माध्यम द्वारा, जिन्हें औपचारिक रूप से यह दायित्व सौंपा गया है। राजनीतिक सूचना मूल्यों एवं व्यवहारों का विमर्शपूर्वक अन्तर्निवेशन है। व्यापकतम अर्थों में इसमें जीवन चक्र की प्रत्येक अवस्था में औपचारिक एवं अनौपचारिक तथा नियोजित तथा सभी प्रकार की राजनीतिक सीख सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत केवल सुस्पष्ट राजनीतिक सीख ही नहीं बल्कि राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाली सभी अराजनीतिक सीख भी सम्मिलित है।''6

राजनीतिक सामाजीकरण की अविरल प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। किसी समूह अथवा पीढ़ी के अवसान से इसकी समाप्ति नहीं होती। धारणाओं विश्वासों, मूल्यों तथा ज्ञान का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तातंरण होता रहता है। व्यक्ति के जीवन चक्र की सभी अवस्थाओं में सामाजीकरण की प्रक्रिया सक्रिय रहती है।

राजनीतिक सामाजीकरण उस समय आरम्भ होता है जब एक बच्चा पर्यावरण में प्रवेश करता है। वह अनेक प्रकार की परिस्थितियों के सम्पर्क में आता है जिनके माध्यम से वह ज्ञान प्राप्त करता है। ईस्टन एवं डेनिंग बच्चे के जीवन में चार सत्रों का वर्णन करते हैं जिसके द्वारा बच्चा राजनीतिक संस्कृति एवं सामाजीकरण में प्रवेश करता है:-

1.विशेष व्यक्तियों के माध्यम से सत्ता को मान्यता।

2.सार्वजनिक एवं निजी सत्ता में अन्तर।

3.राजनीतिक संस्थाओं एवं व्यवहार के सम्बन्ध में ज्ञान,

4.राजनीतिक संस्थाओं तथा व्यक्ति विशेष के मध्य अन्तर

राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया मनुष्य के जीवन पर्यन्त चलती रहती है। आमण्ड एवं वर्बा का विचार है कि जो मनुष्य के राजनीतिक जीवन आरम्भ करने से पूर्व प्रभावी होते है, वे अधिक महत्व रखते हैं। व्यक्ति जीन प्रभावों को बाद में ग्रहण करता है उन्हीं के आधार पर वह अपने आरम्भिक मूल्यों एवं व्यवहार को संशोधित करता रहता है। अतएव अनुभवी प्रभावों का सामाजीकरण की

प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजीकरण की प्रक्रिया राजनीतिक व्यवस्था में न केवल स्थायित्व लाती है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन को भी सरल बना देती है।

10.4 राजनीतिक सामाजीकरण के प्रत्यय

राजनीतिक सामाजीकरण के दो प्रत्यय हैं:- 1. एकरस, 2. खण्डित।

एकरस प्रत्यय से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति एक दूसरे से मिलकर विश्वास के वातावरण में कार्य करते हैं तथा अपने राजनीतिक विचार ग्रहण करते हैं। यह पद्धति के स्थायित्व का वर्णन करता है। इसके विपरीत खण्डित प्रत्यय में व्यक्तियों के मध्य घृणा एवं अविश्वास का वातावरण होता है और उनमें व्यवस्था के प्रति निष्ठा एवं श्रद्धा का आभाव होता है। वस्तुतः यह अवधारणा अत्यन्त धीमी गति से परिवर्तन में विश्वास करती है। इसके अनुसार सामाजीकरण की प्रक्रिया में परिवर्तन के साथ राजनीतिक संस्कृति में भी सन्तुलित ढंग से परिवर्तन होना चाहिए।

राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया राजनीतिक व्यवस्था तथा नागरिकों के व्यवहार पर निर्भर करती है। राजनीतिक व्यवस्था जितनी स्थायी होगी उतने ही सामाजीकरण के तत्व स्थायी होंगे। यह तत्व अधिनायकवादी एवं गैर अधिनायकवादी दोनों ही व्यवस्थाओं में सक्रिय रहते हैं। राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया स्वतंत्र नहीं छोड़ी जा सकती क्योंकि इसी प्रक्रिया के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था में विचारों, आदर्शों दृष्टिकोणों, व्यवहारों, सिद्धान्तों, इत्यादि का निर्माण किया जाता है। राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया का राजनीमिक व्यवस्था के संतुलन बने रहना चाहिए अन्यथा व्यवस्था की स्थायित्व के लिए संकट उत्पन्न हो जायेगा।

10.5 राजनीतिक सामाजीकरण के दो स्वरूप होते हैं- व्यक्त तथा अव्यक्त

व्यक्त सामाजीकरण प्रत्यक्ष सामाजीकरण है। अव्यक्त सामाजीकरण अप्रत्यक्ष होता है। जब राजनीतिक विषयों के सम्बन्ध में स्पष्ट मूल्यों, संवेदनाओं तथा सूचनाओं का संचार होता है तो उसे व्यक्त सामाजीकरण कहते हैं। व्यक्ति जब परिवार शिक्षक, यहयोगियों तथा अन्य माध्यमों से राजनीतिक विचारों का निर्माण करता है तो यह व्यक्त सामाजीकरण की प्रक्रिया बन जाती हैं।

प्रत्यक्ष सामाजीकरण की प्रक्रिया जब गैर राजनीतिक विषयों के सम्पर्क में आती है तब उसका राजनीतिक अभिमुखीकरण होता है। राजनीतिक अभिमुखीकरण के माध्यम से ही व्यक्ति राजनीतिक सत्ता एवं क्रियाकलापों के प्रति अपने दृष्टिकोण का विकास करता है। इसी दृष्टिकोण को अप्रत्यक्ष सामाजीकरण कहते हैं।

10.6 राजनीतिक सामाजीकरण के निर्माणकारी तत्व

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजनैतिक सामाजीकरण वास्तव में एक प्रकार की शिक्षा है जिसके माध्यम से व्यक्ति राजनीतिक वस्तुओं के प्रति ज्ञान प्राप्त करता है तथा अपने व्यवहार का निर्माण करता है। मैन्नहीम ने राजनीतिक सामाजीकरण की चार विशेषताओं का उल्लेख किया है।

1.राजनीतिक सामाजीकरण आधारभूत रूप से शिक्षण की प्रक्रिया का ही भाग है। इस प्रकार व्यक्ति उस प्रक्रिया से केवल उन्हीं तत्वों को ग्रहण करता है जिनकी राजनीतिक वस्तुओं, मूल्यों या गतिविधियों से संगमता व उपयोगिता हो।

2.राजनीतिक सामाजीकरण के फल योगात्मक एवं अन्तक्रियात्मक हैं। दूसरे शब्दों में राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया सदा ही बनी रहती है।

3.राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया अति विस्तारपूर्ण है। इनमें वे सभी बातें आ जाती हैं जिनमें राजनीति को सीखने के कुछ भी अथवा दूरी का भी सम्बन्ध हो।

4.प्रत्येक व्यक्ति सामाजीकरण के अनुभवों के न्यूनाधिक अनोखे मेल का प्रतिनिधित्व करता है। चूँकि पारिवारिक जीवन, सामूहिक संघों शैक्षिक अनुभवों तथा जीवन शैलीयों के प्रकार अनगिनत हैं तथा राजनीतिक सामाजीकरण में अन्य शक्तियाँ अर्न्तग्रस्त रहती है। अतः ऐसे सामाजीकरण के सम्भावित उत्पाद भी अनगिनत एवं विविध प्रकार के हैं।

10.7 राजनीतिक सामाजीकरण के अभिकरण

राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है और जीवन के विभिन्न चरणों में इसकी प्रक्रिया विभिन्न अभिकरणों से प्रभावित होती रहती है। सामाजीकरण के प्रमुख अभिकरण इस प्रकार हैं:- 1. परिवार या कुटुम्ब, 2. औपचारिक शिक्षा संस्थाएँ, 3. अनौपचारिक संस्थायें, 4. जनसंचार के साधन, 5. राजनीतिक दल।

1.परिवार या कुटुम्ब

सामाजीकरण की संस्थाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान या कुटुम्ब को प्राप्त होता है। अरस्तू का मानना है कि परिवार मानव जीवन की प्रथम पाठशाला है। परिवार से ही मनुष्य संतोष, विरोध, आज्ञा, आदेश, श्रद्धा, ज्ञान इत्यादि भावनायें ग्रहण करता है तथा इन्हीं के आधार पर अपने राजनीतिक मूल्यों एवं विश्वासों का निर्माण करता है। राबर्ट लेन कुटुम्ब में तीन रीतियों का वर्णन करते हैं जिनके द्वारा बच्चा ज्ञान प्राप्त करता है।
1.प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सिद्धान्तीकरण.

2.बच्चे का एक विशेष सामाजीकरण परिस्थिति से सम्पर्क।

3.बच्चे की मनोवृत्ति का उद्देश्य पूर्ण निर्माण।

2.औपचारिक शिक्षा संस्थायें

व्यक्ति को राजनीतिक शिक्षा में दूसरा स्थान औपचारिक शिक्षा संस्थाओं का है। आमण्ड एव वर्बा की मान्यता यह है कि जितनी अधिक एक व्यक्ति की शिक्षा होगी उतना ही अधिक उसे राजनीतिक ज्ञान होगा और वह राजनीतिक तथा सरकारी प्रक्रिया को समझ पायेगा तथा राजनीतिक वस्तुओं के सम्बन्ध में उसके विचार उतने ही सुलझे होंगे। यही कारण है कि स्कूलों के पाठयक्रमों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उच्च शिक्षा संस्थायें व्यक्ति को राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में परोक्ष अनुभव प्रदान करके विशेष सहायता पहुँचाती है जिनके माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था में वह सरलता से अपना स्थान ग्रहण कर लेता है। मायरन वीनर के शब्दों में, ‘‘यदि विश्वविद्यालयों के अधिकारी विद्यार्थियों की शिकायतें दूर करने का सन्तोषजनक मार्ग निकाल लें तो विश्वविद्यालयों में अनुशासनहीनता की समस्या दूर हो ही जायेगी, वह देश को ऐसे अभिजन भी देंगे जो व्यवस्था के स्थायित्व को प्रभावित करेंगे तथा देश को उन्नति की ओर ले जायेंगे‘‘।

3.अनौपचारिक संस्थायें

राजनीतिक सामाजीकरण में तीसरा महत्वपूर्ण स्थान अनौपचारिक संस्थाओं का है, जहाँ व्यक्ति कार्य करता है, मनोरंजन के लिए जाता है या सामूहिक रूप से राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेता है। ये संस्थायें भी मनुष्य के राजनीतिक मूल्यों, भावनाओं एवं विचारों को परिष्कृत करके उन्हें औचित्यपूर्ण बनाती हैं।

4.जनसंचार के साधन

राजनीतिक सामाजीकरण में चौथा महत्वपूर्ण स्थान जनसंचार साधनों का है। इन साधनों से मनुष्यों को विभित्र सूचनाओं की प्राप्ति होती है जो उसके राजनीतिक विचारों के निर्माण में सहयोग देती हैं। यही माध्यम उनके राजनीति में गतिशील होने के आधार तैयार करता है।

5.राजनीतिक दल

राजनीतिक दल भी राजनीतिक सामाजीकरण का एक सफल साधन हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में व्यक्तियों को राजनीतिक शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक दलों द्वारा ही किया जाता है। लोकमत से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार एवं उसके निर्माण में राजनैतिक दलों का योगदान अप्रतिम होता है। जहाँ तक विकासशील देशों तथा समाजों का प्रश्न है, वहाँ पर राजनैतिक दल व्यवस्था के विकास एवं आधुनिकीकरण में सहयोग देते हैं। भारत में स्वतंत्रा के उपरान्त राजनैतिक विकास में क्रांग्रेस पार्टी का अद्वितीय योगदान रहा है। सामान्य रूप से राजनैतिक दलों के निम्न कार्य हैं:-

1.मतदाताओं को निर्वाचन प्रक्रिया के प्रति जागरूक बनाना एवं आकृष्ट करना।

2.जनता एवं शासन के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना।

3.राजनैतिक सूचनाओं का प्रसार करना।

4.विभिन्न समुदायों के मध्य एकीकरण करना।

5.राष्ट्रीयता का प्रचार करके सामाजीकरण के अभिकर्ता के रूप में कार्य करना।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि अभी तक राजनीतिक सामाजीकरण के सर्वमान्य प्रतिमान विकसित नहीं किये जा सके हैं। आधिकतर अध्ययन अमेरिका एवं यूरोपीय देशों तक ही सीमित रहे हैं। विभिन्न देशों में हुए अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि 3, 4 वर्ष को आयु में बच्चों में प्रजातीय की आयु तक बच्चे अन्य समूहों के लिए प्रयुक्त शब्दों एवं संप्रत्ययों को सीख जाते हैं। 12, 13 वर्ष की आयु में विकसित देशों में बच्चे राट्रीय एवं प्रजातीय भावनाओं के अतिरिक्त वर्ग संचरना का ज्ञान, शक्ति एवं बल , राजनैतिक दलों, निर्वाचन प्रणाली तथा सरकार के महत्व के बारे में काफी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। किशोरावस्था में सरकार की संरचना एवं कार्यों, विधि, राजनैतिक दलों, समुदायों की आवश्यकताओं, व्यतिक्तगत स्वतंत्रता तथा राजनैतिक विनिश्चयों एवं निर्णयों के प्रति जागरूकता आने लगती है। वयस्क होने पर व्यक्ति राजनैतिक प्रक्रियाओं में स्वयं भाग लेना आरम्भ कर देता है तथा राजनीतिक सीख के रूप में यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

अभ्यास प्रश्न

1. राजनीतिक सामाजीकरण के कितने स्वरुप है ?

2.राजनीतिक सामाजीकरण के के कितने प्रत्यय हैं ?

10.8 सारांश

राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया मानव जीवन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है अधिकांश विद्वान राजनीतिक सामाजीकरण को परिवर्तन की एक प्रक्रिया मानते हैं परन्तु इसके द्वारा प्रचलित मूल्यों एवं प्रतिमानों का आभ्यन्तरीकरण होता है जिसका उद्देश्य परिवर्तन की अपेक्षा स्थिरता लाना होता है।

आमण्ड एवं पावेल ने राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया को विशेष महत्व प्रदान किया है तथा उसे किसी भी समाज के राजनीतिक स्थायित्व तथा राजनैतिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए इसे बहुत उपयोगी बताया है। वर्तमान विश्व के राजनैतिक समाजों में तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों का राजनैतिक व्यवस्थाओं के साथ आवश्यक सामंजस्य स्थापित करने में राजनैतिक सामाजीकरण का विशेष महत्व स्थापित हो गया है। मनुष्य को नयी परिस्थितियों के अनुरूप तैयार करने में सामाजीकरण का विशेष योगदान है। उदाहरण के लिए जब कोई राजनीतिक व्यवस्था अधिनायकतंत्र से उदारवादी प्रजातंत्र में परिवर्तित होती है अथवा राजतंत्र से प्रजातंत्र में परिणत होती है तब निश्चय ही पुराने सामाजीकरण को निरस्त कर उसके स्थान पर नवीन प्रकार के सामाजीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है।

अतएव यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया सामाजिक मूल्यों एवं विश्वासों को मानव जीवन में स्थापित करके उन्हें राजनैतिक व्यवस्था के अनुकूल बनाने में सहायक एवं निर्णायक सिद्ध होती है।

10.9 शब्दावली

राजनीतिक सामाजीकरण – यह वह प्रक्रिया है मानव जीवन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है अधिकांश विद्वान राजनीतिक सामाजीकरण को परिवर्तन की एक प्रक्रिया मानते हैं परन्तु इसके द्वारा प्रचलित मूल्यों एवं प्रतिमानों का आभ्यन्तरीकरण होता है जिसका उद्देश्य परिवर्तन की अपेक्षा स्थिरता लाना होता है।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. दो   2. दो

10.11 संदर्भ ग्रंथ

1. R.Sigel, Assumptions about the learning of political values in the annels of the American Academy of political and social science Vol.361, Sept. 1965, p.1
2. Ibid. p.1
3. K. P. Longton, Political Socialization, 1969, pp. 19-20
4. Irwin L. Child , Socialization, in G. Lindzey (ed) Handbook of Psychology Vol. 2 , 1954, P.655
5. Almond & Powel, Op. Cit. P.64
6. Cited by R. Singel, op. Cit.p.2
7. Almond & Powel, Op. Cit. pp. 65-69
8. R.E. Lene, Fathers and Sons, Foundations of Political Beliefs, in A.S.R. Vol. 24, 1959, pp. 502-11
9. Myron Weiner the politics of Scarcity, 1962,p. 185

10.12 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल
2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई
3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा
4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

10.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.राजनीतिक समाजीकरण को परिभाषित कीजिए | इसके विभिन्न अभिकरणों की विवेचना कीजिए |

इकाई 11 :राजनीतिक संस्कृति

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 राजनीतिक संस्कृति उपागम

11.4 राजनीतिक संस्कृति अर्थ एवं व्याख्या

11.5 संस्कृति एवं राजनीतिक संस्कृति

11.6 राजनीतिक संस्कृति के आधार

11.7 राजनीतिक संस्कृति के आयाम

11.8 राजनीतिक संस्कृति का वर्गीकरण

11.9 आमण्ड एवं वर्बा का राजनीतिक संस्कृति का विश्लेषण

11.10 सारांश

11.11 शब्दावली

11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.13 संदर्भ ग्रंथ

11.14 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

11.5 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

आधुनिक राजनीति विज्ञान व्यवस्था के समग्र रूप में राजनीति का अध्ययन करता है और इस अध्ययन में राजनीति में समाहित मूल्यों, विश्वासों मान्यताओं एवं मानकों का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। ये सभी तत्व मिलकर राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करते हैं। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की जानकारी बिना उसकी राजनीतिक संस्कृति के नहीं की जा सकती। प्रत्येक व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार पर उसके सांस्कृतिक व्यवहार का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अतएव आधुनिक विचारकों में राजनीतिक व्यवस्था को जानने के लिए राजनीतिक संस्कृति नामक नवीन अवधारणा का सहारा लिया है जिसके आधार पर एक नया उपागम विकसित किया गया है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त निम्नलिखित के सन्दर्भ में जान सकेंगे

1.राजनीतिक संस्कृति उपागम

2.राजनीतिक संस्कृति अर्थ एवं व्याख्या

3.संस्कृति एवं राजनीतिक संस्कृति

4.राजनीतिक संस्कृति के आधार

5.राजनीतिक संस्कृति के आयाम

6.राजनीतिक संस्कृति का वर्गीकरण

7.आमण्ड एवं वर्बा का राजनीतिक संस्कृति का विश्लेषण

11.3 राजनीतिक संस्कृति उपागम

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त विश्व में नये-नये राज्य स्वाधीन होने लगे। इन स्वाधीन राज्यों की विकासशील प्रकृति आधुनिक राजनीति वैज्ञानिकों के लिए चुनौती का विषय बन गई। अब राजनीतिक व्यवस्थाओं को संविधानों, संरचनाओं तथा संस्थाओं के आधार पर समझना कठिन हो गया क्योंकि पश्चिमी देशों को विकसित एवं स्थिर राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा विकासशील देशों को अस्थिर राजनीतिक व्यवस्थाओं में सिद्धान्त एवं व्यवहार की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर दिखाई देने लगा। अतएव धीरे-धीरे यह अनुभव किया गया कि मानव व्यवहार से सम्बद्ध अध्ययन ही विकासशील एवं विकसित देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं के अन्तर को नष्ट कर सकते हैं।
राजनीतिक संस्कृतिक इस दृष्टिकोण से उपयोगी है कि उसके अध्ययन से किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के मूल्यों, विश्वासों, मान्यताओं में व्याप्त प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है तथा इसी के माध्यम से विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं को गतिशीलता तथा सक्रियता का भी पता लगाया जा सकता है।

11.4 राजनीतिक संस्कृति अर्थ एवं व्याख्या

राजनीतिक संस्कृति एक नवीन मनोसमाज शास्त्री शब्द है जिसमें अनेक अवधारणायें शामिल हैं जैसे राजनीतिक विचारवाद, राष्ट्रीय लोकाचार, राष्ट्रीय मनोविज्ञान तथा जनता के आधारभूत नैतिक मूल्य इत्यादि। इस अवधारणा का विकास राजनीतिक विश्लेषण के व्यवहारवादी उपागम के साथ हुआ है।

राजव्यवस्था के प्रति अभिमुखन को राजनीतिक संस्कृति कहा जाता है। इस धारणा को सबसे पहले जी0ए0 आमण्ड ने तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए रखा था। इस सम्बन्ध में उसने 1956 में अपने एक लेख में विचार रखे थे। परन्तु राजसंस्कृति की अवधारणा सर्वथा नवीन या मौलिक नहीं है। प्राचीनकाल में हीरोडोटस प्लेटो, अरस्तू आदि ने तथा आधुनिक काल में डी टाम्बिल, ब्राइस, इमरसन, बेनेडिक्ट, मीड, फ्रोम आदि ने इस दिशा में अपने-अपने ढंग से चिन्तन किया है। उन्होंने मनोविश्लेषण तथा सांस्कृतिक मानवशास्त्र की दिशा में कार्य किया है। राजनैतिक क्षेत्र में कार्य पिछले दशकों में ही सम्पन्न हुआ है। राजनीतिक क्षेत्र की अपनी अलग संस्कृति है। उसके आचरण के लिए अलग नियम तथा सामाजीकरण की प्रक्रियायें हैं। उदाहरण के लिए उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में स्वतंत्रता, समानता, विधि शासन संविधानवाद, स्वतंत्र निर्वाचन, औचित्वपूर्ण सम्प्रभुता, राष्ट्रवाद, विरोधी दल इत्यादि राजसंस्कृति के अंग बन चुके हैं। आमण्ड तथा पावेल के अनुसार यह गुणों तथा अभिवृतियों का समूह होती है ।

राजनीतिक सस्कृति कि परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से की गई हैं:-

ए0 आर0 बाल के शब्दों में, ''राजनीतिक संस्कृति उन मनोवृत्तियों , विश्वासों, मनोभावों तथा मूल्यों का संकलन है जिनका सम्बन्ध राजनीतिक व्यवस्था एवं समस्या से है।''1

आमण्ड तथा पावेल के शब्दों में, ''यह किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के सदस्यों में राजनीति के प्रति पाई जाने वाली व्यक्तिगत मनोवृत्तियों तथा अभिमुखीकरण का स्वरूप है।'[2]

लूसियन डब्यू पाई के अनुसार, ''यह उन मनोवृत्तियों, विश्वासों तथा मनोभावों का संकलन है जो किसी राजनीतिक व्यवस्था को व्यवस्थित करता है तथा अर्थ प्रदान करता है तथा जो राजनीतिक व्यवस्था में व्यवहार को संचालित करने वाली मान्यतायें तथा नियम प्रदान करता है।'[3]

हींज यूलाऊ के शब्दों में, ''राजनीतिक संस्कृति उन रूपों की ओर इशारा करती है जिनका पूर्वानुमान समूहों के राजनीतिक व्यवहार से तथा एक समूह के सदस्यों के सामान्य विश्वासों, नियामक सिद्धान्तों, उद्देश्यों एवं मूल्यों से लगाया जा सकता है, चाहे उस समूह का आकार कुछ भी क्यों न हो।'[4]

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि किसी भी समाज के लोगों में एक सामान्य स्वभाव पाया जाता है। यह सामान्य मानव स्वभाव कुछ मूल्यों विश्वासों तथा मनोंभावों के रूप में अपने को अवगत कराते हैं। ये मूल्य विश्वास ताकि मनोभाव पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहते हैं। उनमें केवल थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है। उसे ही हम साधारण शब्दों में हम समाज की सामान्य संस्कृति कहते हैं। इस सामान्य संस्कृति के कुछ पहलू केवल सरकार की संरचना तथा उसके उद्देश्य से सम्बन्धित रहते हैं। संस्कृति के इसी भाग को हम राजनीतिक संस्कृति कहते हैं जो राजनीतिक क्रियाओं को सार्थकता प्रदान करता है। इसके प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं:-

1.राजनीतिक संस्कृति का मूल आधार व्यक्ति एवं समाज के राजनीतिक मूल्य एवं विश्वास होते है जो अमूर्त नैतिक धारणा से सम्बद्ध होते हैं। इन्हें तो मात्र समझा एवं अनुभव किया जा सकता है।

2.राजनीतिक संस्कृतिसामान्य संस्कृति के ही समान अनेक तत्वों का सामूहिक एवं समन्वित रूप है।
3.राजनीतिक संस्कृति के तत्व निरन्तर गतिशील एवं विकासशील होते हैं तथा समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तनशील होते हैं।

11.5 संस्कृति एवं राजनीतिक संस्कृति

राजनीतिक संस्कृति का अर्थ जानने के लिए सामान्य संस्कृति में उसका अन्तर जानना आवश्यक है। राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का अभिन्न अंग है। सामान्य संस्कृति के अन्तर्गत मानव के सभी दृष्टिकोण उसके राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित नहीं करते, केवल व्यक्तिगत मूल्य विश्वास तथा मनोवृत्ति ही इस अर्थ में संगत है। अतएव राजनीतिक संस्कृति का अध्ययन करते समय हमें राजनीति से सम्बन्धित अन्य तत्वों की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

संस्कृति को स्थायी बनने, प्रसारित तथा उत्तरजीवित रहने के लिए राजनीतिक एवं प्रशासनिक संरचनाओं का सहारा लेना पड़ता है। सिडनी वर्बा ने ठीक ही लिखा है कि आधुनिक शताब्दी में राजनीतिक जगत तथा उसके अध्ययन क्षेत्र दोनों में ही तीव्र परिवर्तन हुए है। नये राष्ट्र पैदा हूए हैं, पुरानों में परिवर्तन हुआ है तथा ऐसी समस्यायें उठी हैं जो राजनीतिज्ञों एवं वर्तमान संस्थाओं की क्षमता को चुनौती है। इन समस्याओं पर विचार करने के लिए आज राजनीतिक संस्कृति नामक दृष्टिकोण की अध्ययन किया जाता है। सामान्य संस्कृति की अपेक्षा राजनीतिक संस्कृति प्रगतिशील अथवा रूढ़िवादी हो सकती है। उदाहरण के लिए भारतीय राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति के अपेक्षा अधिक गतिशील एवं प्रगतिशील मानी जा सकती है जबकि बर्मा, नेपाल तथा इण्डोनेशिया की संस्कृति इसके विपरीत कही जायेगी। पाई के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वयं के ऐतिहासिक प्रसंग, अपने समाज तथा उसके लोगों की राजनीतिक के बारे में ज्ञान तथा भावनाओं को जानना तथा व्यक्तित्व में संयुक्त करना चाहिए।[5]

राजनीतिक संस्कृति राजनीति को व्यक्तिनिष्ठ अभिमुखन प्रदान करती है। इसी दृष्टिकोण के सहारे आज राजनीतिक व्यवस्थाओं की व्याख्या की जा रही है। राजसंस्कृति के विश्लेषण में विभिन्न वर्गों, दबावों, समूहों, संघों, साम्प्रदायिक दलों से सम्बन्धित अराजनीतिक संस्कृति की अवहेलना नहीं की जा सकती। प्रत्येक पीढ़ी सामाजीकरण के माध्यम से राजसंस्कृति को प्राप्त करके, उसे आत्मसात करने के उपरान्त उसमें संशोधन परिवर्तन आदि करती रहती है। इस प्रकार नये पुरानों का, परम्परा एवं आधुनिकता का संघर्ष चलता रहता है।

अतएवं विभिन्न दृष्टिकोणों से राजनीतिक संस्कृति महत्वपूर्ण है तथा इसके बिना किसी राजनीतिक व्यवस्था का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता है। राजनीतिक संस्कृति के दृष्टिकोण में यह देखना महत्वपूर्ण है कि कौन से पहलू किस घटना के निर्धारक है। यहाँ पर हम ल्यूसियन डब्ल्यू पाई तथा सिडनी वर्बा को ले सकते हैं। जिन्होंने जापान, इंग्लैण्ड, टर्की, भारत, सोवियत, रूस आदि देशों के

रजनीतिक परिवर्तन के साथ सांस्कृतिक पहलू को जोड़ा हैं राजनीतिक संस्कृति के निम्नलिखित विशिष्ट पहलू हैं:-

1.राजनीति के अध्ययन के अधिकांश दृष्टिकोण राजनीतिक अन्तः क्रियाओं तथा राजनीतिक संस्थाओं के प्रतिरूपों से सम्बन्धित हैं जबकि राजनीतिक संस्कृति इन प्रतिरूपों के सम्बन्ध में विश्वासों की व्यवस्था करती है।

2. राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक घटनाओं तथा उन घटनाओं की प्रतिक्रियाओं में लोगों के व्यवहार के बीच महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करती है।

3.राजनीतिक संस्कृति नियंत्रण की व्यवस्था बनाम राजनीतिक, अन्तः क्रिया की व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। यह इस बात का पता लगाती है कि किसने किससे बात को तथा किसने किसको प्रभावित किया है।

इस प्रकार राजव्यवस्था राजनीतिक संस्कृति से व्याप्त एवं प्रभावित रहती है। राजविश्लेषण को राजसंस्कृति की प्रकृति तथा उसके राजव्यवस्था, राजनेताओं पर प्रभाव की मात्रा, दिशा आदि का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। इससे राजनीतिक एव अराजनीतिक तत्वों की प्रक्रियाओं के तारतम्य का पता चल जाता है।

राजनीतिक विकास का मार्ग भी राजसंस्कृति की अनुकूलता को ढूँढता है। ऐसा न हो पाने पर वह स्वयं राजसंस्कृति को ही बदलने का प्रयास करता है। वर्तमान समय में पाकिस्तानी राजनीतिक व्यवस्था में हुआ परिवर्तन इसका ज्वलंत उदाहरण है।

11.6 राजनीतिक संस्कृति के आधार

प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट राजनीतिक संस्कृति होती है। इसके अन्तर्गत राजनीतिक आदर्श एवं राज्य व्यवस्था के प्रचलित मानकों का समावेश है। इसलिए लूसियन डब्ल्यू पाई का कहना है कि राजनीतिक संस्कृति राजनीति के मनोवैज्ञानिक एवं आत्मनैष्ठिक आयामों की समष्टिगत अभिव्यक्ति है।[6] अतः सार्वजनिक घटनाओं, अनुभवों, मानकों तथा सामाजिक मूल्यों में राजनीतिक संस्कृति की नींव होती है। इसके प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं:-

1.ऐतिहासिक विकास

राजनीतिक संस्कृति का सर्वप्रथम आधार समाज का ऐतिहासिक विकास होता है। विभिन्न देशों के ऐतिहासिक अनुभव इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। ब्रिटेन में आधुनिक राजनीतिक संस्कृति का विकास रक्त विहीन क्रांति से हुआ है, अतएव वहाँ सत्ता परिवर्तन होने पर भी राजनीतिक निरन्तरता एवं स्थिरता बनी रहती है। फ्रांस की सूनी क्रांति (1789) ने वहाँ राजनीतिक दृष्टिकोण से नये मूल्यों का सृजन किया है।[7] इसी प्रकार उत्रीसवीं शताब्दी से जर्मनी के एकीकरण तथा राष्ट्रवादी भावनाओं ने एक विस्तृत संस्कृति को जन्म दिया। प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हिटलर के उदय ने इस

दिशा मे नया मापदण्ड स्थापित किया। इसी प्रकार अफ्रीका, एशिया एवं लैटिन अमेरिकी देशों में राजनीतिक विकास के पीछे औपनिवेशक शासन एक प्रमुख आधार रहा है।

2.भौगोलिक संरचना

राजनीतिक संस्कृति के निर्माण का दूसरा महत्वपूर्ण आधार किसी राष्ट्र की भौगोलिक स्थिति होती है। ब्रिटेन तथा जापान की भौगोलिक स्थिति ने उन्हें वाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखा है। अमेरिकी संस्कृति में सजातीय विभित्रताओं के बावजूद प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता एवं वाह्य आक्रमण से सुरक्षा ने स्वतंत्रतावादी राजनीतिक मूल्यों का आत्मसात करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय राजव्यवस्था में पूर्वोत्तर राज्यों एवं कश्मीर का सामरिक महत्व हमें इन क्षेत्रों के भौगोलिक राजनैतिक महत्व पर विचार करने का उत्प्रेरित करता है। ब्रिटेन की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति ने ही वहाँ अन्य यूरोपीय राज्यों से भिन्न राजनीतिक संस्कृति को जन्म दिया है।[8]

3.सामाजिक आर्थिक संरचना

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक विकास का उसकी राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। औद्योगीकृत तथा नागरीकृत सामाजों में राजनीतिक विकास की मात्रा एवं साधनों की प्रचुरता होती है, अतएव वहां की राजनीतिक संस्कृति अधिक सहभागी एवं व्यापक होती है। यहां पर संघों एवं समुदायों की अधिकता राजनीतिक संस्कृति को नया आयाम देती है। इसी प्रकार ग्रामीण समाजों में रूढ़िवादी एवं संकीर्ण संस्कृति के दर्शन होते हैं जो परिवर्तन एवं नवीनता के प्रति उदासीन होती है। इसी प्रकार वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास संचार तथा यातायात इत्यादि का भी राजनैतिक मूल्यों, विश्वासों तथा मान्यताओं पर प्रभाव पड़ता है।

4.समाज एवं सामान्य संस्कृति का आधार

राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति से प्रभावित रहती है तथा किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संस्कृति तभी प्रभावकारी सिद्ध हो सकती है जब वह सामान्य संस्कृति के मूल्यों एवं मान्यताओं से अपने आपको ढाल लेती है। अधिकांश विकासशील देशों में राजनीतिक अशान्ति का वातावरण मात्र इसलिए विद्यमान है क्योंकि वहां की आधुनिक राजनीतिक संस्कृति का सामान्य संस्कृति से तादात्म्य न ही स्थापित हो सका है तथा यही कारण है कि वहां राजनीतिक व्यवहार के निश्चित प्रतिमान विकसित नहीं हो पाये हैं। रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक भारत की राजनीति में भारतीय राजनीतिक संस्कृति पर सामान्य संस्कृति के प्रभाव की चर्चा की है।

5.धार्मिक विश्वास

राजनीतिक संस्कृति के ऊपर धार्मिक विश्वासों का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जिन राज्यों में इस्लाम धर्म, ईसाई मिशनरियों तथा अन्य धार्मिक संगठनों की प्रबलता है वहां यह प्रभाव नितान्त स्पष्ट है। धीरे-धीरे यह प्रभाव कम हो रहा है क्योंकि आधुनिक राजनीतिक संस्कृति में धर्मनिरपेक्षता के तत्व परिलक्षित होते हैं।

6.विचारधाराओं का आधार

वर्तमान समय में विचारधारा प्रमुखतया राजनीतिक विचारधारा राजनीतिक संस्कृति की एक नियामक शक्ति बन गई है। नाजीवादएन फासीवाद ने क्रमशः जर्मनी एवं इटली की राजनैतिक संस्कृति को प्रभावित किया था। साम्यवाद ने भी रूस, चीन तथा पूर्वी यूरोपीय देशों की राजनैतिक संस्कृति को प्रभावित किया था। लोकतंत्र के बढ़ते प्रभाव ने भी राजनीतिक संस्कृति के स्वरूप में विश्वव्यापी परिवर्तन किया था।

इसके अतिरिक्त जातीय नस्लीय सदस्यता आदि भी राजनीतिक संस्कृति के निर्माणकारी तत्व का कार्य करते हैं।

राजनीतिक संस्कृति के कुछ महत्वपूर्ण चिह्न भी हैं तथा राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय पक्षी, पशु आदि। ब्रिटेन, जापान, नेपाल आदि देशों में राजतंत्र भी राजनीतिक संस्कृति का प्रतीक है। कुछ राज्यों की राजनीतिक संस्कृति में पौराणिक या कल्पित कथाओं का भी महत्व होता है।

11.7 राजनीतिक संस्कृति के आयाम

राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक व्यवस्था के भीतर वस्तुओं के प्रति व्यक्तियों की मनोवृत्तियों एवं अभिमुखों से निर्मित होती है। इनके तीन भिन्न आयाम होते हैं:-

1.ज्ञानात्मक अभिमुखीकरण

राजनीतिक व्यवस्था के भीतर वस्तुओं के प्रति व्यक्तियों के ज्ञान को ज्ञानात्मक अभिमुखीकरण कहते हैं। इसके द्वारा व्यवस्था के नियमों, भूमिकाओं तथा निर्गत कार्यो का बोध होता है। कोई राजनीतिक व्यवस्था किस प्रकार कार्य कर रही है, इसके प्रमुख एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों की जानकारी, नीति, सम्बन्धी प्रमुख समस्यायें इत्यादि के उच्चस्तरीय ज्ञान को ज्ञानात्मक अभिमुखीकरण कहते हैं।

2.भावात्मक अभिमुखीकरण

इसके अन्तर्गत व्यवस्था की वस्तुओं के प्रति व्यक्तियों को भावनाओं का बोध होता है। यह भावनायें सम्बद्ध या असम्बद्ध स्वीकृत या अस्वीकृत रूप में हो सकती है।

3.मूल्यात्मक अभिमुखीकरण

मूल्यात्मक अभिमुखीकरण का आशय व्यवस्था के नैतिक मूल्यांकन से है। व्यक्ति अपने मूल्यों भावनाओं, मान्यताओं तथा सूचनाओं के आधार पर व्यवस्था सम्बन्धी तथ्यों का मूल्यांकन करता है।

आमण्ड के मत में उपर्युक्त तीनों आयाम अन्तः सम्बन्धित है। इन तीनों आयामों के द्वारा ही किसी राजनीतिक व्यवस्था की राजनीतिक संस्कृति की जानकारी मिलती है। किसी भी राजनीतिक विषय व वस्तु के प्रति व्यक्ति की संवेदनाओं एवं अभिमुखताओं का उपर्युक्त तीनों आयामों के अन्तर्गत देखा एवं विश्लेषण किया जा सकता है। इनकी प्रकृति एवं मात्रा भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न होती हैं। इसलिए राजनीतिक संस्कृति में भी विभिन्नता होती है।

11.8 राजनीतिक संस्कृति का वर्गीकरण

आमण्ड तथा वर्बा ने अपनी पुस्तक में पश्चिमी देशों की राजनीतिक संस्कृतियों का अध्ययन कर उसे वर्गीकृत किया है।[9]

1.संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति

यह संस्कृति पर मरावादी समाजों में पाई जाती है जहां विशेषीकरण कम होता है और वहां संचालकों को राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक भूमिकाओं का एक साथ निर्वाह करना पड़ता है।[10] वे राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थाओं एवं राष्ट्रीय प्रश्नों एवं नीतियों के प्रति अनभिज्ञ रहते हैं तथा अपने आपको इन्हें प्रभावित करने योग्य नहीं समझते हैं।

संकुचित राजनीतिक संस्कृति का प्रमुख लथ्तव यह है कि इसके अन्तर्गत व्यक्तियों को अपनी राजनीतिक व्यवस्था और उसकी प्रकृति के बार में सम्पूर्ण ज्ञान नहीं होता। इसमें व्यक्ति का दृष्टिकोण अपने परिवार ग्राम अथवा जातिगत सीमाओं तक ही आबद्ध रहता है। उसके लिए अपनी ही आवश्यकतायें महत्वपूर्ण होती हैं तथा उसे अपने परिवार एवं जातिगत समुदाय की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में अधिक आनन्द मिलता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं के प्रयत्नों पर निर्भर नहीं करता बल्कि अपने परिवार तथा जातिगत समुदाय पर अधिक निर्भर करता है। स्वाभाविक है कि ऐसी संस्कृति अविकसित समाजों में पाई जाती हैं। एशिया, अफ्रीका के विकासशील देशों में ऐसी संस्कृति पाई जाती है। भारत में परम्परागत ग्रामीण समाजों, पिछड़े एवं जनजाति इलाकों तथा सम्प्रदायिक कट्टरवादियों में ऐसे व्यक्तियों को देखा जा सकता है।

2.प्रजाभावी संस्कृति

इस प्रकार की संस्कृति में नागरिक राजनीतिक व्यवस्था तथा उसके निर्गतों के बारे में पूर्णतया अवगत रहते हैं तथा इनका समर्थन या विरोध करते हैं, परन्तु उन्हें संस्थाओं के संचालन की अधिक जानकारी नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि इस प्रकार की संस्कृति में निवेशन संस्थायें अत्यन्त दुर्बल होती हैं तथा नागरिकों के जीवन पर निर्गत कार्यो का अधिक प्रभाव होता है।

प्रजाभावी संस्कृति में नागरिकों में राजनीतिक निष्क्रीयता पाई जाती है। वे निवेश सम्बन्धी संरचनाओं में भाग नहीं लेते तथा एक प्रकार से उनके अन्दर राजनीतिक विचारों को निर्देशित करने की क्षमता ही नहीं होती न ही उत्साह रहता। उनकी स्थिति ''कोऊ नृप होय हमहि का हानि'' सदृश होती है वे स्थापित राजनीतिक व्यवस्था को ही स्वीकार करते हुए उनके अनुरूप अपने को ढालने का प्रयत्न करते हैं। प्रो0 मुखोपाध्याय के अनुसार प्रजाभावी राजनीतिक संस्कृति पूर्वी यूरोप के राज्यों में तथा एशिया एवं अफ्रीका के अधिकांश नव स्वतंत्रता प्राप्त देशों में पाई जाती है।

3.सहभागी संस्कृति

इस प्रकार की संस्कृति में नागरिक राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार की संस्कृति विकसित समाजों में अधिक पाई जाती है। नागरिक राजनीतिक वस्तुओं के बारे में अधिक

अवगत एंव अर्न्तग्रस्त होते हैं। डेविस एवं लेविस के अनुसार, ''हर स्तर पर व्यवस्था का मूल्यांकन एवं उसकी आलोचना की जाती है और आम तौर पर इसे विवेकपूर्ण समझकर स्वीकार किया जाता है कि राजनीतिक क्रिया कलाप को समाज के भीतर व्यक्तियों तथा वर्गो की घनिष्ठ संवीत्रा के अधीन होना चाहिए''11 अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस तथा स्कैण्डिनेवियन देशों में सहभागी संस्कृति की मात्रा अत्यधिक देखने को मिलती है।

राजनीतिक संस्कृति की उपर्युक्त तीनों श्रेणियाँ अपने आदर्श रूप में बहुत कम पाई जाती है। इन तीनों का मिश्रित रूप ही अधिकतर पाया जाता है। आमण्ड तथा वर्षा ने मिश्रित श्रेणियों की राजनीतिक संस्कृतियों के निम्न प्रकार बतलाये हैं:-

11.9 आमण्ड एवं वर्बा का राजनीतिक संस्कृति का विश्लेषण

राजनीतिक संस्कृति

संकुचित संस्कृति (Parochial Culture) — व्यक्ति की रुचि केवल स्थानीय या पारंपरिक मुद्दों तक सीमित

प्रजाभावी संस्कृति (Subject Culture) — नागरिक सरकार के नियमों से अवगत लेकिन निष्क्रिय भूमिका

सहभागी संस्कृति (Participant Culture) — नागरिक सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेता है

▼

मिश्रित राजनीतिक संस्कृति
(Civic Culture / मिश्रण)

सभी तीनों प्रकार के तत्वों का संतुलन (Parochial + Subject + Participant)

लोकतंत्र के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है

1.संकुचित प्रजाभावी संस्कृति

ऐसी संकुचित संस्कृतियों में धीरे-धीरे विशिष्ट सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिष्ठा विकसित होने लगती है। ऐसी व्यवस्थाओं में राजनीतिक दल एवं प्रभाव समूह भी अविकसित अवस्था में होते हैं। राजतंत्र के निर्माण के चरणों में इस प्रकार की संस्कृति पाई जाती है।

2.प्रजाभावी सहभागी संस्कृति

इस प्रकार की संस्कृति में नागरिक राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय एवं निष्क्रीय भागों में विभाजित होते हैं। राजनीतिक दृष्टि से जागरूक एवं सक्रिय नागरिक राजनीतिक विषयों के प्रति संवेदनशील होते हैं तथा उनमें राजनीतिक कुशलता भी अत्यधिक होती है। 19वीं सदी के पश्चात् फ्रांस, जर्मनी तथा इटली आदि देशों में इस प्रकार की संस्कृति पाई जाती है।

3.संकुचित सहभागी

इस प्रकार की संस्कृति में निवेशन संस्थायें तो प्रायः संकीर्ण होती हैं, परन्तु राष्ट्रीय निर्गत संस्थायें काफी विकसित होती है। नागरिकों को जन प्रदर्शनों राष्ट्रीय सन्देशों तथा राष्ट्रीय चुनावों में राजनीतिक सहभागी के लिए अधिकाधिक प्रेरित किया जाता है। फिर भी निवेश एवं निर्गत संगठन स्थानीय एवं संकुचित हितों द्वारा प्रभावित होते हैं, जिससे राष्ट्रीय सहभागी अपयवों के रूप में इनके निष्पादन में बाधा पहुँचती है। इस प्रकार की संस्कृति विकासशील देशों के सैन्यबलों, विभागीय तंत्र तथा राजनीतिक दलों में देखी जा सकती है।

4.नागरिक संस्कृति

इस संस्कृति में तीनों प्रकार की संस्कृतियों के विशुद्ध लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकार की संस्कृति में नागरिकों में राजनीतिक प्रभाविता की भावना तथा अन्य लोगों पर विश्वार करने की भावना होती है। इस संस्कृति में नागरिकों के पास प्रभाव का भण्डार होता है तथा वे सक्रिय रूप से राजनीतिक जीवन तथा गैर राजनीति संस्थाओं में पर्याप्त रूप से रूचि रखते हैं। इसमें प्रजाभावी तथा सहभागी तत्व समान रूप से सक्रिय रहते हैं। इस प्रकार की संस्कृति काफी सीमा तक ब्रिटेन एवं अमेरिका में पायी जाती है।

आमण्ड के अनुसार राजनीतिक संस्कृतियाँ एवं संरचनायें कभी स्थायी नहीं होती। किसी भी समाज में संस्कृति का निर्धारण विभिन्न तत्वों से होता है और इनमें परिस्थितियों के अनुरूप पर्याप्त अन्तर पाया जाता है।

आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्थाओं का प्रारूपात्मक चित्रण भी प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है:-

1. आंग्ल-अमरीकी राजव्यवस्था

ब्रिटेन तथा अमेरिका जैसे विकसित देशों में इसी प्रकार की संस्कृति पाई जाती है। यह संस्कृति समरसतापूर्ण है। इसमें आधुनिक परम्परागत तथा धर्मनिरपेक्ष तत्वों का पूर्ण समन्वय हो गया है। यह

बहूमूल्य, सजातीय, विवेक सम्मत तथा प्रयोगात्मक है और उसे प्राप्त करने के बारे में राजनीतिक साध्यों एवं साधनों के बारे में आम सहमति पाई जाती है।

यहाँ सत्ता तथा प्रभाव का विसरण होता है। अतएव वहाँ नियंत्रण एवं सन्तुलन का पूर्ण एवं सुचारू ढंग से कार्य करने वाली व्यवस्था पाई जाती है। इसमें समाज का बहुवादी स्वरूप होता है। इनमें विभिन्न भूमिकाओं का व्यक्तीकरण होता है एवं उनकी व्यवस्था बनी रहती है। अलग-अलग संस्थायें अलग-अलग कार्य करती है। वे अन्य संस्थाओं के कार्य भी कर सकती हैं जिसके परिणाम स्वरूप प्रशासक एक सिथति में विधायक तथा दूसरी में न्याय निर्णायक बन जाते हैं अथवा नौकरशाह एक लिहाज से विधायक और दूसरे लिहाज से न्याय-निर्णायक हो जाते हैं और इस तरह उनकी भूमिकाओं में भी परिवर्तन होता रहता है।

यहाँ कभी-कभी दलीय व्यक्तियों को भी मान्यता रहती है। तथा विभिन्न प्रकार के दबाव समूह पाये जाते हैं।

2.महाद्वीपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था

इस प्रकार की रजनीतिक व्यवस्थायें फ्रांस, इटली, स्वीडन, नार्वे, जर्मनी इत्यादि यूरोप के अपेक्षाकृत कम विकसित देशों में पाई जाती हैं। यहाँ समाज के विभिन्न वर्ग सांस्कृतिक विकास के विभिन्न प्रतिमानों की स्थापना करते हैं। यहाँ पर कई वर्ग अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं जिससे वहाँ राजनीतिक संस्कृति खंडित हो जाती है। परिणाम स्वरूप यहाँ पर राजनैतिक संस्कृति में तनाव पाया जाता है और उसका विकास असन्तुलित होता है। यहाँ राजनैतिक उपसंस्कृतियों में उग्रता पाई जाती है। प्रत्येक राजनीतिक उपसंस्कृति भूमिकाओं की अलग उपव्यवस्था का विकास कर लेती है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न संस्कृतियों सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बन जाती है। यहाँ राजनैतिक समस्याओं में विभिन्न उपसंस्कृतियों तथा राजनीतिक व्यवस्था के अस्तित्व का सम्बन्ध होता है। साथ ही विचारधारा के स्तरों व राजनैतिक संगठनों में भी तनाव होता है। राजनैतिक नेताओं का संसद एवं चुनावों के प्रति अधिक सम्मान नहीं है। वे रंगमंच पर आदान-प्रदान, समझौते तथा एक सन्तोषप्रद विनिश्चय करने हेतु नहीं बल्कि उपदेश देने, चेतावनी देने, परिवर्तन करने तथा राजनीतिक निर्गतों के आदान-प्रदान करने हेतु आते हैं साथ ही नीति-निर्माण में नौकरशाही का प्रभुत्व मिलता है।

3. अपश्चिमी या औद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था

इस श्रेणी में वे देश आते हैं जो लम्बे समय तक विदेशी नियंत्रण रहने के उपरान्त स्वतंत्र हुए हैं। ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में शासक का राजनीतिक संस्कृति को शासितों की राजनीतिक संस्कृति पर आरेपित कर दिया जाता है। यहाँ सत्ता की व्यवस्था करिश्मा के रूप में उभरती है। यही कारण है कि अनिश्चय एवं अस्थिरता अवश्यभावी होता है। राजनीतिक हित प्रायः अप्रत्यक्ष होते हैं। राजनीतिक

नेतृत्व पुराने एवं नये मूल्यों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं तथा उस व्यवस्था को औचित्यपूर्णता प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। वहाँ राजनीतिक भूमिकाओं की संरचना मिश्रित पाई जाती है। विशेष परम्पराओं का सम्मान एवं पश्चिमी लोकतंत्र के तरीकों का अनुसरण करते हुए एक विशेष परिवार अथवा विशेष जाति सत्तारूढ़ रह सकती है।

4.सर्वाधिकारवादी राजनैतिक व्यवस्थायें

यहाँ राजनीतिक संस्कृति की एकता अत्यन्त ही सामंजस्यपूर्ण कही जा सकती है। इनकी औचित्यपूर्णता की स्वीकार्यता को कृत्रिम तरीके से तैयार किया जाता है। यहाँ ऐच्छिक संस्थायें नहीं पायी जाती तथा संचार पर केन्द्र का नियंत्रण होता है। राजव्यवस्था मतैक्य एवं मतभेदविहीन होती है। शान्ति का सर्वकेन्द्रण होता है जो प्राधिकार के विसरण के सिद्धान्त को नकारता है। सत्तारूढ़ व्यक्ति नौकरशाही, पुलिस एवं सेना के समर्थन पर निर्भर करते हैं। फासीवादी इटली नाजीवादी जर्मनी तथा रूस एवं चीन की साम्यवादी व्यवस्था इसका उदाहरण हैं।

परन्तु आमण्ड के उक्त संरचनात्मक वर्गीकरण को अनेक राजनीतिशास्त्रियों ने अस्वीकार कर दिया है। उसके अनुसार राजनीतिक संस्कृति राजव्यवस्था के अधीन न रहते हुए अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है तथा राजव्यवस्था की नीतियों, निर्णयों एवं कार्यकारी क्षमता को निरन्तर प्रभाव में रखती है। डॉ0 एस पी0 वर्मा के अनुसार राजनीतिक संस्कृति में न केवल राजनीति के प्रति अभिवृत्तियाँ, राजनीतिक मूल्य, विचारधारायें, राष्ट्रीय चरित्र तथा सांस्कृतिक आचारतत्व सम्मिलित हैं बल्कि उसमें राजनीति की शैली विधियाँ एवं सारवन रूप भी आते हैं। एस0 ई0 फाइनर ने चार संवर्गो में विभिन्न राजसंस्कृतियों को रखा है[13]

1.परिपक्व, 2.विकसित, 3.निम्न, 4.पूर्व फ्रांसीसी क्रान्ति समस्तरीय

मूल्यांकन

अतएव यह एक सर्वविदित तथ्य है कि राजनीतिक संस्कृति ने आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन में क्रान्तिकारी योगदान दिया है। आमण्ड एवं पावेल के अनुसार, ‘‘यह हमें मूल्यवान संकल्पनात्मक उपकरण प्रदान करता है जिसकी सहायता से राजनीतिक सिद्धान्त में सूक्ष्म वृहद की खाई को बाटा जा सकता है‘‘

डा0 एस0 पी0 वर्मा ने इस उपागम के बारे में आग्रह करके राजनीति विज्ञान को एक अधिक पूर्ण सामाजिक विज्ञान बना दिया है।

1.इसने संयुक्त सूक्ष्म-वृहद उपगम के बारे में आग्रह करके राजनीति विज्ञान को एक अधिक पूर्ण सामाजिक विज्ञान बना दिया है।

2.इसने हमारा ध्यान व्यक्ति से भिन्न गतिशील सामूहिक अस्तित्व के रूप में राजनीतिक समुदाय या समाज के अध्ययन पर क्रेन्द्रित किया है। इस प्रकार इसने सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को हमारे अध्ययन का विषय बना दिया है।

3.इसने राजनीतिशास्त्रियों को उन सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया है जो किसी देश की राजनीतिक संस्कृति को व्यापक आकार देने के लिए उत्तरदायी हैं।

4.इसके द्वारा मानव व्यवहार का अध्ययन के लिए उन कारकों का प्रयोग किया गया है जिसके माध्यम से अनुभव प्रधान अनुसंधान किया जा सकता है।

5.इसके द्वारा हमें राजनीतिक विकास तथा राजनीतिक क्षय की दशाओं का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

फिर भी राजनीतिक संस्कृत उपागम की कुछ सीमाएँ हैं:-

1.अनेक विद्वानों का विचार है कि राजनीतिक संस्कृति के सर्वमान्य संकेतक निर्धारित नहीं हो पाये हैं, इसलिए इसकी अध्ययन पद्धतियों पर एकमतता का आभाव पाया जाता है। वस्तुतः यह पुराने विचारों को ही नया नाम देने का प्रयास है।

2.राजनीतिक संस्कृति उपागम पर भी अनुदार, प्रतिक्रियावादी तथा प्रगति विरोधी होने का आपेक्ष लगाया जाता है। आमण्ड एवं पावेल का भी मानना है कि इस उपागम को मानव-व्यवहार का सही मापक यंत्र नहीं समझा जा सकता। [16] कई बार मानव व्यवहार का पूर्वानुमान करना सम्भव नहीं हो पाता है। अतएव यह उपागम अपने आप में अत्यन्त सीमित हो जाता है।

3.इस उपागम से राजनीतिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं दिखाई देता। इस उपागम के समर्थकों ने जिन-जिन परिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है वे अस्पष्ट एवं अपरिशुद्ध हैं जिससे तुलनात्मक राजनीति के छात्रों को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः यह उपागम राजनीतिक व्यवस्थाओं का वर्गीकरण करने में सहायक नहीं है।

4.राजनीतिक संस्कृति निरन्तर अधिक जटिल, गहन एवं विकसित होती जाती है तथा उसकी संस्थाओं एवं संरचनाओं का निरन्तर विकास होता है। ऐसी स्थिति में सिद्धान्त निर्माण का कार्य बहुत अधिक कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्रायः राजनीतिक संस्कृति राजनैतिक संरचनाओं की निर्दिष्ट तथा निर्धारक तत्व भी मानी जाती है तथा साथ ही साथ सांस्कृतिक मूल्यों का परिणाम भी है। यह निश्चित रूप से मौलिक तार्किक दुर्बलता है।

5.राज संस्कृति का विश्लेषण करने में कठिन समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब शासकों एवं शासितों की राजनीतिक संस्कृति में पर्याप्त अन्तर हो। लुसियन डब्ल्यू पाई का मानना है कि किसी भी समाज में शासकों एवं जनता की राजसंस्कृतियों में पर्याप्त अन्तर नहीं पाया जाता है।[17] परन्तु जैसा कि दयाकृष्ण जी ने अपनी पुस्तक में सवाल उठाया है कि इनमें किस राजनैतिक संस्कृति की राजनीतिक विकास के लिए अधिक संगत समझा जाये।[18] वास्तव में यह एक गम्भीर एवं असमंजसपूर्ण अवस्था हैं

अभ्यास प्रश्न

1.'Civic Culture'पुस्तक किसने लिखा है ?

11.10 सारांश

उक्त अध्ययन के आधार पर कह सकते हैं कि राजनीतिक संस्कृति की धारणा का बहुत अधिक महत्व है। जैसा कि डेविस एवं लेबिस ने कहा भी है, ''राजनीतिक संस्कृति की संकल्पना उस कठोरता एवं विशदता को प्राप्त करने का प्रयास है जो अन्य संकल्पनाओं में नहीं है।'[19] वस्तुतः राजनीतिक संस्कृतिक राजनीतिक क्षेत्र को वह दिशा प्रदान करती है जिसके द्वारा औचित्यपूर्णता सम्प्रभुता, राष्ट्रवाद तथा विधि शासन जैसी अवधारणाओं का विश्लेषण किया जा सकता है। एरिक रोवे के शब्दों में ''राजनीतिक व्यवहार का आधार राजनीतिक संस्कृति में होता है।''[20] लसियन डब्ल्यू पाई के शब्दों में, ''राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा एक उपयोगी कड़ी प्रदान करती है जिसके द्वारा हम समाजिक आर्थिक तत्वों तथा राजनीतिक कार्य निष्पादन के मध्य एक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।'[21]

राजनीतिक संस्कृति के महत्व को देखकर राजनीति वैज्ञानिक उससे सम्बद्ध एक सिद्धान्त के विकास के प्रयास में लगे हुए हैं। आमण्ड, बर्वा पाई, स्काट, रोज, बार्धून इत्यादि विद्वानों ने इस दिशा में प्रमाणित शोध प्रस्तुत किये हैं।

इनमें सर्वाधिक उपयोगी लूसियन डब्ल्यू पाई तथा सिडनी वर्बा द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'पालिटिकल कल्चर एण्ड पॉलिटिकल डेवलपमेंट' महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में इंग्लैण्ड, जापान, जर्मनी, टर्की, भारत, इथिपोपिया, इटली, मैक्सिको, मिश्र तथा सोवियत संघ से सम्बन्धित विभिन्न निबन्ध संग्रहीत हैं। अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थों में रजनी कोठारी की पुस्तक 'Civic Culture' प्रमुख है। डॉ0 एस0 पी0 वर्मा ने भी अपनी पुस्तक ''मार्डन पॉलिटिकल थ्योरी'' में राज संस्कृति के विविध पक्षों का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है।

11.11 शब्दावली

राजनीतिक संस्कृति -राजव्यवस्था के प्रति अभिमुखन को राजनीतिक संस्कृति कहा जाता है।

11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रजनी कोठारी

11.13 संदर्भ ग्रंथ

1." A Political Culture is composed of the attitudes beliefs, emotions and value of societies to the political system and to the political issues,"-A.R. Ball, Modern Politics and Gout, 1971, P.56

2- "It is defined as the pattern of individual attitudes and orientations towards politics against the principles of political system."- Almond and Powell Comparative Politics. A Development Approach, 1966 p. 50

3-It is collection of " all attitudes beliefs and sentiments that give order and meaning to a political process and that provide underbied assumptions and rules that govern hehavior in the political system."- LucianW. Pye Aspect of Political Development, p. 104

4- Heinz Eulau, Behavioural Persuation in Politics, 1964p. 81

5- Lucian Pye.& Sidney, Verba Political Culture and Political Development, 1965, p. 105

6-" Political Culture is thus the manifestation in aggregate form of the psychological and subjective dimensions of politics." - Lucian W. Pye. Aspects of Political Development, p. 108

7-A.R. Ball, Modern Politics and Govt., p. 58

8- Ibid. p.59

9-G.Almond & Sidney Verba, The Civic Culture, p.17

10-Davies & Levies, Models of Political System, p. 115

11- Davies and Levies, Ibid. p. 115

12- S.P. Verma, Modern Political Theory, p. 292

13- S.E. Fiuer, Comparative Govt. 1970, pp.537-40

14- Almond & Powell, Op. Cit. p. 17

15- S.P. verma, Op. Cit, pp. 296-97

16-Almond & Powell, Op. Cit, p. 51

17- Lucian Pye, Op. cit. p. 89.

18-Daya Krishna, Political Development- A Critical Perspective, 1979, p.151

19-Daaviers & Lenis, Op. Cit. p. 114

20- Eric Rowe, Modern Politics, p. 12

21- Lucian W. Pye, Op. Cit. p. 18

11.14 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल
2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई
3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा
4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन
5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

11.5 निबंधात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक संस्कृति पर निबंध लिखिए |

इकाई 12 राजनीतिक संचार

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 कार्ल डायश तथा संचार सिद्धांत

12.4 राजनीतिक संचार – अर्थ एवं स्वरुप

12.5 राजनीतिक संचार का कार्यकारी दृष्टिकोण

12.6 राजनीतिक संचार संचालन के तत्व

12.7आधुनिक संचार व्यवस्था

12.8 आलोचना

12.9 संचार सिद्धांत की उपयोगिता एवं महत्व

12.10 सारांश

12.11 शब्दावली

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.13 संदर्भ ग्रंथ

122.14 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

12.15 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

राजनीतिक व्यवस्था में संचार का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे व्यवस्था की गतिशीलता बनी रहती है। राजनीतिक संचार शासकों एवं शासितों के मध्य संपर्क सूत्र है। राजनीतिक संचार की संजीवता किसी भी राजनीति व्यवस्था की स्थिरता का सूचक है। इसके फलस्वरूप व्यवस्था में तनाव की स्थिति पैदा नहीं होती तथा यदि होती भी है तो वह उग्र रूप धारण नहीं कर पाती। वास्तव में मानव के समस्त जीवन में संचार एक ऐसा व्यापाक तत्व हे जो सामाजिक कार्यों के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है। राजनीतिक जीवन में संचार के महत्व पर बल देते हुए कार्ल डायश ने अपनी पुस्तक "The Nerves of Government" में सुझाव दिया है कि संचार के दृष्टिकोण से समस्त राजनीति शास्त्र पर पुन: विचार होना चाहिये। राजनीति का उन तत्वों के आधार पर अध्ययन होना चाहिये जो संचार पैदा करते है तथा उनका प्रभाव निश्चित करते हैं |इस इकाई में राजनीतिक संचार के विविध पक्षों का अध्ययन करेंगे |

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

1.कार्ल डायश तथा संचार सिद्धांत के बारे जान सकेंगे

2.राजनीतिक संचार – अर्थ एवं स्वरुप के सम्बन्ध में जान सकेंगे

3.राजनीतिक संचार संचालन के तत्व के सम्बन्ध में जान सकेंगे

4.आधुनिक संचार व्यवस्था ,संचार सिद्धांत की उपयोगिता एवं महत्व के बारे में जान सकेंगे

12.3 कार्ल डायश तथा संचार सिद्धांत

कार्ल डायश राजनीति विज्ञान में संचार क्रांति लाने वाले प्रमुख विद्वान रहे हैं। उन्होंने संचार सिद्धान्त तथा संचार नियंत्रण विज्ञान के माध्यम से राजनैतिक विश्लेषण के लिए एक नये उपागम का प्रयोग किया है। वह संचार नियंत्रण विज्ञान की वैज्ञानिक धारणाओं का प्रयोग करके प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों में एकता स्थापित करना चाहते हैं। वे डेविड ईस्टन के समाज ही राज व्यवस्था की जीवन प्रक्रियाओं ढूँढने तथा उनके लक्ष्य निर्धारित करते हैं। दूसरी ओर उनकी रूचि राजव्यवस्था के संतुलन एवं अस्तित्व निर्धारित तक ही सीमिति नहीं रहती बल्कि उसकी वृद्धि एवं परिवर्तनों की ओर भी उनकी दृष्टि रहती है। उनका लक्ष्य राजनीति में भौतिक बल या शक्ति के महत्व को भी सीमित करना है। यहॉ पर यह बताना पर्याप्त होगा कि संचार सिद्धान्त का लक्ष्य निर्णय प्रक्रिया पर अपना ध्यान केन्द्रित करना है न कि निणयों के वास्तविक परिणामों पर।

संचार नियंत्रण विज्ञान (Cylemetics) डायश के संचार सिद्धान्त का मूलाधार है। इसे एक ऐसा सिद्धान्त एवं तकनीक माना गया है जो विभिन्न व्यवस्थाओं का इस दृष्टि से अध्ययन करता है कि वे अपने जगत का किस प्रकार नियंत्रण करती हैं नोबर्ट वीनर के अनुसार संचार नियंत्रण विज्ञान उन प्रणालियों से सम्बद्ध है जिनके द्वारा कतिपय संयत्र प्रतिसम्भरण के माध्यम से अपने को बनाये रखते हैं। इस विज्ञान का प्रयोग राजनीति में कार्यकुशलता लाने के लिए किया जा सकता है। फ्रेंच विद्वान डी0 डुर्बले ने कहा है कि ये शासक मशीनें हमारी परम्परागत राजनीतिक संस्थाओं तथा राजनीतिज्ञों की कमियों को दूर कर देंगी।

डॉ0 एस0 पी0 वर्मा ने अपनी पुस्तक "Modern Political Theory" में कार्ल डायश के संचार सिद्धान्त की विस्तार से चर्चा की है। उनके अनुसार कार्ल डायश अपने अपने संचार सिद्धान्त का आरम्भ संचार अभियंत्रण तथा शक्ति अभियंत्रण में अन्तर करते हुए करते हैं। शक्ति अभियंत्रण के अर्न्तगत परिवर्तन संचालित ऊर्जा के समानुपात में होता है। जबकि संचार अभियंत्रण में परिवर्तन सूचनाओं के संप्रेक्षण पर आधारित होता जो संचालित ऊर्जा के समानुपात से पूर्णतया तालमेल नहीं रखता। यह सत्य है शक्ति के माध्यम से परिवर्तन की गति मिलती है परन्तु सूचना के माध्यम से किया गया परिवर्तन निश्चित बिन्दुओं में परिवर्तन करने वाला होता है जिसका लक्ष्य राजनीतिक व्यवस्था में दीर्घकालिक योजनाओं से होता है। यही कारण है कि कार्ल डायश को राजनीतिक शक्ति का आन्तरिक स्त्रोत कहता है। उसके अनुसार सरकार एक प्रकार का मार्ग निर्देशन है न कि शक्ति का प्रयोग।

डायश राजनीति एवं शासन का सार राजनीति विज्ञान का नया स्वरूप कतिपय लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर जाने वाली मानवीय प्रयासों की मार्ग परिवर्तनकारी तथा समन्वयकारी प्रतिक्रियाओं को मानता है। ये समस्त प्रतिक्रियायें विनिश्चय परिधि के दायरे में कार्य करती हैं जिसकी मूल इकाई सूचना प्रवाह है जो दो प्रकार से ज्ञात किया जा सकता हैं –

(अ) समस्त व्यवस्था में वास्तविक सूचनाओं के प्रवाह के रूप में।

(आ) इन सूचना प्रवाहों के रूप को ढालने वाली अनेक संरचनाओं के रूप में

कार्ल डायश के संचार सिद्धान्त के चार भाग हैं –

(1) परिचालनात्मक संरचना

(2) सूचना प्रवाह या सूचना सम्बन्धी प्रतिक्रियायें

(3) विनिश्चय सम्बन्धी प्रतिक्रियायें

(4) प्रतिसम्भरण प्रक्रिया

प्रथम भाग संक्रियात्मक संरचनाओं से सम्बन्धित है। प्रत्येक राजनीतिक संगठन में उसकी संग्राहक व्यवस्था घरेलू तथा विदेशी व्यवस्थाओं से सूचना प्राप्त करती है। सूचना प्राप्ति के अतिरिक्त उसे अन्य कार्य भी करना पड़ता है जैसे सूचना क्षेत्र का निर्धारण, सूचना क चयन तथा प्राप्त सूचना का विश्लेषण। निर्णय निर्माण मशीन की सूचना की देखभाल तथा सूचना के अनुसार कार्य कुछ ऐसी संस्थायें करती हैं जिन्हें कम्प्यूटर में याददाश्त, मूल्य निर्धारण तथा वास्तविक निर्णय केन्द्र करते हैं। मूल्य निर्धारण क्रिया, आवश्यकताओं एवं मान्यताओं के अनुसार वरीयता निर्धारित करती है तथा वास्तविक निर्णय मशीन निर्णय लेने के पश्चात इस सूचना को उस इकाई में पुन: भेज देती है।

दूसरा भाग सूचना के प्रवाहों तथा प्रक्रियाओं से सम्बद्ध है। इसमें मुख्य अवधारणायें मार्ग, भार तथा भार तथा भार क्षमता से सम्बद्ध होती हैं। भार का अर्थ है निर्धारित समय से पूर्व उपलब्ध सूचना, भार क्षमता से तात्पर्य है उपलब्ध सूचना मार्गों की क्षमता तथा प्रकार। मार्ग सूचनाओं को लाने ले जाने वाली संरचनाओं या सूचना प्रक्रियाओं के अनुक्रम को कहते हैं। भार समय एवं मात्रा की दृष्टि से परिवर्तन होता रहता है। भार क्षमता अनुक्रियाशीलत, निष्ठा, पृष्ठ भूमिगत शोर तथा विद्रूपता आदि कारकों से घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती है। यह शुद्धता संचार साधनों में उत्पन्न विभिन्न प्रकार के उपखण्डों एवं ध्वनियों से उत्पन्न होती हैं। इसके उपरान्त अनुसरण क्रिया आरम्भ होती है जिससे तात्पर्य प्राप्त सूचना को भूतकालीन अनुभव के आधार पर विश्लेषित किया जाना है। इन सब क्रियाओं को मिलाकर एक मिली जुली क्षमता कहा जाता है जो राजनीतिक व्यवस्था की कार्यविधि का वर्णन करती है। यंग के अनुसार '' यह एक ऐसी क्षमता है जो विभिन्न प्रकार की असीमित सूचनाओं को सुनिश्चित परिणामों में परिवर्तित कर देती है ताकि राजनीतिक पद्धति के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।''

तीसरा भाग विभिन्न विनिश्चय प्रक्रियाओं के परिणामों से सम्बन्धित है। इस स्थान पर प्रतिसम्भरण एवं प्रातसम्भरण क्रिया के सम्बन्ध में विचार उत्पन्न हो जाते हैं। डायच के अनुसार यहॉ पर प्रातिसम्भरण से तात्पर्य संचार साधनों का वह जाल है जो किसी सूचना प्राप्ति पर कार्य करना आरम्भ कर देता है तथा इसमें वे परिणाम सम्मिलित हैं जो उस प्राप्त सूचना को तथा उसके आधार पर व्यवहार में परिवर्तन कर देते हैं। परन्तु सिन्डर केवल उन सूचनाओं तथा पद्धति की स्थिति तक ही प्रतिसम्भरण को सीमित करता है जिसके माध्यम से यह सूचनायें पुन: पद्धति में सम्मिलित हो जाती हैं। वे यह भी कहते हैं कि इसमें सूचनायें निरन्तर आती रहती है इसलिए उसके माध्यम से निर्णयकों द्वारा अपने कार्यों के प्रति औचित्यता का ज्ञान प्राप्त होता रहता है।

चौथा भाग प्रतिसम्भरण – प्रत्येक राजव्यवस्था में उसके नियंत्रण तथा मार्ग परिवर्तन का अत्यधिक महत्व होता है। यह कार्य संचार की एक विशिष्ट प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है जिसे हम प्रतिसम्भरण प्रक्रिया कहते हैं। व्यवस्था में संचार के माध्यम से नियंत्रण तथा मार्ग परिवर्तन करने के लिए प्रतिसम्भरण प्रक्रियाओं का इसी कारण महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये प्रक्रियायें दो प्रकार की होती हैं- सकारात्मक एवं नकारात्मक। सकारात्मक अथवा प्रवर्धनशील प्रतिसम्भर उस राजनीतिक क्रिया को कहते हैं जो केवल पूर्व में लिये गये निर्णयों का सूचनाओं के आधार पर विस्तार करें। इससे पद्धति में खिंचाव पैदा हो जाता है और यह सम्भव है कि निर्णय लेने की पद्धति में क्रान्तिकारी तनाव के कारण कोई गड़बड़ी पैदा हो जाये। 1857 में गाय, सुअर चर्बी के कारतूसों की सूचना इसका एक अच्छा उदाहरण है, यदि ब्रिटिश शासन के सथायित्व को लक्ष्य माना जाये। लक्ष्य ज्ञात होने पर ही किसी सूचना को नकारात्मक या सकारात्मक माना जा सकता है। नकारात्मक प्रातिसम्भरण लिये गये निर्णय के परिणामस्वरूप वे सूचनायें हैं जिनके माध्यम से पद्धति के व्यवहार की दिशा में उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से उचित परिवर्तन आ जाये। यह अवधारणा महत्वपूर्ण नियामकीय नियंत्रण से सम्बन्धित है। इससे चार अवधारणा महत्वपूर्ण नियामकीय नियंत्रण से सम्बन्धित है। इससे चार अवधारणायें भार (Lode) पश्चता (Lag) लाभ (Gain) तथा अग्रता जुड़ी हुई है। भार का तात्पर्य है निर्देशित समय पर सूचनाओं के लक्ष्य के संदर्भ में विस्तार एवं गति की दृष्टि से समस्त सूचनाओं का अन्तर्ग्रहण। पाश्चता से तात्पर्य है उस विलम्ब से है जो विनिश्चयों तथा क्रियाओं के परिणामों के विषय में सूचनाओं के प्रतिवेदन या अनुसरण से सम्बन्धित है। लाभ पद्धति की सूचना से सम्बन्धित, सूचना प्राप्ति के तुरन्त पश्चात निर्णय लेने की क्षमता को कहते हैं। अग्रता उस क्षमता को कहते हैं जो भविष्य के परिणामों के सम्बन्ध में निर्णय ले सके ताकि आने वाली कठिनाइयों का मुकाबला किया जा सके। इस उपागम को मानने वाले प्राय: यह मानते हैं कि राजनीतिक व्यवस्था के सभी कार्य संचार साधनों के द्वारा ही किये जाते हैं। आमण्ड ने अपनी 'Politics of the Developing Aveas' नामक पुस्तक में लिखा है कि संचार साधनों की तुलना मानव शरीर में रक्त संचार से की जा सकती है। निस्संदेह खून पद्धति को शक्ति नहीं देता है परन्तु जो खून में है वह पद्धति को शक्ति देता है। खून एक माध्यम है जो नाडियों के माध्यम से हृदय तक पहुचता है तथा निर्गतों के रूप में उन भागों के स्थान पर पुन: पद्धति में शामिल हो जाता है।

डायश के राजनीति के प्रति विचार बड़े नवीन तथा विचित्र प्रतीत होते हैं। उन्होंने न केवल राजनीति को नया अर्थ दिया बल्कि सरकार एवं राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी

नया दृष्टिकोण दिया । उसके समस्त राजनीतिक विचार में एक विशिष्ट प्रकार की गतिशीलता है जो संचार सिद्धान्त को अत्यधिक व्यवहारिक एवं संतुलित बना देती है।

12.4 राजनीतिक संचार – अर्थ एवं स्वरुप

संचार शब्द का प्रयोग संकीर्ण अथवा विशिष्ट अथवा व्यापक अथवा सामान्य अर्थो में किया जाता है। वीवर के अनुसार संचार के अन्तर्गत वे सभी प्रक्रियायें शामिल की गई है जिनसे एक मानस अन्यों को प्रभावित करता है।

व्यापक अर्थ में संचार शब्द के अन्तर्गत मौखिक कथन के साथ-साथ मानव व्यवहार सम्मिलित है । व्यापकतम अर्थों में संचार पद को उन तरीकों के सन्दर्भ में प्रयोग किया जा सकता है जिसमें भौतिक पर्यावरण केन्द्रीय स्नायुतंत्र में संकेतों को उत्तेजित करता है । इस अर्थ में जीव तथा पर्यावरण मिलकर एक पद्धति का निर्माण करते हैं- जीव पर्यावरण को प्रभावित करता है तथा पर्यावरण जीव को प्रभावित करता है।

राजनीतिक संचार को राजनीतिक संचार नियंत्रण पद्धति अथवा साइबरनेटिक्स के नाम से भी जाना जाता है । साइबरनेटिक्स मूलत: विभिन्न सादृश्यपूर्ण समष्टियों में सम्भावनाओं के अध्ययन के लिए सिद्धान्त एवं तकनीक का निकाय है तथा इन समष्टियों के नियंत्रण के लिए संदेशों के आदान-प्रदान का तरीका है।

यंग के अनुसार यह संप्रत्यय राजनीति तथा सरकार द्वारा मानवीय प्रयासों को किन्हीं निर्दिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संचालन तथा समन्वय की प्रक्रिया है।

संचार तथा राजनीतिक संचार दो विभिन्न अर्थ शब्द है जिनका राजनीति समाजशास्त्र में विभिन्न अर्थ होता है। संचार शब्द का सम्बन्ध समाचारों के प्रयास माध्यम से है। राजनीतिक संचार शब्द से आशय प्रेम, रेडियों, टेलीविजन इत्यादि से नहीं है, यद्यपि इनका राजनीतिक संचार के व्यापक अध्ययन से महत्वपूर्ण स्थान है।

राजनीतिक संचार से आशय राजनीतिक व्यवस्था के एक भाग से दूसरे भाग तक मॉगों एवं निर्णयों को पहुचाने की एक गतिशील क्रिया है। संचार व्यवस्था के विभिन्न भागों को परस्पर जोड़ता है तथा वर्तमान को अतीत एवं भविष्य के साथ सम्बन्धित करता है जिससे मॉगों के अनुसार नितियों का निर्माण किया जा सकें वस्तुत: नागरिकों एवं राजनीतिक नेतृत्व के मध्य संचार को राजनीतिक संचार कहते हैं।

राजनीतिक संचार इस बात पर बल देता है कि राजनीतिक व्यवस्था में सभी कार्य संचार के माध्यम से होते हैं। संचार की किसी व्यवस्था को संपोषित एवं विकसित करता है। संचार का वही महत्व है जो शरीर में रक्त संचालन का होता है। राजनीतिक व्यवस्था के सभी निवेश एवं निर्गत प्रकार्यों को संचार द्वारा किया जाता है। उदाहरणार्थ राजनीतिक दल एवं दबाव समूहों के नेता अननी मॉगों एवं नीतियों के सन्दर्भ में कार्य निष्पादन संचार के माध्यम से करते हैं। इस प्रकार संसद सदस्य अपने सहयोगियों तथा सरकारी मंत्रियों कि सूचना के आधार पर ही कानून निर्माण का कार्य संपन्न करते हैं।

12.5 राजनीतिक संचार का कार्यकारी दृष्टिकोण

राजनीतिक व्यवस्था में प्राय: समस्त कार्य संचार माध्यम से किये जाते हैं। इस रूप में प्राय: यह विचार उत्पन्न होता है कि राजनीति संचार एक प्राकर का राजनीतिक कार्य है। परन्तु आमण्ड का विचार है कि राजनीतिक शास्त्रियों को इस विचार से बचना चाहिये क्योंकि ऐसा न किया गया तो विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं आम क्रियाओं में अन्तर करने के बहुत बड़े साधन से हम वंचित रह जायेगें। तुलनात्मक राजनीति के संदर्भ में निवेशों के सम्बन्ध में निर्णयों का प्रभाव ज्ञान प्राप्ति का दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रो यंग राजनीतिक संचार उपागम के चार लक्षणों का वर्णन करते हैं जो निम्नलिखित हैं-

(1) यह उपागम निर्णय निर्माण तथा उसकी प्रक्रिया से सम्बन्धित है उसके परिणामों से नहीं। इसलिए यह उपागम सूचना की प्राप्ति के साधन संस्थाओं से सम्बन्धित है।

(2) यह उपागम विभिन्न प्रक्रियाओं तथा गतिविधियों से सम्बन्धित है। अत: वह इस रूप में निर्णय लेने की पद्धति में तथा उसकी क्रियाओं में व्यवस्था के अनुसार परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।

(3) विकासवादी क्रान्तियों की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में जो राजनीतिक विश्लेषण में सहायक सिद्ध होती है के सुलझाने में यह समर्थ है।

(4) यह व्यवस्था की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में उचित निर्णय लेने में समर्थ है।

राजनीतिक संचार उपागम विभिन्न प्रकार की पद्धतियों की तुलना करने में एक परिवर्त्य का कार्य करता है। उदाहरण के लिए लोकतांत्रिक पद्धति में विभिन्न संस्थाओं की भूमिका में अन्तर किया जा सकता है। इसमें सूचना के साधनों की विभिन्नता होती है जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक सभ्यता बहुमुखी हो जाती है। इसके विपरीत अधिनायक तंत्र में सत्ता के प्रयोजन के कारण अभिजन लोग संचार साधनों पर पूर्व नियंत्रण रखते है तथा वह

एक ही राजनीतिक सभ्यता का प्रचार करता है। आमण्ड के अनुसार आधुनिक राजनीतिक पद्धति तथा परम्परागत राजनीतिक पद्धति में मुख्य अन्तर यह है कि आधुनिक राजनीतिक पद्धति में संचार साधन विशिष्ट रूप से उपलब्ध है जबकि परंपरागत तथा अविकसित समाजों में संचार का कार्य ग्राम, समाज समूह इत्यादि करते हैं तथा विकासशील देशों में दोनों प्रकार के साधन उपलब्ध होते हैं परन्तु महत्व परम्परागत साधनों का ही होता है।

12.6 राजनीतिक संचार संचालन के तत्व

राजनीतिक संचार में चार प्रमुख तत्वों का योगदान होता है –

(1) **राजनीति का विचार भाग-** राजनीति के विचार भाग के अन्तर्गत राजनीति के विचारों, सिद्धान्तों, आदर्शों, लक्ष्यों, उद्देश्यों, नीतियों, योजनाओं इत्यादि के संचार का बोध होता है।

(2) **राजनीति का व्यवहारिक भाग** – इससे राजनीति के व्यवहारिक भाग का बोध होता है। जिसके अन्तर्गत विभिन्न विषयों का समावेश होता है। इससे विभिन्न कार्यो, कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों बोध होता है जिन्हें राजनीतिक पद्धति के आधार भूत तत्व रूप में स्वीकार किया जाता है।

(3) **राजनीति का शिकायत समाधान भाग** – इससे शिकायतों के समाधान अथवा लोगों के विचारों, भवनाओं तथा मॉगों में परिवर्तन का बोध होता है। इससे आम लोगों के विचारों, भावनाओं तथा मॉगों में परिवर्तन के फलस्वरूप अपनी शिकायतों को सम्बन्धित व्यक्तियों तक संचार किया जाता है। नागरिकों द्वारा अपनी मॉगों को आवेदनों, प्रातिवेदनों, स्मरण पत्रों शिकायतों, मतभेदों, प्रतिवादों एवं कलहों के माध्यम से सम्बद्ध पदाधिकारियों को संचालित किया जाता है। जिसके द्वारा सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों में परिवर्तन की मॉग उठाई जाती है तथा समस्याओं का समाधान किया जाता है।

(4) **राजनीति का निर्णयपरक भाग** – इससे उन विषयों में संचार का बोंध होता है जो राजनीति की मूल नीतियों के कुशल कार्य सम्पादक में सहायक है। इसके अन्तर्गत ऐसे प्रभावों का प्रयास किया जाता है जिसे विभिन्न प्रकारों से व्यक्त किया जाता है जैसे सही दृष्टिकोण, सही सम्मोहन, सही वातावरण, हौसला, उमंग पहल, साधन सम्पन्नता, धैर्य, शौर्य इत्यादि। राजनीतिक संरचना के संचालन का

शक्ति से घनिष्ट सम्बन्ध है। संचार के उद्देश्यों के लिए शक्ति की प्रकृति एवं मात्रा के उपयोग पर ही संचार की प्रकृति एवं मात्रा के उपयोग पर ही संचार की प्रकृति, शक्ति एवं प्रभाव अवलम्बित है। राजनीतिक संचार राजनीतिक सहभागिता के प्रभाव एवं मात्रा में वृद्धि करता है।यह भी देखा गया है कि राजनीतिक व्यक्तियों में गैर राजनीतिक व्यक्तियों की अपेक्षा राजनीतिक शक्ति एवं प्रभाव अधिक स्पष्ट होता है।

12.7 आधुनिक संचार व्यवस्था

परम्परागत समाजों में संचार प्रक्रिया का अन्य सामाजिक प्रक्रियाओं से विभेद नहीं था। उनमें व्यवसायिक संचारकर्ताओं का अभाव था। उनमें लोग समाज में अपनी राजनीतिक सामाजिक स्थिति के आधार पर भाग लेते थे।

आधुनिक संरचना अध्ययन की दो बातें घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। प्रथम एक अत्यन्त संगठित सपष्टतया संरक्षित जन संचार व्यवस्था द्वितीय अनैपचारिक वैचारिक नेतृत्व जो आमने सामने, प्रत्यक्ष, व्यक्तिगत आधार पर विचारों को संचार करता है।

आधुनिक जनसंचार के साधन पेशेवर तथा औद्योगिकी हैं तथा ये देश की शासकीय तथा सामाजिक प्रेक्रियाओं से स्वतंत्र है। जनसंचारों का संचालन निष्पक्ष तथा तटस्थ ढंग से सम्भव है। इसमें व्यवसायी संचारक तथा प्रभावी लोगों के मध्य अतिसंवेदनशील पारस्परिक क्रिया होती है जो एक समान संदशों को विशाल जन श्रोताओं को प्रवाहित करने की क्षमता रखती है।

संचार प्रक्रिया अधिकांशत: ऐसे लोगों पर आश्रित होती है जो अन्य सामाजिक भूमिकाओं में रत होते हैं। यह सामाजिक तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं से स्वतंत्र होती है तथा आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से एक भिन्न उद्योग है यही कारण है कि विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में संचार प्रतिमान अनेक कारणों से प्रभावित होता है जो इस प्रकार हैं –

1.भौतिक तथा प्रौद्योगिक कारक – संचार साधनों का ऐतिहासिक विकास घनिष्ठ रूप से भौतिक एवं प्रौद्योगिक परिस्थितियों से जुड़ा है। आधुनिक प्रौद्योगिक विकास ने न केवल व्यक्तियों तथा वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की प्रक्रिया को सुगम किया है वरन् उसने सूचना तंत्र के विकास में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2.आर्थिक विकास – आर्थिक विकास का स्तर जितना ऊँचा होगा। आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों में संचार का मार्ग अपेक्षाकृत एक समान होता है। विकसित राष्ट्रों में लोग जनमाध्यम पर कम तथा संचार के नियंत्रित तथा अनौपचारिक मार्गों पर अधिक निर्भर करता है।

3.सामाजिक सांस्कृतिक कारक – सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन भी संचार के प्रतिमानों को प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ नाजी जर्मनी में संचार के साधन रोडियो तथा समाचार पत्रों पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण था। ऐसी ही स्थिति भारत में 1975 में आपातकाल के दौरान आई थी।

आमण्ड की पॉच प्रकार की संरचनाओं का वर्णन किया हैं।

औपचारिक प्रत्यक्ष सम्पर्क - व्यक्तिगत सम्पर्क से सम्बद्ध।

परम्परागत सामाजिक संरचना - जाति प्रधान, वयोवृद्ध परिवार तथा धार्मिक नेताओं से सम्बद्ध।

राजनीतिक निर्यात संरचनायें – व्यवस्थापिकाओं एवं विभागीय तंत्र से सम्बद्ध।

राजनीतिक निवेश संरचनायें – दबाव समूहों एवं राजनैतिक दलो से सम्बद्ध।

जनसंचार माध्यम- समाचार पत्र, रेडियों, टेलिविजन, पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं से सम्बद्ध।

12.8 आलोचना

संचार सिद्धान्त राजनीतिक विश्लेषण की दृष्टि से अत्यन्त उपयागी सिद्ध हुआ है। संचार नियंत्रण विज्ञान की व्याख्या के माध्यम से इसने राजनीतिक निर्णयों में सूचना तंत्र को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। परन्तु यहॉ पर यह ध्यान देना आवश्यक होगा कि यह उपागम अभी पूर्ण विकासमान अवस्था को प्राप्त नहीं हो सका है। इसका गहन अध्ययन करने पर इसकी सीमायें उभर कर सामने आती हैं। विशेष रूप से इस उपागम की निम्न आधारों पर आलोचना की जाती है :-

सूचना प्रवाहों पर अधिक बल – संचार नियंत्रण विज्ञान पर आधारित होने के कारण यह उपागम गत्यात्मकता की ओर अधिक झुका हुआ प्रतीत होता है। यही कारण है कि इसमें सूचना प्रवाहों पर अधिक ध्यान दिया गया है। डॉ0 एस पी0 वर्मा के अनुसार, ‘‘कार्ल डायच की अपनी योजना में परिणामों या निर्णय की अपेक्षा प्रवाहों पर अधिक बल दिया गया है। यद्यपि यह सत्य है कि राजनीति मे अप प्रवाहों का अधिक महत्व है तथा जिसे निरन्तर स्वीकार भी किया गया है। परन्तु परिणामों एवं निर्णयों का भी अपना महत्व होता है।’’

अस्पष्ट उपागम- यद्यपि यह उपागम राजनीतिक संक्रियाओं का सूक्ष्म एवं परिशुद्ध वर्णन करने में सफल हुआ है, परन्तु इस प्रयास में उसकी शब्दावली दुरूह एवं अस्पष्ट प्रतीत होती है। इस उपागम के माध्यम ये शक्ति एवं नियंत्रण को गहराई से नहीं समझा जा सकता है। जैसे शक्ति के विस्तार तथा गहराई की मात्रा में विभिन्नता, शक्ति तथा प्रभाव में अन्तर विशिष्ट शक्ति के स्त्रोत इत्यादि।

यांत्रिकरण पर अधिक बल- इस सिद्धान्त की आलोचना का एक अन्य आधार यह भी है कि इसकी प्रकृति यांत्रिक अधिक हो गयी है तथा मानव स्वभाव का यांत्रिक अभिमुखी करण करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में कार्ल डायश के साथ क्लाड शानेन, नोबर्ट वीनर तथा डब्लू आर ऐयाबाई को सम्मिलित किया जा सकता है जिन्होंने इसके लिए सूचना सिद्धान्त तथा संचार नियंत्रण विज्ञान को आधार बनाया है। परन्तु मानव स्वभाव को आवश्यकता से अधिक यांत्रिक दृष्टि से समझना सर्वथा उपयोगी एवं व्यवहारिक नहीं कहा जा सकता। इसे व्यापक सामाजिक सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। जैसा कि नोबर्ट वीनर का मानना है कि समाज को मात्र उसके संदेशों तथा संचारों से ही भली-भॅाति समझा जा सकता है।

प्रतिमानों का मशीनीकरण अनुचित – संचार सिद्धान्त के अर्न्तगत ऐसे प्रतिमानों को राजनीति शास्त्र में अपनाने का प्रयोग किया गया है परन्तु वे उन लक्षणों को पूर्ण करने में सफल नहीं हो सके हैं जिन्हें दृष्टिगत करते हुए उन्हें सामाजिक विज्ञानों में स्थान दिया गया था। यांत्रिक सादृश्यता के कारण राजनीतिक संरचनाओं एवं प्रक्रियाओं का मूर्तिकरण करने का प्रयास किया गया है। डॉ0 एस0 पी0 वर्मा का तो मानना है कि कार्ल डायस के मॉडल की राजनीतिक सीमायें स्पष्ट नहीं हैं तथा राजनीतिक विश्लेषण में अतिबौद्धिकता तथा औपचारिकता को स्थान दिया गया है जिसके कारण संपूर्ण उपागम में असमंजसंपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

वैज्ञानिकता का अभाव – इस उपागम के अर्न्तगत वृद्धि एवं लक्षणों की विवेचना की गयी है, परन्तु यह क्रान्तिकारी परिवर्तनों एवं विभजनों इत्यादि की व्याख्या करने में असमर्थ है। कार्ल डायश की रूचि व्यवस्था नियंत्रणात्मक प्रक्रियाओं तथा एक निश्चित दायरे के भीतर लक्ष्य परिवर्तन तक ही है। इस उपागम का लक्ष्य निर्दिष्ट व्यवस्था है जबकि लक्ष्य निर्धारित तथा उसके परिणाम राजनीति के प्राणधार हैं। इसमें लक्ष्यों के बारे में उद्धेश्यवादी ढंग से परिकल्पना की गई है, अतएवं इसमें वैज्ञानिकता का साफ-साफ अभाव दिखता है।

अव्यवहारिक उपागम – संचार उपागम व्यवहारिक दृष्टि से अनेक कठिनाइयों से घिरा हुआ प्रतीत होता है। यदि हम इसे संचालित करने का प्रयास करें तो इसमें अनेक सीमाये स्वत: स्पष्ट हो जायेंगी। इस उपागम के अन्तर्गत मान्य उच्च स्तर का विशिष्टिकरण वास्तविक जीवन में शायद ही उपलब्ध हो पाता है क्योंकि समय एवं परिस्थिति के अनुसार अपने कार्यकलापों में परिवर्तन करना पड़ता है। अतएव यह कहना सर्वथा उपयोगी होगा कि संचार सिद्धान्त अनुभवजनित अनुसन्धान के लिए अधिक उपयोगी नहीं सिद्ध हो सका है। डा0 एस0 पी0 वर्मा के अनुसार, ''यद्यपि कार्ल डायस ने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में अपने बौद्धिक विवेक का भरपूर प्रयोग किया है परन्तु दूसरी ओर स्वयं उसने अनुभव जन्य ज्ञान का कम प्रयोग किया है।''

प्रतिसम्भरण मॉडल अस्पष्ट - कार्ल डायस ने प्रतिसम्भरण मॉडल में अबौद्धिक सहसा प्रकट होने वाले व्यवहार तथा नेतृत्व इत्यादि को कोई अधिक महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है। राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण प्रतिसम्भरण मॉडल की दृष्टि से अधिक उपयोगी नहीं रह जाता। यही कारण है कि न ही सूचना सिद्धान्त और न ही संचार नियंत्रण विज्ञान राजवैज्ञानिकों पर अधिक प्रभाव छोड़ पाते। वस्तुत: यह उपागम सरकारी क्रियाकलापों के सन्दर्भ में अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों को प्रस्तुत अवश्य करता है परन्तु उनका समुचित उत्तर देने में असमर्थ है। यह स्थिति प्रतिसम्भरण मॉडल को अस्पष्ट कर देती है।

12.9 संचार सिद्धांत की उपयोगिता एवं महत्व

संचार सिद्धान्त राजनीतिक विज्ञान के परिवर्तित अध्ययन क्षेत्र के प्रतीक के रूप में सामने आया है। इस दृष्टि से उसकी उपयोगिता तथा व्याख्या शक्ति के बारे में जानना जरूरी है। जिससे उसका सही ढ़ग से मूल्यांकन किया जा सके। कार्ल डायश के अनुसार संचार सिद्धान्त राजनीतिक विश्लेषण के लिए एक उपयोगी एवं व्याख्या शक्ति से परिपूर्ण सिद्धान्त है।उसकी केन्द्रीय धारणा सूचनाओं का संचारण है। इसके आधार पर राजव्यवस्थाओं की सम्बद्धता, एकता, वृद्धि, इत्यादि का पता लगाया जा सकता है –

राजनीति की नयी परिभाषा- इस सिद्धान्त ने राजनीति को नयी परिभाषा एवं दृष्टिकोण प्रदान किया है। इसके माध्यम से राजनीति में सत्ता का महत्व कम हुआ है तथा अन्य अवधारणाओं जैसे राजनीति सामाजिकरण विकास तथा निर्णय निर्माण इत्यादि का महत्व बढ़ा है। यह सिद्धान्त राजनीतिक गतिविधियों को सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के रूप में परिभाषित करता है। इस दृष्टि से

राजनीति का मुख्य क्षेत्र वह है जहॉ लागू करने योग्य निर्णय लिये जाते हैं तथा राजनीति का लक्ष्य मनुष्य के कार्य को समाज के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समन्वित रूप प्रदान करना है।

राजनीतिक व्यवस्था का यांत्रिकरण – यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था का यांत्रिकरण कर देता है। इसका लक्ष्य सूचनाओं के माध्यम से उचित ढंग से राजनीतिक व्यवस्था के अर्न्तगत मान्यताओं तथा सिद्धान्तों का विकास करना है। इस दृष्टि से राजनीतिक सत्ता के आधार एवं स्त्रोत संचार साधनों की उपलब्धि माने जाते हैं। इस उपागम के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था की गतिशीलता को सरलता से समझा जा सकता है। राजनीतिक संचार में राजनीतिशास्त्र तथा विज्ञान एवं तकनीकि को एक दूसरे के निकट लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सरकार के सम्बन्ध में नया दृष्टिकोण- यह उपागम सरकार के सन्दर्भ में विचार करते हुए यह स्वीकार करता है कि सरकार का मुख्य कार्य विशिष्ट सूचनाओं को संचार साधनों के अर्न्तगत स्थापित करना है। इस रूप में मार्गदर्शन करना है न कि सत्ता का प्रयोग करना। यहॉ पर सत्ता का आधार संचार साधनों के माध्यम से अधिक प्रभावशाली होता प्रतीत होता है।

लघु संचार पद्धति – हर राजनीतिक पद्धति में उप पद्धतियॉ विद्यमान होती हैं। तथा उनका संचालन भी उसी प्रकार होता है जिस प्रकार पद्धति का यह सिद्धान्त विभिन्न उप पद्धतियों के मध्य होने वाले संघषों तथा सम्बन्धित विवादों को संचार माध्यम से सुलझाने में सहायक होता है।

संतुलन के स्थान पर मानवता पर बल – यह सिद्धान्त राजनीतिक व्यवस्था के संतुलन में विश्वास नहीं करता क्योकि इससे व्यवस्था मशीनीकरण का शिकार हो जाती है। यह सिद्धान्त राजनीति को अत्यन्त गतिशील मानता है तथा उसकी मान्यता यह है कि राजनीतिक व्यवस्था वातावरण के अनुसार उचित परिवर्तन लाने के योग्य होती है। राजनीतिक व्यवस्था में सूचनायें नियंत्रण के रूप में आती रहती हैं। अतएव उसे अपने आपको परिवर्तनशील बनाना चाहिए।

प्रतिसम्भरण का सिद्धान्त – संचार सिद्धान्त के अर्न्तगत प्रतिसम्भरण के सिद्धान्त पर अधिक बल दिया गया है जिसको कार्ल डायश ने नाड़ी राजनीति सिद्धान्त का नाम दिया (Neero Politics) है। प्रतिसम्भरण वह प्रक्रिया है जो सूचना प्राप्ति पर उचित निर्णय लेने के लिए राजनीतिक व्यवस्था को वाध्य करती है। इसका सर्वधिक महत्वपूर्ण पक्ष तो यह है कि किसी निर्णय के सन्दर्भ में प्रति सूचना प्राप्त होने पर उसमें उचित परिवर्तन करके राजनीतिक व्यवस्था को अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न:

1.“Modern Political Theory”पुस्तक के लेखन कौन है ?

2.कार्ल डायश ने **प्रतिसम्भरण के सिद्धान्त को किस नाम से बताया ?**

12.10 सारांश

अतएव यह कहना सर्वथा उपयोगी होगा कि संचार सिद्धान्त ने राजनीति शास्त्र में एक क्रांन्ति को जन्म दिया है जिसके सहारे न केवल राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों को समझा जा सकता है बल्कि राजनीति शास्त्र को एक विषय के रूप में क्रमबद्ध औचित्यपूर्ण तथा तर्कपूर्ण ढंग से देखा जा सकता है । राजनीतिशास्त्र को विज्ञान बनाने तथा व्यवहारवादी अध्ययन के मार्ग पर अग्रसर करने में इस

उपागम की उपयोगिता को नजरन्दाज करना अनुचित होगा । नार्थ के अनुसार इस सिद्धान्त के माध्यम से राजनीतिक गतिविधियों को परिभाषित किया जा सकता है।

सूचना प्रौद्योगिकी में क्रान्तिकारी विकास के परिणाम स्वरूप राजनीतिक संचार के स्वरूप में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। उनके स्वरूप एवं प्रभाव का निरन्तर अध्ययन किया जा रहा है। कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि भविष्य में राजनीतिक संचार राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं उनकी कार्यप्रणाली के स्वरूप के निर्धारण मेंनिर्णायक भूमिका निभाये।

12.11 शब्दावली

प्रतिसम्भरण- यह वह प्रक्रिया है जो सूचना प्राप्ति पर उचित निर्णय लेने के लिए राजनीतिक व्यवस्था को वाध्य करती है।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.डॉ0 एस0 पी0 वर्मा , 2.नाड़ी राजनीति सिद्धान्त

12.13 संदर्भ ग्रंथ

1.See Karl W. Deutsch, The Nerves of Government : Module of Political Communication and Control Free Press New Yurk 1963

2.Dr. S. P. Verma : Modern Political Theory.

3.Coubiation capability is a mearure of alility to idea with a wide range of information inputs in such a way to make and implement action with position consequences for the attainment of goods to the political system O. R. Young, Systems of political Science New Jeray

4.Karl Deutsch, The nerves of Government, New York 1968 P. 88

5.Richard C. Synder, Decision Making as an Approach to the study of International Politics, Princeten 1954 P. 82-89

6.Counmuniotion includes all the procedures by which one mind may affect another- W. Weaver

7.Political and Government appear in essence as hrocesses of steeing and coordinating human efferts towards the attainment of some set of goods-O.P. young, systems of Political science, p.50

8.What distinguishes a modern political system from a traditional or primitive one is the fact that in modern system, the specialized communication structure is more elaborate and that it penetrates the unspecialized or intermittent structuse of political communications Traditional or prinutive communication is performed by kinship, lineage, status and village groups. Specialised media of communication are present only to a limited degree if they arepresent at all Almond, Politics of the Devcloping Areas, Princeton, 1960 Pp. 47-48

9.In Deutsch's own scheme there is a far greater emphasis on process than on consequences or outcomes. Now processes are undoubtedly inpotrtant in politics and this is being realised. But the consequences and outcomes are far more important.

10.Dr S. P. Verma : Modern Political Theory, Pp.274-275

11.“Society can only be under tood through a study of the massages and Communications facilities which belong to it” Nobert weiner The Human use Human Beings, Cyberneties and Society Doubleday and Co The 1950.

12.Dr S. P. Verma, Modern Political Theory P.275

13.“Even the case of Deutsch we can say that he has expounded and advocated the theory with all intellectual brilliance that he commands but has himself not made much empirical use of it.”

14.Dr S. P. Verma: Modern Political Theory 276

15.North, The Analytical Prospects of Communication Theory P. 315-316

12.14 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

12.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक संचार के अर्थ और उपयोगिता की विवेचना कीजिए |

2. राजनीतिक संचार संचालन के तत्वों को स्पष्ट कीजिए |

3. राजनीतिक आधुनिकीकरण के सन्दर्भ में डेविड एप्टर के दृष्टिकोण का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें|

इकाई 13 : राजनीतिक अभिजन

इकाई सरंचना

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 राजनीतिक अभिजन का अर्थ एवं परिभाषायें
13.4 अभिजन की विशेषतायें
13.5 अभिजन के प्रकार
13.6 पैरटो का अभिजन संचरण सिद्धान्त
13.7 मोस्का के अभिजन संबंध विचार
13.8 पैरटो एवं मोस्का के विचारों में अंतर
13.9 मिचेल्स के अभिजन संबंध विचार
13.10 सी0 राइट मिल्स के अभिजन संबंध विचार
13.11 जेम्स बर्नहम के अभिजन संबंध विचार
13.12 अभिजन एवं लोकतंत्र
13.13 अभिजन का परिसंचरण एवं प्रजातन्त्र
13.14 फाइनर का अभिजन संचरण का सिद्धान्त
13.15 राजनीतिक अभिजन एवं समाजवाद
13.16 विकासशील देशों में अभिजन
13.17 मूल्यांकन
13.18 सारांश
13.19 शब्दावली
13.20 अभ्यास के प्रश्न
13.21 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.22 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
13.23 सहायक एवं उपयोगी सामग्री
13.24 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना-

लोकतन्त्र का प्रचलित (शास्त्रीय) उदारवादी सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी तक लोकप्रिय रहा। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं इक्कीसवीं शताब्दी के पूर्वाध में लोकतन्त्र का नया उदारवादी सिद्धान्त प्रकाश में आया जिसे अभिजन सिद्धान्त कहा जाता है। यद्यपि अभिजन सिद्धान्त का बीज यूनानी

चिन्तनों प्लेटों, अरस्तू के विचारों में पहले से ही दिखाई पड़ते हैं। इस संबंधमेंएस0पी0 वर्मा का कथन उल्लेखनीय है- ''राजनीतिक अभिजन सिद्धान्त का विकास 1950 के दशक में अमेरिका में सुम्पीटर जैसे अर्थशास्त्री, लासबेल जैसे राजनीतिशास्त्री , सी0 राइट मिल्स जैसे समाजशास्त्री द्वारा विभिन्न रूपों में की गई। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में पैरेटो, मोसका, रार्बट मिचल्स और जार्ज अर्टिगा की विभिन्न कालखण्डों में महती भूमिका रही।

यह सिद्धान्त यह मानता है कि प्रत्येक समाज में एक अल्पसंख्यक वर्ग होता है जो प्रभावी ढ़ग से शासन करता है। इनकी मान्यता है कि प्रत्येक शासन शासक एवं शासित में बंटा होता है। यह सिद्धान्त मानता है कि कूछ चुने लोग अथवा श्रेष्ठ, विशिष्ठ लोग राजनीतिक शक्ति एवं प्रभाव के स्वामी सदैव बने रहते हैं। इस संबंध में डगलस वर्ने का कथन उल्लेखनीय है- ''कोई भी राजसत्ता अपने आपको प्रजातान्त्रिक बतलाने की चाहे कितनी भी चेष्ठा क्यों न करे उसके संगठन में वर्गवादी तत्व सदैव विद्यमान रहते हैं। व्यक्ति सोच सकते है कि वे राजनीतिक प्रक्रिया में भाग ले रहे है, लेकिन वास्तव में उनका प्रभाव चुनाव तक ही सीमित रहता है। सत्ता के केन्द्र में एक सामाजिक विशिष्ठ वर्ग होता है जो महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।'' यह सिद्धान्त लोकतन्त्र के शास्त्रीय सिद्धान्त को अस्वीकार करता है जिसमें माना जाता है कि सरकार निर्माण शासन, संचालन में आम लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। वास्तव में यह कुछ संभ्रात अथवा विशिष्ट लोगों का बहुसंख्यक लोगों पर शासन है। डूवर्जर के शब्दों में- ''प्रजातन्त्र केवल सिद्धान्त में लोगों का शासन है व्यवहार में यह लोगों में से उभरे संभ्रात वर्ग का शासन है।'' यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है निर्णय लेने की क्षमता थोड़े लोगों के पास रहती है। यह थोड़े से लोग देश की राजनीतिक प्रक्रिया में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। सभी आमलोग युद्ध, संधि, क्रान्ति तथा संसदीय वाद-विवाद आदि संभ्रातों द्वारा प्रभावित एवं संचालित होते हैं। लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त प्रजातन्त्र एवं कुलीन तंत्र के शास्त्रीय सिद्धान्त का अद्भुत मिश्रण है। यह सिद्धान्त लोकतन्त्र के इस तत्व को कि सत्ता का निवास लोगों में है तथा कुलीनतंत्र के इस तत्व को कि सत्ता कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित होती है, को मिश्रित कर देता है। लोकतन्त्र का शास्त्रीय (प्राचीन) सिद्धान्त जहाँ शासन सत्ता, निर्वाचन आदि में लोगों (आमजन) की भागीदारी को स्वीकार करता है। वही विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त सत्ता के वितरण में विशिष्ट वर्ग एवं संभ्रात वर्ग, बुद्धिमान, धनी, चतुर, सक्षम लोगों को भागीदार मानता है। प्रजातन्त्र का शास्त्रीय सिद्धान्त जहाँ यह मानता है कि सार्वजनिक नीति विस्तृत एवं अनौपचारिक विचार विमर्श से उत्पन्न होती है। वही विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त मानता है कि यह न तो संभव है और न ही वांछनीय है। विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त प्रजातन्त्र के शास्त्रीय सिद्धान्त के आदर्शवादी सिद्धान्त को न केवल शंका से देखते हैवरनउस पर प्रहार करते हैं। वे मानते है कि निर्वाध निर्माण की प्रक्रिया में यथा संभव अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी उचित नहीं होगी। इसके परिणाम भयंकर होंगें। इससे चूर्त नेतृत्व का उदय, चापलूस संस्कृति का उदय, भीड़ का दमनपूर्ण व्यवहार, आदि पनपने की प्रबल संभावना सदैव बनी रहेगी। विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त यह

मानता है कि लोकतन्त्र के प्राचीन सिद्धान्त को व्यवहार में तो लागू नहीं किया जा सकता। यह इसे एक काल्पनिक एवं अव्यवहारिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्न उद्देश्य हैः-

- अभिजन सिद्धान्त का अर्थ एवं विशेषताओं को जानना।
- पैरेटो एवं मोस्का के अभिजन सिद्धान्त को समझना।
- अभिजनों के प्रकार तथा समाज में उनके महत्व को समझना।
- राजनीतिक अभिजनों में परिवर्तन की प्रक्रिया को समझना।
- राजनीतिक अभिजन एवं लोकतन्त्र के संबंध को समझना।
- फाईनर के अभिजन संचरण मॉडल को समझना।

13.3 राजनीतिक अभिजन का अर्थ एवं परिभाषा

राजनीतिक अभिजन अथवा विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त के बीज यूनानी चिन्तन में प्लेटो एवं अरस्तू के विचारों में ही दिखायी पड़ते हैं। ये दोनों ही विद्वान यह स्वीकार करते थे कि शासन की कला एवं क्षमता सभी के पास नहीं होती है। अतः शासन का अधिकार केवल योग्य लोगों के पास होना चाहिए। अरस्तू के शब्दों में - ''समाज में कुछ लोग शासन करने के लिये पैदा हुए है तथा कुछ लोग शासित होने के लिये पैदा हुए है।'' विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त विशिष्ट वर्ग (श्रेष्ठवर्ग) को महत्वपूर्ण भूमिका देने का पक्षधर है। राजनीतिक अभिजन सीमित अर्थवाली धारणा है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले लोग शामिल नहीं होते हैं। राजनीति अभिजन वह है जो राजनीतिक व्यवस्था के संचालन और निर्णय निर्माण में सहभागी होते हैं। कतिपय यह कारण है। कि कुछ लोगों ने राजनीतिक अभिजन को निर्णय निर्माण एवं राजनीतिक व्यवस्था के लिये निर्णयकर्ता कहा।

अभिजन शब्द अंग्रेजी में Elite कहा जाता है जिसे लैटिन भाषा के शब्द Elgcne से लिया गया है। इसका अर्थ होता है पसंद द्वारा चुनाव (Selection by choice)होता है। अंग्रेजी में Eligcne अर्थ नेतृत्व से लिया जाता है। इसका प्रयोग आगे जाकर 'विशिष्ट' अर्थों में किया गया। पैरेटो ने जहाँ इसे 'शासक अभिजन', मोस्का ने 'शासक वर्ग', राबर्ट डॉल ने इसे शासक अभिजन कहा है। अभिजन शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 17 वीं शताब्दी में विशेष, श्रेष्ठ संदर्भों में किया गया। बाद में इसका प्रयोग उच्च, श्रेष्ठ, कुलीन वर्गो के लिये किया जाना लगा। इस सिद्धान्त को स्थापित करने में

एच0डी0लासवैल, मोस्का, पैरेटो, जेम्स बर्नहम, रार्बट डाल, मिचेल्स, सार्टोरी, सी0 राइटमिल्स, वॉटमोर, मैनहाइम तथा शुम्पीटर आदि का महत्वपूर्ण योगदार रहा। राजनीतिक अभिजन की परिभाषा अनेक विद्वानों ने इस प्रकार की है-

सी0 राइट मिल्स के शब्दों में- ''हम शक्ति अभिजन की व्याख्या शक्ति के साधन के रूप में कर सकते हैं। शक्ति अभिजन वह है जो आदेश देने वाले पदों को धारण करते है।''

पैरेटो के शब्दो में- ''वे व्यक्ति जो अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत सबसे अधिक उच्च श्रेणी पर हैं वे ही अभिजन हैं।''

लासवैल के शब्दों मे- ''एक राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति को धारण करने वाला वर्ग ही राजनीतिक अभिजन होता है। शक्ति धारण करने वाले वर्ग में नेतृत्व करने वाला वर्ग तथा वह सामाजिक समुदाय आते हैं जिसमें ये यह वर्ग आता है जिसके प्रति एक निर्दिष्ट समय में यह उत्तरदायी होता है।''

रार्बट ए डॉल के शब्दों में- ''प्रत्येक राजव्यवस्था में अभिजन का एकीकृत अल्पसंख्यक समुदाय अस्तित्व में होता है जो शासकीय नीतियों, नियमों तथा उस समाज से समूह अन्य सभी राजनीतिक विषयों पर अपना प्रभाव डालता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अभिजन एक संगठित अल्पसंख्यक समूह होता है। यह अपनी क्षमता, सामर्थ्य से बहुसंख्यक समाज पर शासन करता है। ये ऐसा समूह होता है जो राजनीतिक रूप से बहुत प्रभावशाली होता है। शासन का संचालन हर स्थिति में इन्हीं के द्वारा किया जाता है। नीतियों का निर्माण करना, उनका क्रियान्वयन करना इस लघु समूह के द्वारा ही किया जाता है। ये अपने प्रभाव, प्रभाव के द्वारा राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

13.4 अभिजन की विशेषतायें-

अभिजन समाज में वह समूह होता है जो समाज का नेतृत्व करता है। ये संख्या में कम होते हैं परन्तु इनकी प्रभाव क्षमता बहुत व्यापक होती है। यह सुविधा एवं विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग होता है। इनके हित समाज से अलग होते हैं। अभिजन की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैः-

1.अल्पसंख्यक उच्चवर्ग:- ये शासन में सदैव प्रभावी रहते हैं। संख्या बल में कम होने के बावजूद इस अल्पंसख्यक समूह का शासन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। सम्पूर्ण शासन व्यवस्था तथा उसका क्रियान्वयन सदैव इनके हाथ में ही रहता है। ये संख्या में कम होने के बावजूद अपने प्रभाव, पैसे से सघन प्रचार अभियान चलाकर जनमत को अपने पास में करने का प्रयास करते हैं। ये किसी न किसी प्रकार से अपनी उच्च स्थिति को बनाये रखते हैं।

2.अलग हितों की अभिवृद्धि:- अभिजन के हित सदैव जनसामान्य के हितों से भिन्न होते हैं। ये सदैव अपने हितों की पूर्ति के लिये सजग रहते हैं। ये जनसामान्य के हितों के प्रति संवेदनशीलता प्रदर्शित करते हैं परन्तु उनके हितों के विपरीत अपने हितों के संवर्धन में सक्रिय रहते हैं। संख्या बल में कमी

के बावजूद अपने प्रभाव, पैसे, सघन प्रचारतंत्र के बलबूते आमजन में अपनी मौजूदगी बनाये रखते हैं।

3.बहुमत का निष्क्रिय एवं प्रभावहीन होनाः- अभिजन वर्ग जो संख्यामेंबेहद कम होता है वह सदैव सक्रिय एवं प्रभावशाली रहता है। बहुमत शासन संचालन, विधि निर्माण के कार्य में न तो सक्रिय रहता है और न ही इस पर नियन्त्रण रख पाता है। वे अपनी श्रेष्ठता एवं प्रभाव को बनाये रखने के लिये इस प्रकार के साधन का प्रयोग करते हैं। इस हेतु वे अनैतिक एवं नैतिक तथा विधिक इस प्रकार के साधन का प्रयोग करते हैं। वे येन केन प्रकारणे बहुमत को प्रभावहीन बनाकर रखते हैं।

4.समाज में विशिष्ट स्थानः- अभिजन का समाजमेंविशिष्ट स्थान होता है। वे अपने स्थान, प्रभाव को लेकर बहुत सजग रहते हैं। वे निरन्तर अपने स्थान को बनाये रखने तथा प्रभाव को बढ़ाने को लेकर सक्रिय रहते हैं।

5.जनता के द्वारा निर्वाचनः- राजनीतिक अभिजन सदैव जनता के द्वारा निर्वाचित होता है। प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था में यह समय अलग-अलग होता है। ये जनता की आंखों में धूल झोंककर उनका मत प्राप्त कर ही सत्ता प्राप्त करते हैं। वहीं से यह विशिष्ट बनते हैं। ये अपनी राजनीतिक छवि को लेकर बहुत संवेदनशील रहते हैं।

13.5 अभिजन के प्रकार

आधुनिक समय में कई तरह के अभिजनों का अस्तित्व समाज में पाया जाता है। ये आर्थिक अभिजन,राजनीतिकअभिजन, धार्मिक अभिजन, जातिगत अभिजन के रूप में पाये जाते हैं। पैरेटो ने अभिजन के दो रूप बताये हैं- अभिजन एवं अभिजनेतर। उसने अभिजन को दो भागों में बांटा हैः-

1.शासक अभिजनः- वह कहता है कि जो व्यक्ति शासन को नियन्त्रित सत्ता का उपभोग करता है वह शासक अभिजन कहलाता है। बाद के वर्षों में उनके अनुयायी एवं शिष्या मेरी कोलम्बिसका ने इसे चार भागों में बांटाः-

- कुलीन वर्गः- प्रत्येक समाज में एक उच्च वर्ग होता है जिसके पास विशेषाधिकार होता है, उसकी समाज में विशेष भूमिका होती है। यह कुलीन वर्ग कहलाता है।
- पूँजीपति वर्गः- यह पूँजीपति वर्ग भी शासक अभिजन का हिस्सा होता है। इसकी समाज में विशेष भूमिका होती है। इसकी धन अथवा पूँजी पर विशेष पकड़ होती है।
- सैनिक वर्गः- सैनिक वर्ग भी शासक अभिजन होता है। यह समाज एवं राज्यमेंविशेष एवं शक्तिशाली भूमिका रखता है। उसके समर्थन से ही शासक सत्ता में रहता है।

- धर्माधिकारी वर्गः- यह धर्म पर विशेष पकड़ रखने वालों का समूह होता है। यह धर्म का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इनका सम्मान शासक भी करते हैं। ये विशेष अधिकारों एवं सम्मान के स्वामी होते हैं।

2.अशासक अभिजन:- ये अपने आप में अलग वर्ग होता है। ये शासक तो नहीं होते हैं परन्तु शासन सत्ता में इनका प्रभाव होता है। यही कारण है कि ये जन सामान्य से अलग विशेष अधिकारों एवं सुविधायों को उपयोग करते हैं। इस वर्ग में डॉक्टर, शिक्षक, इंजीनियर, वकील आदि बुद्धिजीवी आते है।

अपने अध्ययन 'मस्तिष्क और समाज' (Mind and Society) में पैरेटो अशासक अभिजन की अपेक्षा शासक अभिजन को ज्यादा महत्वपूर्ण मानता है। वह बताता है कि यह वर्ग बल प्रयोग एवं चालाकी दोनों का प्रयोग कर शासन करता है। राजनीतिक सक्रियता के सभी पक्ष इनके नियन्त्रण में रहते हैं। राजनीतिक अभिजन में परिवर्तन होते रहते हैं। पुराने अभिजन भ्रष्ट हो समाप्त हो जाते हैं। उनके स्थान पर नये लोग आ जाते हैं। पैरेटों मानता है कि समाज का प्रत्येक अभिजन इस प्रक्रिया से अंततः नष्ट हो जाता है। उसका स्थान दूसरे लोग लेते हैं।

13.6 पैरेटो का अभिजन के परिसंचरण का सिद्धान्त

पैरेटो ने अभिजन के परिसंचरण का सिद्धान्त दिया। उसने अपने सिद्धान्त में बताया कि अभिजन स्थायी नहीं होते हैं। अपने अयोग्यता, अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार के कारण अनेक लोग अविशिष्ट हो जाते है। ठीक इसी प्रकार कुछ सामान्य लोग अपने गुणों, योग्यता एवं क्षमता में वृद्धि कर अभिजन (राजनीतिक) बनने की ओर अग्रसर हो जाते है। वह मानता है कि यह परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह परिवर्तन स्वचालित है। वह इसके साथ यह भी जोड़ता है कि यदि यह प्रक्रिया तेज गति से चलती है तो यह शासन के लिये एवं जनकल्याण के लिये हितकर रहती है। तीव्र परिवर्तन वाली व्यवस्था में कुशल एवं योग्य शासन का जन्म होता हैं यह स्वभाविक है कि पद से हटने का भय अभिजनों को पथ से विचलित नहीं होने देता और वे निरन्तर योग्यता एवं क्षमता के साथ जनकल्याण के कार्य में सक्रिय रहते हैं। पैरेटो का स्पष्ट मानना है कि यदि परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी होती है तो भ्रष्टाचार और अयोग्य शासन का जन्म होता है जो जन सामान्य के लिये हितकर नहीं है। अयोग्य एवं भ्रष्ट शासक को हटाने के लिये अंततः क्रान्ति की आवश्यकता होती है। कतिपय ऐसे समय में जनता का नया रूप (सरकार बनाने एवं बिगाड़ने वाली) सामने आता है। जनता नये रूप में अभिजनमेंसमान व्यवहार करती है। पैरेटो का यह सिद्धान्त संघर्ष को स्वभाविक मानता है क्योंकि विशिष्ट वर्ग एवं सामान्य वर्ग के हित परस्पर विरोधी होते हैं अतः परस्पर संघर्ष के द्वारा संतुलन की स्थापना होती है और भ्रष्ट शासन पर अंकुश लगता है। एक नये संवेदनशील एवं योग्य सरकार का जन्म होता है।

13.7 गीटानो मोस्का के राजनीतिक अभिजन संबंधी विचार

मोस्का का राजनीतिक अभिजन संबंध सिद्धान्त पैरेटो के सिद्धान्त से भिन्न है। मोस्का मानता है कि समाज दो वर्गों में विभाजित होता हैः- 1- शासक वर्ग 2- शासित वर्ग।
जो वर्ग शासन करता है वे अल्पसंख्यक अथवा सीमित संख्या में होते हैं। ये वर्ग संख्या में कम होने के बावजूद अपने विशेषाधिकारों की रक्षा के लिये सदैव संगठित रहता है। दूसरी तरफ शासित वर्ग होते हैं जो बहुसंख्यक होते हैं तथा अंसगठित होते हैं। वो मानता है कि इन दोनों वर्गों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। वह मानता है कि शासित वर्ग अथवा साधारण वर्ग में तीव्र मतभेद रहते हैं।
मोस्का अपनी पुस्तक The Rulling Class में कहता है- ''सभी प्रकार के समाजों में नितान्त अल्पविकसित या जिन्हें कठिनाई से सभ्य कहा जाता है, ऐसे समाज में पूर्णतया विकसित तथा अतिशक्तिशाली समाज तक में दो वर्ग प्रकट होते हैं- वह वर्ग जो शासन करता है वह वर्ग जिसपर शासन किया जाता है। शासक वर्ग संख्या में छोटा होता है, सभी राजनीतिक क्रियाकलापों को करता है तथा शासन सत्ता पर एकाधिकार कर लेता है तथा उससे प्राप्त सभी सुख सुविधाओं का उपभोग करता है। दूसरा वर्ग जो संख्या में बड़ा होता है शासक वर्ग द्वारा ऐसे ढ़ग से ऐसे निर्देशित तथा नियन्त्रित होता है जो कभी वैद्य तथा कभी स्वेच्छाचारी प्रतीत होता है। व्यवस्थित अल्पमत का संगठित बहुमत पर प्रभुत्व अपरिहार्य है।''
वह आगे स्पष्ट करता है कि प्रत्येक समाज में शासक वर्ग अपने को सत्ता में बनाये रखने के लिये नैतिक एवं कानूनी आधार खोज निकालने का प्रयत्न करता है और उन्हें इन सिद्धान्तों एवं विश्वासों के जो सामान्य रूप से मान्यता प्राप्त और स्वीकृति है तर्क संगत एवं आवश्यक परिणाम के रूप में प्रस्तुत करता है। इस शासक वर्ग की नीतियाँ चाहे वह स्वार्थवश ही क्यों न बनी हो, एक नैतिक एवं कानूनी आवरण के साथ रखी जाती हैं और एक निश्चित सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति करती है।
मोस्का के शब्दों में - ''राजनीतिक नियन्त्रण को नेतृत्व एवं कार्यान्वित करने की की क्षमता में है।''
मोस्का की मान्यता थी कि राजनीतिक अभिजन की सदस्य संख्या समय के ससाथ घटती एवं बढ़ती रहती है। शासित वर्ग के लोग भी इसमें सम्मलित होते रहते हैं।

13.8 मोस्का एवं पैरैटो के विचारों में अंतरः

दोनों ही विचारकों ने अभिजन सिद्धान्त की व्यापक व्याख्या की। दोनों ही समाज में दो वर्गों के अस्तित्व को स्वीकार करते थे। इनके बावजूद दोनों के विचारों में अंतर के मुख्य बिन्दु निम्न हैः-
1.पैरटो जहां दोनों वर्गां में अंतर परिवर्तन का आधार मनोवैज्ञानिक मानता है वहीं मोस्का परिवर्तन का कारण सामाजिकता को स्वीकार करता है।

2.पैरेटो की स्पष्ट मान्यता थी कि कोई भी अभिजन वर्ग का सदस्य स्वयं हटना नहीं चाहता है, वह तो हटाया जाता है। उसके शब्दों में - ''इतिहास शमशानों की भूमि है।'' मोस्का मानता है कि शासक वर्ग संगठन पर निर्भर करता है। संगठन की शक्ति, योग्याता के द्वारा विशिष्ट वर्ग का शासन चलता है।
3.पैरेटो विशिष्ट वर्ग में परिवर्तन के लिये क्रान्ति एवं संघर्ष पर बल देता है वही मोस्का परिवर्तन स्वभाविक एवं जरूरी मानता है। सामाजिकता के परिवेश में जब संगठन अपने आपको अनुकुल नहीं रख पाता है तब उस वातावरण में संगठन पर नेतृत्व वर्ग की पकड़ ढ़ीली हो जाती है तब परिवर्तन आता है। मोस्का की मान्यता थी कि परिवर्तन ''समझा बुझाकर'' होना चाहिए। किसी भी परिवर्तन के लिये हिंसा, क्रान्ति की आवश्यकता नहीं होती है। यह स्वभाविक रूप से शान्ति से संभव है।
4.पैरेटो के शब्दों में प्रत्येक समाज में शासक एवं शासित दो अलग वर्ग होते हैं। अतः प्रजातन्त्र और अन्य सरकारें सभी समान होती है। मोस्का इसके विपरीत प्रजातन्त्र एवं अन्य सरकारों में स्पष्ट अंतर करता है। वह मानता है कि शासक वर्ग तथा शासित वर्ग में क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है।

13.9 मिचेल्स के अभिजन संबंधी विचारः-

पैरेटो के बाद उसके शिष्य मिचेल्स ने अभिजन संबंधी विचार दिये। वह स्पष्ट रूप से मानता था कि आम जनता कभी भी अपनी अयोग्यता, अक्षमता के कारण शासन कार्यां , नीति निर्माण के योग्य नहीं होती। वह मानता था कि शासन करने वालों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। वह भी शासन करने वालों के लिये 'अल्पतंत्र' शब्द का प्रयोग करता है। वह मानता था कि कोई लोकतान्त्रिक व्यवस्था वास्तव में दलीय व्यवस्था होती है। दल के ऊपर कुछ नेताओं का नियन्त्रण रहता है। ये नेता किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं रहते हैं। ये अभिजन (नेता) लोकतन्त्र में अपना अधिपत्य बनाये रखते हैं। वो आगे इसी से प्रेरित हो कर मिचेल्स ने ''अल्पतंत्र का लौह नियम'' का सिद्धान्त दिया। वह स्पष्ट करता है कि लोकतन्त्र में बहुमत का शासन नहीं होतावरनअल्पमत का शासन किसी न किसी रूप में बना रहता है। यह अल्पंसख्यक लोग अपनी योग्यता, क्षमता, प्रतिभा, मेधा से शासन में सदैव प्रभावी रहते हैं। वे सत्ता के संघर्ष में आगे निकलकर सदैव सत्ता को प्राप्त करने में सफल रहते हैं। सत्ता प्राप्ति की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती है। यह नियम लोहे के समान अटूट एवं मजबूत है। मिचेल्स के शब्दों में- ''संगठन की चर्चा करना अल्पतन्त्र की प्रवृत्ति की चर्चा करना है। जनता के संदर्भ में संगठनतंत्र नेता की स्थिति अलग बना देता है। यह अल्पतंत्र का लौह नियम है।
मिचेल्स अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखता है कि अधिकतर व्यक्ति स्वभाव से आलसी, उदासीन होते हैं। वे शासन कार्या को समझने तथा करने में असमर्थ होते हैं। ये झूठे, आश्वासनों एवं प्रसन्नता से सतुष्ट हो जाते हैं। वे अपने से योग्य लोगों के समक्ष विनम्र एवं आज्ञाकारी बने रहते हैं। ऐसे योग्य एवं क्षमतावान लोग बहुसंख्यक वर्ग की इस कमी का भरपूर फायदा उठाकर सत्ता को अपने जैसा बनाये रखने के लिये उनका समर्थन (वोट) प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। इस हेतु वे उनकी प्रशंसा करने, सपने दिखाने, अनैतिक माध्यमों के प्रयोग आदि करने से भी परहेज नहीं रखते

हैं। मिचेल्स के शब्दों में- ''ये नेता एक बार सत्ता में आ जाते हैं तो कोई भी उन्हें शक्ति के शिखर से हटा नहीं सकता।''

संगठन के बिना आधुनिक युग में राजनीतिक दल परिणाम नहीं प्राप्त कर सकता है। यह लौह नियम ऐसा है जिससे किसी भी प्रगतिशील राजनीतिक दल का निकल पाना संभव नहीं है। सत्ता के शीर्ष पर बैठे व्यक्ति आसानी से सत्ता नहीं छोड़ते हैं। उन्हें सत्ता से अलग करना एक कठिन कार्य है। मिचेल्स के शब्दो में- ''इन्हें नियन्त्रित करने के लिये बनाये कानून भी कुछ समय बाद प्रभावहीन हो जाते हैं। नेताओं की शक्ति में किसी भी प्रकार की कमी नहीं होती है। उन्हें समय-समय पर क्रान्तियों के द्वारा ही हटाया जाता है। इससे भी विशेष अंतर नहीं पड़ता क्योंकि उनके स्थान पर नया शासक आ जाता है जो उतना ही निरकुंश होता है। सत्ता सदैव कुछ लोगों के हाथों में बनी रहती है। उनका प्रयोग मनमाने तरीके से होता है। इस प्रकार अभिजन (विशिष्ट) वर्ग सदैव सत्ता में बने रहते हैं। भोली-भाली जनता सदैव शासित होती रहती है।

13.10 सी0 राइट मिल्स के अभिजन संबंधी विचार

सी0 राइट मिल्स ने अभिजन संबंधी विचार प्रस्तुत किये। उसने 'शक्ति अभिजन' जैसी नई शब्दावली का प्रयोग किया। वह मानता था कि कुछ लोग समाज में शक्तिशाली पदों पर आसीन रहते हैं। वे उन्हें 'शक्ति अभिजन' संबोधित करता था। वह स्पष्ट करता था शक्ति अभिजन का आधार आर्थिक एवं सामाजिक होता है। आधुनिक समाज में शक्ति उन्हें संगठनों में केन्द्रित होती है जिनकी वृत्तरूपी समाज में केन्द्रीय स्थिति होती है और जो व्यक्ति इन संगठनों में शिखर पर होते हैं। ये शक्ति अभिजन ;च्वूमत म्सपजमद्ध कहलाते हैं।

मिल्स ने मोस्का के 'शासक वर्ग' के स्थान पर 'शक्ति अभिजन' शब्द देता है। वह स्पष्ट करता है कि वर्ग शब्द से आर्थिक शक्ति का मान होता है तथा शासक से राजनीतिक शक्ति का मान होता है। अतः आर्थिक वर्ग जो राजनीतिक रूप से शासन करता है। मिल्स अपने अभिजन संबंधी सिद्धान्त में व्यक्तियो के स्थान पर संस्थाओं को जोड़ता है। वह स्पष्ट करता है कि अब राजनीतिक शक्तियों का संस्थानीकरण हो चुका है। अब शक्ति व्यक्ति के स्थान पर संस्थाओं में केन्द्रित होती है। नागरिक अब संस्थानिक सत्ता का पालन करती है। इन सत्ताधारियों के चयन में जनता को पूरी छूट होती है। वह मानता है कि नेताओं में बदलाव संस्थाओं के ढाँचे में बदलाव कर ही किया जा सकता है। इनके संचालन में चुनाव महत्वपूर्ण होता है।

13.11 जेम्स बर्नहम के राजनीतिक अभिजन संबंधी विचार

जेम्स बर्नहम ने अपने 'प्रबन्धकीय क्रान्ति' नामक निबन्ध में अभिजन संबंधी विचार को मार्क्सवाद से जोड़ने का प्रयास किया। उनकी मान्यता थी कि वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर आर्थिक सामाजिक व्यवस्था पर ऐसे थोडे से व्यक्तियों का अधिपत्य होगा। यह थोड़े से व्यक्ति सम्पूर्ण शक्तियों

के न केवल स्वामी होगेंवरनवे समाज का नेतृत्व भी प्रदान करेंगे। बर्नहम ने इन थोड़े व्यक्तियों के लिये 'प्रबन्धकीय अभिजन' शब्दावली का प्रयोग किया।

बर्नहाइम पहला अभिजनवादी विचारक था जिसने इस सिद्धान्त के साथ आर्थिक तत्व को जोड़ा। वह अपने सिद्धान्त में आगे स्पष्ट करता है कि समाज में नेतृत्व उसी के पास रहता है जो आर्थिक रूप से सबल होते हैं। वह कहता है कि पूँजीवादी व्यवस्था में आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियाँ घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती हैं। इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। वह कहता है कि अभिजन वर्ग का आधार 'आर्थिक शक्ति' है। वह सत्ता में आर्थिक तत्व को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता है। वह अपने सिद्धान्त में 'नौकरशाही' को बहुत महत्वपूर्ण मानता है। उसकी मान्यता है कि यह शक्तिशाली नौकरशाही के साथ राजनीतिक अभिजन को जोड़ता है। इस अभिजन को वह टिकाऊ मानता है।

विभिन्न विचारकों के द्वारा विशिष्ट वर्ग के लिये तथा राजनीतिक अभिजन संबंधी विचार दिये। इन सभी विचारों से अभिजन सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। इनके विचारों में अंतर है परन्तु इस बात पर सभी सहमत है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में शासन शक्ति केवल कुछ लोगों में रहती है। इस बात पर भी सभी सहमत दिखते हैं कि एक बार सत्ता में आने के बाद अभिजन सदैव अपनी स्थिति को बचाने अथवा सत्ता में बने रहने का प्रयास करते हैं। ये सभी विचारक इस बात पर भी सहमत दिखते हैं कि निर्णय लेने की क्षमता अन्तिम रूप से अभिजन के पास ही रहती है। पैरेटो, मोस्का, मिचेल्स, बर्नहाइम तथा मिल्स सभी अभिजन को विशिष्ट शासक वर्ग के रूप में मानते हैं। राजनीतिक अभिजन सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैः-

1.अभिजन, शक्ति और प्रभाव का प्रयोग इसलिये करते हैं क्योंकि इसमें कुछ विशेष गुण होते हैं जैसे प्रशासनिक क्षमता, बौद्धिक योग्यता आदि होते हैं।

2.प्रत्येक राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था में अल्पसंख्यकों या व्यक्तियों के छोटे समूह का उदय होता है। वे महत्वपूर्ण पदों पर स्थापित होते हैं और निर्णय प्रक्रिया में सक्रिय रहते है।

3.राजनीतिक अभिजन सत्ता में रहते हुए जनसमर्थन से मुक्त रहते हैं।

4.वे समाज में शक्ति प्रयोग का वैध अधिकार रखते हैं। वे बिना भय एवं संकोच से अपनी इस शक्ति का प्रयोग करते हैं।

5.अपनी सत्ता को बचाये रखने के लिये अभिजन हर प्रकार के माध्यम जैसे झूठ, फरेब, हिंसा तथा अनैतिक माध्यमों का प्रयोग करने से नहीं हिचकिचाते।

6.अभिजन वर्ग सदैव साधारण वर्ग से अलग उच्च स्थिति में रहता है। वे विशेष स्थिति तथा विशेषाधिकार सम्पन्न होते हैं।

7.ये संख्या में कम होते हैं परन्तु सत्ता पर नियन्त्रण रखते हैं।

8.लोकतन्त्र में अभिजन वर्ग में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। यह अभिजन अथवा विशिष्ट वर्गों के बीच एक प्रतियोगिता होती है।

13.12 अभिजन तथा लोकतन्त्र

लोकतन्त्र का सामान्य अर्थ जनता का शासन होता है। लोकतन्त्र स्वतन्त्रता एवं समानता पर आधारित होता है। इस व्यवस्था में सरकार सदैव जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कोई भी उच्च पद प्राप्त कर सकता है। मैन्हाइम 'लोकतन्त्र को खुली प्रतियोगिता' मानता है। शुम्पीटर के शब्दों में- ''लोकतन्त्र को राजनीतिक विनिश्चय कर लेने का एक संस्थापक समझौता है जिसमें राजनीतिक निर्णय लेने की शक्ति जनता के मत द्वारा प्राप्त कर प्रतियोगिता एवं संघर्ष माध्यम से प्राप्त करते हैं।

लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त का तात्पर्य राजनीतिक विशिष्ट वर्ग के शासन से है जो जनता के द्वारा निर्वाचित होते हैं। यहाँ जनता के द्वारा निर्वाचित व्यक्ति राजनीतिक अभिजन के रूप में शासन करते हैं। इनकी स्पष्ट मान्यता है कि राजनीतिक अभिजन के अभाव में लोकतन्त्र संभव हो ही नहीं सकता। लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त स्वतन्त्रता एवं खुली प्रतियोगिता में विश्वास रखते हैं। यह सिद्धान्त यह मानता है कि कोई भी व्यक्ति जिसके पास क्षमता होती है। योग्यता होती है वह अभिजन बन सकता है। लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करता है कि एक बार अभिजन बन सत्ता पर काबिज होने के बाद भी वे निश्चित नहीं रह सकते। यदि वे प्रतियोगिता में असफल होते हैं तो नये अभिजन के उदय की संभावना बनी रहती है।

उदारवादी लोकतन्त्र में बहुमत के आधार पर कुछ लोग (अल्पतंत्र) शासन सत्ता का प्रयोग करते हैं। जनता के विश्वास पर्यन्त ही वह सत्ता के शीर्ष पर आसीन हो 'राजनीतिक अभिजन' के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। उनके ऊपर बहुसंख्यक जनता के नियन्त्रण का दायित्व रहता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। अल्पमंत्र द्वारा बहुसंख्यक समाज को नियन्त्रित किया जाता है। राजनीतिक नेतृत्व (अभिजन) ही प्रायः बहुसंख्यक जनता को नियन्त्रित करते हुए दिखायी पड़ते हैं। यह सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि 'जनता का शासन' एक भ्रम है, एक कपोल कल्पना तथा भ्रामक अवधारणा है। आरोन के शब्दों में- ''किसी भी समाज में शासन सत्ता कुछ लोगों के हाथ में रहने के अतिरिक्त अन्य लोगों के हाथों में रहना असम्भव है। जनता के लिये सरकार तो होती है, जनता द्वारा शासन नहीं होता है।''

राजनीतिक अभिजनवादी सिद्धान्त शास्त्रीय उदारवादी सिद्धान्त के अनुसार लोकतन्त्र में समानता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते हैं। ये मानते है कि पूर्ण समानता न तो प्राकृतिक है और न ही व्यवहारिक ही है। वे कहते है कि शासक एवं शासितों के बीच, सत्ताधारियों, एवं शासितों के बीच समानता कोरी कल्पना है। वे स्पष्ट रूप से मानते है कि असमानता, योग्यता, कुशलता, ज्ञान प्रतिभा के कारण होती है। वे मानते है कि जनसाधारण में जटिल राजनीतिक समस्याओं को समझने की क्षमता आम लोगों में नहीं होती है। कतिपय यही कारण है कि यह कार्य स्वभाविक रूप ये अधिक क्षमतावान, योग्य, प्रतिभाशाली लोगों (अभिजन) के पास स्वभाविक रूप से पहुँच जाता है। मैन्हाइम

के शब्दों में- ''वास्तविक रूप से नीतियों को अभिजन ही निर्धारित करते हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि समाज लोकतान्त्रिक नहीं है। लोकतन्त्र के लिये यह पर्याप्त है कि प्रत्येक नागरिक के पास निश्चित अवधि के बाद अपनी भावनाओं को महसूस कराने की सम्भावना तो है क्योंकि राजनीतिक अभिजन के शासनाधिकार प्राप्त करने के लिये जनता के मतों के लिये प्रतियोगिता करनी है क्योंकि विभिन्न प्रतिस्पर्धी अभिजन वर्गों में सत्ता प्राप्ति के लिये प्रतियोगिता जारी रहती है। अतः वे स्वमेव अंततः जनता के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। यह सिद्धान्त अभिजन वर्ग के बीच निरन्तर चलने वाली प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता में विश्वास करता है। ब्राइस का मत उल्लेखनीय है- ''संभवतः किसी भी प्रकार के शासन को महान नेताओं की इतनी आवश्यकता नहीं होती है जितनी लोकतन्त्र को।'' लोकतन्त्र के लिये अभिजन अपरिहार्य है। सफल एवं प्रभावी लोकतन्त्र के लिये विशिष्ट वर्ग (अभिजन) बहुत आवश्यक है। डाई व जीगलर ने अपनी पुस्तक ''दि आमरनी ऑफ डेमोक्रेसी'' में स्पष्ट रूप से लिखा है कि लोकतन्त्र की यह विडम्बना है कि जनता का शासन होते हुए भी इसको बनाये रखने तथा कुशलता पूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ाने के लिये विशिष्ट वर्ग (अभिजन) पर निर्भर रहना होता है। प्राचीन समय से आजतक के लोकतन्त्र का बारीक अध्ययन करने ये यह स्पष्ट होता है कि प्रजातन्त्रीय मूल्य जनता के द्वारा सुरक्षित नही रखे जातेवरनये अभिजनों के द्वारा ही सुरक्षित रखे जाते हैं। पीटर ब्राचाश ने अपनी पुस्तक ''दी थ्योरी ऑफ डेमोक्रेटिक एलिटिज्म'' में लिखा है- ''लोकतान्त्रिक खेल के नियमों को बनाये रखने का उत्तरदायित्व जनता के कंधों पर न होकर, अभिजनों के ऊपर होता है।''

13.13 अभिजन वर्ग का परिसंचरण और प्रजातन्त्र

प्रजातन्त्र में अभिजन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रजातन्त्र में अभिजनों के बीच स्वतन्त्र प्रतियोगिता निरन्तर चलती रहती है। जो व्यक्ति सत्ता प्राप्त करने में सफल होता है व निरन्तर उसे बनाये रखने तथा जनता के बीच लोकप्रियता बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील रहता है। मैन्हाइम इसे अवसर की समानता मानता है। इसमें समाज के विभिन्न स्तरों के व्यक्ति व्यक्तिगत गुणों के आधार पर उस वर्ग में निर्वाचन के माध्यम से सम्मिलित किये जाते हैं। इस संबंध में शुम्पीटर का कथन उल्लेखनीय है- ''वह राजनीतिक निर्णय लेने का ऐसा संघात्मक समझौता है, जिसमें व्यक्ति निर्णय करने की शक्ति को जनता का मत प्राप्त करके प्रतियोगितापूर्ण संघर्ष के माध्यम से प्राप्त करते है।'' पैरेटो ने सर्वप्रथम अभिजन वर्ग के परिसंचरण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने इसमें स्पष्ट किया कि यह संघर्ष अभिजन तथा सामान्य वर्ग के बीच निरन्तर चलता रहता है। इस परिसंचरण सिद्धान्त में प्रतियोगिता (प्रतिस्पर्धा) अनवरत चलती रहती है। अभिजन वर्ग में परिवर्तन इस प्रतियोगिता के कारण होता रहता है।

मोस्का ने अभिजन के परिसंचरण को वैधानिक शासन तक सीमित न रखकर परिसंचरण की गतिशीलता का भी अध्ययन किया। उसने अभिजन वर्ग के सदस्यों की बौद्धिक, नैतिक गुणों को

उत्पन्न करने वाली सामाजिक परीस्थितियों एवं परम्पराओं का भी अध्ययन किया। मोस्का ने आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न नवीन समूहों एवं उनके शासन व्यवस्थाओं पर होने वाले प्रभावों का भी अध्ययन किया। उसने आगे यह भी स्थापित किया कि केवल अभिजन ही व्यवस्था में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी नहीं होते वरन अन्य समूहों, छोटे संगठनों की भी अपनी भूमिका होती है।

13.14 फाइनर का अभिजन संचरण का सिद्धान्त

फाइनर ने अभिजन संचरण की एक सटीक व्याख्या की। उसने अभिजन संचरण को एक स्वभाविक प्रक्रिया बताया जो निरन्तर चलती रहती है। राजनीतिक व्यवस्था में अभिजन अपनी स्थिति को बनाये रखने में प्रयत्नशील रहते हैं। वहीं दूसरी तरफ नये अभिजन उदयमान होने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। इसको सिद्ध करने के लिये उन्होंने 'फ्लास्क एवं संतरे' का मॉडल प्रस्तुत किया। इस मॉडल के द्वारा फाइनर ने सिद्ध किया कि लोकतन्त्र रूपी जल में राजनीतिक व्यवस्था पर कब्जा पाने के लिये अभिजन संघर्षशील रहते हैं। इसमें से कुछ उदयमान अभिजन राजनीतिक व्यवस्था तक पहुंचने का प्रयास करते हुए सफल होते हैं तथा कुछ अभिजन विस्थापित होते हैं तथा डूब जाते हैं। उदयमान अपनी क्षमता, योग्यता, प्रतिभा से ऊपर जाते हैं। प्रतिस्पर्धा के कारण जल में हलचल होती है और संतरे की स्थिति बदलने लगती है। जो पानी के ऊपर सत्ता (संतरे) पर आसीन थे वे प्रति अभिजन बनने लगते हैं। जो अपनी क्षमता खो देते हैं वे सतह (संतरे) से हटकर जल में डूबने लगते हैं। इस प्रकार लोकतन्त्र में केवल थोड़े लोग (समूह) ही सत्ता में बने रहते हैं। सत्ता में बने रहने के लिये इनमें संघर्ष चलता रहता है। सत्ता में वे ही रहते हैं जो योग्यता, प्रतिभा साबित करते हैं।

13.15 राजनीतिक अभिजन और समाजवाद

लोकतन्त्र का आधार स्वतन्त्रता है जबकि समाजवाद का आधार समानता है। वे आर्थिक समानता पर अत्याधिक जोर देते हैं। यह समाजवादी विचार शोषण के विरूद्ध मजदूर वर्ग के संघर्ष एवं उनके द्वारा संगठित क्रान्ति के द्वारा व्यवस्था परिवर्तन पर बल देता है। मोस्का, पैरेटो तथा मिचल्स वर्ग विहीन समाज के विचार से सहमत नहीं है। वे समाजवाद में स्थापित सत्तारूढ़ समूह को अभिजन नहीं मानते। वे इसमें संघर्ष (प्रतिस्पर्धा) तथा परिवर्तन का अभाव देखते हैं। साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्था पर रेमण्ड एरन का कथन प्रांसगिक है- ''यहाँ पर प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की अपेक्षा अल्पसंख्यक के पास निश्चित ही अधिक शक्ति है क्योंकि आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति उसमें समाहित है। राजनीतिक टेªड यूनियन, समस्त संस्थायें, समस्त व्यक्तिगत समूह (व्यवसायिक समूह) वास्तव में अभिजन के प्रतिनिधियों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। ''अभिजन सिद्धान्त के समर्थन मार्क्स के इस विचार को भी नकार देते हैं जिसमें मार्क्स मानता था कि समाज में केवल दो वर्ग होते हैं। इन दो वर्गों में निरन्तर संघर्ष चलता है। सभी घटनाओं के पीछे आर्थिक कारण होते हैं। अभिजनवादी

समाज में अनेक वर्गों, समूहों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। इस संबंध में मैक्स बेबर कहता था- ''समस्त परिवर्तन आर्थिक कारणों से नहीं होते हैं। सामाजिक संरचनायें उत्पादन एवं तकनीक को प्रभावित करती है। वे ऐसे सिक्के के समान है जो सरलता से नहीं पिघलते हैं।''

13.16 विकासशील देशों में अभिजन

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दुनिया में साम्राज्यवादी शक्तियों का पराभाव प्रारम्भ हुआ और नये लोकतान्त्रिक देशों का उदय हुआ। नई राजनीतिक एवं शासन की व्यवस्था के साथ इन देशों में कुछ सामाजिक एवं राजनीतिक चुनौतियाँ भी सामने आइ। स्वतन्त्रता संघर्ष में तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक अभिजन की महती भूमिका थी तथा आजादी के बाद भी वे अपने पुराने गौरव के अनुरूप ही नई भूमिका तलाश रहे थे। इन नवोदित राष्ट्रों के अभिजन को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। एडवर्ड मिल्स ने इन देशों की सामस्याओं का व्यापक विश्लेषण करते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की तीन अवस्थायें बतायी हैं। विकासशील अथवा नवोदित राष्ट्रों के अभिजनों के विभिन्न रूप हैं। शिल्स के अनुसार जहाँ उच्च बुद्धिजीवी विचार सृजन एवं समाज को मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। मध्यम बुद्धिजीवी पत्रकारिता, अध्यापन, वकालत का कार्य करते हैं। समाज के समक्ष उत्पन्न नई चुनौतियों का समाधान भी इस अभिजन वर्ग से ही आता है। कतिपय यही कारण है कि किसी भी शासन व्यवस्था में अभिजन (विशिष्ट) वर्ग का विशेष महत्व होता है। उनके प्रभावी एवं कुशल नेतृत्व के बिना राष्ट्र निर्माण नहीं किया जा सकता है। एक सफल लोकतन्त्र के लिये विशिष्ट वर्ग में निम्न विशेषतायें आवश्यक हैः-

1.लोकतन्त्रीय मूल्यों तथा आदर्शों ने विशिष्ट वर्ग का विश्वास एवं आस्था।

2.विशिष्ट वर्ग का चयन समाज के विभिन्न वर्गों से होना चाहिए। इससे सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व एवं विश्वास विशिष्ट वर्ग में हो जायेगा।

3.प्रभावी शासन संचालन के लिये आवश्यक है कि जनता अनावश्यक अभिजन वर्ग के कार्यों एवं नीतियों में दखल न दें।

4.विशिष्ट वर्ग (अभिजन) का ज्ञान, योग्यता, तथा अनुभव उच्चकोटि का हो। जिससे वे जनसामान्य का सम्मान स्वयं अर्जित कर सके।

5.अभिजनों में सत्ता के लिये प्रतियोगिता हो तो उसका माध्यम चुनाव हो। चुनाव द्वारा ही अभिजनों को शासन का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

6.अभिजन (विशिष्ट) वर्ग खुला एवं व्यापक होना चाहिए। इसमें सदैव योग्य एवं क्षमतावान व्यक्ति के प्रवेश का अवसर बना रहना चाहिए।

13.17 मूल्यांकनः-

पिछले कई दशकों से अमेरिका के व्यवहारवादियों तथा वैज्ञानिक आधार पर राजनीतिक प्रणाली का अध्ययन करने वालों ने राजनीतिक जीवन की वास्तविकता के आधार पर इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। आज व्यवहारिक आवश्यकताओं को देखते हुए लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही अनेक दोषों को समेटे हुए वर्तमान व्यवस्था को बनाये रखने का प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त बन जाता है। प्रत्येक सिद्धान्त से यह आशा रखी जाती है कि वह केवल वास्तविकता का बयान ही नहीं करेवरनवास्तविक समस्याओं का आदर्शों , मूल्यों के अनुरूप समाधान प्रस्तुत करे । इस सिद्धान्त की आलोचना डंकन तथा ल्यूक्स, डेविस, वांटमोर, वे, गोल्ड स्मिथ, वाकर वैकरैक, पेटसमैन, प्लामनाज आदि ने की। इन विद्वानों द्वारा की गयी आलोचना का मुख्य आधार निम्न हैः-

1.यह सिद्धान्त लोकतन्त्र से साधारण व्यक्ति को दूर करना चाहता है।

2.यह सिद्धान्त प्राचीन विशिष्ट वर्गीय व्यवस्था को बनाये रखना चाहता है अतः यह रूढ़िवादी सिद्धान्त है।

3.विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त वर्तमान व्यवस्था के साथ संतुलन स्थापित नहीं कर सकता। समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता से वर्ग संघर्ष जन्मता है। बिना उसे समाप्त किये सामंजस्य एवं सहयोग की कल्पना नहीं की जा सकती है।

4.यह सिद्धान्त लोकतन्त्र को केवल राजनीतिक व्यवस्था ही मानता है। यह आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था की अनदेखी करता है।

5.यह सिद्धान्त विचारधारा तथा मूल्यों को महत्वपूर्ण नहीं मानता है।

6.यह सिद्धान्त मानव को साधन तथा शासन को साध्य मानता है।

7.यह सिद्धान्त अभिजन (नेताओं) को विशेष महत्व देता है। यह आमलोगों को विशेष महत्व नहीं देता है।

8.यह सिद्धान्त जनमत की पूर्णतः अनदेखी करता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि जनमत का निर्माण अभिजन (विशिष्ट) वर्ग करता है।

9.यह सिद्धान्त समानता को न तो आवश्यक मानता है और न ही स्वभाविक मानता है।

10.विशिष्ट वर्ग में परिवर्तन का नियम देखने में ठीक दिखता है परन्तु व्यवहार में अव्यवहारिक लगता है क्योंकि कोई भी अपनी मजबूत स्थिति तथा विशेषाधिकार को आसानी से नहीं छोड़ता है।

11.विशिष्ट वर्ग की योग्यता, क्षमता का आधार अस्पष्ट है। इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी है जो व्यक्ति को समाज में मजबूत एँव प्रभावशाली बनाते हैं।

अभ्यास के प्रश्नः-

1निम्न में से कौन अभिजन सिद्धान्त के समर्थक है-

(अ) पैरेटो (ब) मोस्का (स) मिचेल्स (द) सभी

२.पैरेटो अभिजन को कितने भाग में बाँटता है-

(अ) 1 (ब) 2 (स) 3 (द) 4

3. The Power elite पुस्तक का लेख कौन है-

(अ) पैरेटो (ब) मोस्का (स) सी0 राइट मिल्स (द) मिचेल्स

4. 'The Rulling elite' पुस्तक का लेखक हैं-

(अ) मिचेल्स (ब) बर्नहाइम (स) लासवैल (द) कोई नहीं

5.यदि समानता से प्रजातन्त्र भ्रष्ट होता है तो अति समानता से यह नष्ट होता है- यह कथन है-

(अ) टेलर (ब) मॉटेस्क्यू (स) वोथा (द) वे

6.सी0 राइट मिल्स ने अभिजन के लिये शब्द प्रयोग किया -

(अ) शासक वर्ग (ब) शक्ति अभिजन (स) दोनों (द) कोई नहीं

13.18 सारांश

राजनीतिक अभिजन का सिद्धान्त एक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। राजनीतिक अभिजन सिद्धान्त को कुछ आलोचना का सामना करना पड़ता है परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वास्तव में सत्ता में कुछ लोग ही प्रभावशाली होते हैं। एक बार सत्ता में काबिज होने के बाद वे निरन्तर अपनी मजबूत स्थिति को बनाये रखने के लिये प्रयासरत रहते हैं। वे कई बार इस हेतु गलत एवं अनैतिक माध्यमों का भी प्रयोग करने से किसी प्रकार का परहेज नहीं करते। यह भी सत्य लगता है कि विशिष्ट अथवा अभिजन वर्ग स्थायी नहीं होता है। इनकी स्थिति ने परिवर्तन समय के साथ होता रहता है। लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त न केवल सत्ता में कुछ लोगों के प्रभाव को स्वीकार करता है।वरनअभिजन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने की भी वकालत करता है। वे जनहित में अभिजन की शक्ति को स्वस्थ प्रतियोगिता तथा जनता के नियन्त्रण के द्वारा सीमित करने की बात करता है। वे विकेन्द्रित लोकतान्त्रिक संस्थाओं का जाल बिछाकर अभिजन शक्ति का समायोजन लोकतन्त्र की आवश्यकतानुसार करने का समर्थन करते हैं।

13.19 शब्दावली

अभिजनः- इसका तात्पर्य है विशिष्ट। वह जो सामान्य लोगों से अलग शक्ति, पहचान एवं प्रभाव रखता हो अभिजन कहलाता है।

अल्पसंख्यकः- कम संख्या में पाये जाने वाले समूह को अल्पसंख्यक समूह या समुदाय कहा जाता है।

कुलीन वर्गः- यह प्राचीन व्यवस्था में पाया जाने वाला सम्पन्न एवं प्रभावी वर्ग होता था। इनका प्रभाव समाज, शासन, आर्थिक गतिविधियों में होता था।

पूँजीपति वर्गः- यह वह वर्ग था जो उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण रखता है। इनका नियन्त्रण उद्योगों एवं व्यापार पर होता है। कार्ल मार्क्स इनके विरूद्ध क्रान्ति कर उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व स्थापित कर समानता स्थापित करना चाहता था।

13.21 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त
2.खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें
3.सिंघल एस0सी0, तुलनात्मक राजनीति
4.गाबा , ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा
5.जौहरी, जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त

13.22 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

1.द,2.ब,3.स,4.स,5.ब,6.ब

13.23 सहायक एवं उपयोगी सामग्री

1.सोडारो माइकल, कम्परेटिव पॉलिटिक्स
2.गेना सी0वी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें
3.गाबा , ओ0पी0, तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा
4.शुक्ला वी0 राजनीतिक सिद्धान्त
5.गाबा, ओ0पी0 समकालीन राजनीति सिद्धान्त

13.24 निबन्धात्मक प्रश्न

1.अभिजन की धारणा से क्या समझते है? इस सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
2.राजनीतिक अभिजन क्या है? पैरेटो एवं मोस्का के विचारों का विश्लेषण कीजिये।
3.लोकतन्त्र के विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त पर निबन्ध लिखिये।
4.अभिजन वर्ग के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

इकाई संख्या 14 : शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन

इकाई संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

14.4 शक्ति पृथक्करण की आवश्यकता

14.5 मांटेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषा

14.6 शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का प्रभाव

14.7 शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की आलोचना

14.8 अवरोध संतुलन सिद्धान्त का अर्थ

14.9 अमेरिका का अवरोध संतुलन

14.10 भारत में शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन

14.11 अवरोध संतुलन के प्रकार

14.12 अवरोध संतुलन सिद्धान्त की आलोचना

14.13 निष्कर्ष

14.14 सारांश

14.15 शब्दावली

14.16 अभ्यास के प्रश्न

14.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.18 सहायक उपयोगी सामग्री

14.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.20 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन के सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे। यह आधुनिक समय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एक है। इस सिद्धान्त ने आधुनिक शासन व्यवस्था के लिये न केवल एक कसौटी का निर्माण कियावरननागरिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा की गारण्टी प्रस्तुत की। मांटेस्क्यूने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को व्यवस्थित ढ़ग से स्थापित किया। उनसे पूर्व यूनानी विचारक सिसरो, प्लेटो, अरस्तू के विचारों में इसके बीज दिखायी देते हैं। उनके बाद लॉक, ब्लैकस्टोन आदि ने इसे आगे बढ़ाया। अवरोध संतुलन का सिद्धान्त का उदय मुख्य रूप से शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त में उत्पन्न हो रही व्यवहारिक समास्याओं का हल प्रस्तुत करने के लिये हुआ। यह सिद्धान्त पूर्ण पृथक्करण के स्थान पर सरकार के अंगों के सुचारू संचालन के लिये सहयोग तथा नागरिक स्वतन्त्रता को बहाल रखने के लिये अंगों के द्वारा एक दूसरे को नियन्त्रित करने की व्यवस्था की गई। यह सरकार के अंगों के आपसी सहयोग एवं एक दूसरे को नियन्त्रित करने का आदर्श संतुलन पर आधारित सिद्धान्त है। इस इकाई में शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन सिद्धान्त के अर्थ, विशेषतायें, गुण-दोष एवं शासन पर प्रभाव का व्यापक विश्लेषण किया जायेगा।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन के उपरान्त हम-

- शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का अर्थ एवं प्रभाव को जान सकेंगे।
- शक्ति पृथक्करण का आधुनिक शासन व्यवस्था में महत्व को समझ सकेंगे।
- मांटेस्क्यूके शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का प्रभाव एवं उसकी प्रमुख आलोचनाओं का समझ सकेंगें।
- अवरोध संतुलन सिद्धान्त का अर्थ एवं उपयोगिता को समझ पायेंगें।
- आधुनिक समय में अवरोध संतुलन सिद्धान्त की विश्व की शासन व्यवस्थाओं में भूमिका का मूल्यांकन कर पायेंगे।
- अमेरिका तथा भारत में शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन की समझ सकेंगें।

14.3 शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन

शक्ति पृथक्करण का अर्थ एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-प्रारम्भ से ही राजनीति शास्त्र में शक्ति को लेकर राजवैज्ञानिकों में संशय एवं चिन्ता रहीं। वे सदैवराजनीतिकशक्ति के प्रयोग एवं प्रभाव को लेकर

खेमो में बंधे रहे। राजनीतिक, संवैधानिक, शक्ति का प्रयोग किस प्रकार हो? उसका क्या प्रभाव नागरिकों की स्वतन्त्रता पर है? इन प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास अद्यतन चल रहा है। मानव सदैव से ही राजनीतिक शक्ति के सदुपयोग के लिये एक के बाद दूसरी राजनीतिक व्यवस्था, संरचना का निर्माण करता रहा है। इन सबके बावजूद मानव ने आजतक ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की है जो शत् प्रतिशत राजनीतिक शक्ति के दुरूपयोग से बचाव की गारण्टी दे सके। राजनीतिक शक्तियों के दुरूपयोग से बचाव की अनेक व्यवस्थाओं एवं संस्थागत संरचनाओं का मूल आधार यह है कि शक्ति के प्रयोगकर्ताओं पर ऐसे नियन्त्रण लगाये जायें जिससे प्रयोगकर्ता इसका दुरूपयोग न कर पाये। लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक शक्ति का प्रयोग प्रायः कुछ लोगों के द्वारा किया जाता है। स्वेच्छाचारी अथवा तानाशाहीपूर्ण शासन व्यवस्था में निर्णय लेने एवं शक्ति प्रयोग का अधिकार एक व्यक्ति के हाथ में रहता है। अतः सत्ता के दुरूपयोग से बचाव के लिये इन्हीं निरकुंश शासकों से संबंधित होता है। इनको नियन्त्रित करने से समस्या का समाधान दिखाई पड़ता है। इनको नियन्त्रित करने के तरीके में एक तरीका सत्ता का संस्थाकरण करना है। दूसरे शब्दों में कहे तो शक्ति को व्यक्ति के स्थान पर संस्था में निहित करना है। इस प्रकार राजनीतिक शक्ति का विभाजन कर उसे विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्तियों में बांटकर प्रयोगकर्ता के मनमानेपन पर रोक लगाने का तरीका लंबे समय से चलन में है तथा सफल है। इस संबंध में जोसेफ ला पालोम्बरा का कथन उल्लेखनीय है- ''शक्तियों का पृथक्करण या विभाजन शक्तियों के मनमाने प्रयोग या इनके निरपेक्ष दुरूपयोग से कुछ सुरक्षा व्यवस्था के माध्यम के रूप में, मानव के सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक खोजों में से एक है।''

कतिपय यही कारण है कि राजनीतिक शक्तियों को विभाजित कर उसके प्रयोग को नियन्त्रित करने का प्रयत्न रोमन व्यवस्था में दिखता है। इस संबंधमेंकार्ल जे0 फ्रेडरिक ने अपनी पुस्तक ''कॉस्टीट्यूशनल गर्वनमेट एण्ड डेमोक्रेसी'' में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया है-'' आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं की पेचीदगियों एवं राज्य शक्ति के नियन्त्रण के अनौपचारिक उपकरणों के विकास के बावजूद शक्ति विभाजन एवं शक्ति पृथक्करण आज भी एवं संविधानवाद की एक मात्र पक्की गारण्टी है।''

शक्ति पृथक्करण से शक्ति नियन्त्रित करने का चलन केवल आधुनिक लोकतन्त्रों की विशेषता नहीं है। कम लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं अथवा तानाशाहीपूर्ण शासन व्यवस्थाओं में भी तानाशाह अपनी शक्ति सुरक्षा के लिये शक्ति बँटवारे अथव शक्ति वितरण के माध्यम से ठोस नियन्त्रण व्यवस्था स्थापित कर अपने अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति या गुट को शक्ति के दुरूपयोग करने से रोके रखता है। इस प्रकार स्पष्ट है शक्ति के दुरूपयोग से बचाव के लिये शक्ति नियन्त्रण की सुव्यवस्था शक्ति पृथक्करण द्वारा प्राचीन काल से ही चलनमेंहै।

शक्ति के दुरूपयोग रोकने के लिये शक्ति का संस्थानीकरण तथा उसके बँटवारे का चलन प्राचीन समय से चला आ रहा है। शक्तियों का संस्थाकरण करना वास्तव में शक्तियों का संविधान द्वारा अथवा विधि द्वारा नियन्त्रित करना है। संविधान द्वारा सरकार की स्थापना ही अपने आप में शक्ति

नियन्त्रण की व्यवस्था बन जाती है। संविधान द्वारा शक्तियों को दो प्रकार से नियन्त्रित किया जाता हे। प्रथम विधि द्वारा शक्तियों का कार्यात्मक विभाजन किया जाता है। दूसरा विधि द्वारा राज्य की शक्तियों का प्रादेशिक एवं भौगोलिक विभाजन किया जाता है। सरल शब्दों में कहें तो शक्तियों का कार्यात्मक विभाजन ही शक्ति पृथक्करण है। राज्य शक्ति का भौगोलिक विभाजन संघात्मक व्यवस्थाओं में दिखाई पड़ता है। दोनों ही के द्वारा शक्ति को एक स्थान पर केन्द्रित नहीं होने दिया जाता है। इससे शक्ति के दुरूपयोग की संभावना कम हो जाती है।

मानव इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण है कि शक्ति को शक्ति के द्वारा ही नियन्त्रित किया जाता रहा है। शक्ति को नियन्त्रित करने के लिये आवश्यक है कि उसको नियन्त्रित करने वाली संस्था भी उतनी शक्तिशाली एवं प्रभावशाली हो। अतः राजनीतिक शक्तियों के दुरूपयोग को रोकने के लिये, उनको नियन्त्रित करने की व्यवस्था शासन शक्तियों को पृथक करके की जाती है। इसके निम्नलिखित निहितार्थ होते हैः-

1.शक्ति, शक्ति द्वारा संतुलित हो जाती है।

2.शक्ति ही शक्ति की नियन्त्रक बन जाती है।

3.शक्ति केवल अपने अधिकार क्षेत्र में सीमित रहती है।

4.शक्ति दूसरे अंगों के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण करने असमर्थ हो जाती है।

5.सारे शक्ति (अंग) समान हो जाते है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि राज्य शक्ति की अभिव्यक्ति साधारणतया तीन रूपों में होती है। राज्य शक्ति का एक पहलू राज्य की इच्छा से सम्बन्धित होता है। इसकी अभिव्यक्ति के लिये संस्थागत संरचना को ही विधानमण्डल (विधायिका) कहते हैं। व्यवस्थापिका ही विधान बनाकर राज्य की इच्छा की अभिव्यक्ति करती है। यह राज्य शक्ति की व्यवहारिक अभिव्यक्ति की संस्था है। राज्य शक्ति की इच्छा को कार्यरूप देने (Execute)वाली संरचनात्मक व्यवस्था राजशक्ति का दूसरा भाग अर्थात् कार्यपालिका होती है। राजशक्ति का तीसरा भाग विधियों को क्रियान्वित करने, उसे लागू करने से संबंधित होता है जिसे न्यायपालिका के नाम से जाना जाता है। व्यवस्थापिका द्वारा बनाये विधियों को कार्यपालिका के द्वारा क्रियान्वित नीतियों का पालन सही प्रकार से हो रहा है अथवा नहीं, इसका निर्धारण करने का दायित्व न्यायपालिका का होता है। न्यायपालिका ही तय करती है कि कानून संविधान अथवा विधि के अनुरूप है अथवा नहीं। इस संबंध में उसका फैसला अंतिम होता है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि कानून बनाने का कार्य व्यवस्थापिका का है, उसे लागू करने का कार्य कार्यपालिका का है तथा कानून को लागू होने में आ रही बाधाओं को रोकने का दायित्व न्यायपालिका का है। ये तीनों ही सरकार के तीन अंग हैं।

ये तीनों अंगों को लंबे समयसे अलग-अलग स्वीकार किया जाता है। कुछ विद्वानों का यहाँ तक मानना है कि शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त उतना ही प्राचीन है जितना ''राज्य'' नामक संस्था है। यह कथन पूर्णतः सही प्रतीक नहीं होता है। यह जरूर सत्य है कि प्राचीन काल से यूनानी चिन्तन

में राज्य के तीन अंगों को पृथक मान लिया गया था। प्लेटो ने अपनी पुस्तक ''लांज'' में मिश्रित राज्य का विचार प्रतिपदित किया। ''अरस्तू'' ने और आगे बढ़कर सरकार को असेम्बली, मजिस्ट्रेट तथा जुडीशियरी नामक तीन भागों में बांटा था। अरस्तू ने सर्वप्रथम सरकार के वैधानिक, प्रशासनिक तथा न्यायिक रूप का संकेत दिया तथा इनके पृथक का भी संकेत दिया। इसी प्रकार रोम के गणतन्त्र में भी शासन के अंगों का विभाजन दिखाई पड़ता है। इस संबंध में रोमन विचारक पोलिबियस तथा सिसरो ने भी संकेत दिये। इन सभी उदाहरणों में स्पष्ट रूप से शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया गया और न ही इसे सुव्यवस्थित रूप से स्थापित किया गया। इस संबंध में जॉन लॉक के राज्य संबंधी विचारों की अनदेखी नहीं की जा सकती। उन्होंने ने भी राजशक्ति को विधायिका, शासन संबंधी तथा राजनम संबंधी शक्तियों में विभाजित करने की बात की थी।
उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि सरकार को शक्तियों के विभाजन का विचार अति प्राचीन है परन्तु इस संबंधमेंसर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य ''मॉटेस्क्यू'' ने किया। उन्होंने इसे एक सुव्यवस्थित सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया। यहाँ पर हरमन फाइनर का कथन उल्लेखनीय है ''व्यक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त प्रथम बार पूर्ण रूप में केवल मांटेस्क्यूद्वारा ही प्रतिपादित किया गया।'' शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त मांटेस्क्यूका अपना ही है यद्यपि इसके कुछ संकेत जॉन लौक की पुस्तक ''सिविल गर्वनमेंट'' में भी मिलते प्रतीक होते है। इसमें लौक ने स्पष्ट किया कि व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका संबंधी कार्यो को पृथक रूप अलग-अलग व्यक्तियों के द्वारा किया जाना चाहिए। इन सबके बावजूद शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का जनक मांटेस्क्यूही है। उन्होंने इस सिद्धान्त को प्रतिपदित कर ''आधुनिक शासन व्यवस्था'' तथा ''विधि के शासन'' का मार्ग प्रशस्त किया। इस सिद्धान्त के द्वारा मानव स्वतन्त्रता को निर्बाध बनाने का अप्रतिम कार्य किया। यहाँ सिद्धान्त मानव जाति के इतिहास में एक 'मील का पत्थर' साबित हुआ। यहाँ पर 'ब्लैकस्टोन' का उल्लेख करना भी आवश्यक हो जाता है जिन्होंने 'शक्ति पृथक्करण'' के सिद्धान्त को और आगे ले जाकर राजनीति शास्त्र के महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में प्रतिस्थापित किया।

14.4 शक्ति पृथक्रण की आवश्यकता

शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त सरकार के तीनों अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के पृथक अस्तित्व एवं स्वतन्त्र रूप से कार्य करने पर बल देता है। यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि यदि तीनों अंग स्वतन्त्र एवं पृथक होगें तो मानव स्वतन्त्रता सुरक्षित रह सकेगी। प्लेटो, अरस्तू, पोलीवियस, सिसरो, लाँक आदि विचारकों ने शक्ति विभाजन को मानव स्वतन्त्रता एवं कुशल शासन के लिये आवश्यक माना। लाँक से पूर्व के विचारक इस सिद्धान्त की व्यापक एवं सपष्ट व्याख्या नहीं कर पाये थे। लाँक प्रथम विचारक था जिसने शक्ति पृथक्करण को कुशल शासन के लिये आवश्यक बताया। उसने पहली बार यह स्पष्ट किया कि व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, तथा न्यायपालिका के कार्य एक दूसरे से अलग हैं तथा इनको एक नहीं समझा जा सकता है। यहाँ पर यह

उल्लेखनीय है कि लॉंक व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के कार्यों के पृथक्करण पर अत्याधिक जोर देता था। उसने न्यायपालिका के पृथक्करण पर उसकी स्वतन्त्रता पर विशेष बल नहीं दिया। व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका को एक दूसरे से स्वतन्त्र एवं अलग रखने का विचार एक महत्वपूर्ण विचार था। यह लॉंक का उल्लेखनीय योगदान है। इस संबंध में लॉंक ने लिखा है-''जिन व्यक्तियों के हाथ में विधि निर्माण की शक्ति होती है उसमें विधियों के क्रियान्वयन की शक्ति को अपने हाथ में लेने की प्रबल इच्छा हो सकती है क्योंकि शक्ति हथियाने का प्रलोभन मनुष्य की महन दुर्बलता है।''

शक्तिपृथक्करणकी आवश्यकता एवं औचित्य को बड़े ही स्पष्ट रूप से मांटेस्क्यू ने सिद्ध किया। उसने फ्रांस में लुई चौदहवें के तानाशाहीपूर्ण शासन को बड़े नजदीक से देखा था। फ्रांस के बाद इंग्लैण्ड में प्रवास के दौरान उसने वहाँ के राजा की मर्यादित सत्ता को देखा था। उस समय इंग्लैण्ड के राजा की सत्ता संसद एवं मत्रिमण्डल के उदय के साथ सीमित हो गई थी। वहाँ की बेहतर व्यवस्था को देखकर मांटेस्क्यू इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राजशक्ति का पृथक्करण ही नागरिक स्वतन्त्रता एवं सुशासन का आधार है। इसी से प्रभावित होकर उसने शक्ति पृथक्करण का व्यापक एवं स्पष्ट सिद्धान्त प्रस्तुत किया। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है। जिस इंग्लैण्ड की व्यवस्था से प्रेरित होकर वह शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त दे रहा था उस इंग्लैण्ड में संसदीय शासन व्यवस्था होने के कारण व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका में घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। वहाँ पर शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त नहीं पाया पाया जाता है। इसके बावजूद भ्रमवश ही उसने जो शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया वह मांटेस्क्यू की राजनीतिशास्त्र को अमूल्य देन है। पहली बार उसने ही शक्ति पृथक्करण को स्वतन्त्रता की पहली एवं अंतिम आवश्यकता माना था। सी0एफ0 स्ट्रांग ने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के महत्व को समझते हुए लिखा-''शासन के तीन विभागों - विधानमण्डल, कार्यपालिका, न्यायपालिका का उदय वास्तविक कृत्यों के विशेषीकरण ;(Specialization of functions) की प्रक्रिया के फलरूवरूप हुआ। यह प्रक्रिया सभ्यता की प्रगति उसके कार्यक्षेत्र की वृद्धि और उसके उपकरणों की बढ़त हुई जटिलता के साथ ही सिद्धान्त एवं व्यवहार की समस्त शाखाओं में दृष्टिगोचर हुई है। प्रारम्भ में राजा सभी शक्तियों का स्वामी था परन्तु बाद में इन शक्तियों को दूसरे को सौंपने की प्रकृति का विकास हुआ। कार्यों का विशेषीकरण एक आवश्यकता थी और उसके परिणामस्वरूप प्रत्यायोजन एक सीधा सादा प्रयास था। राजा की शक्ति नियन्त्रित की जाने लगी और संवैधानिक साधनों का विचार होने लगा। इसी से एक सिद्धान्त का जन्म हुआ।''

लॉंक, मांटेस्क्यू तथा स्ट्रांग तीनों ने ही शक्ति पृथक्करण को आवश्यक माना तथा इसको अलग-अलग रूप से प्रस्तुत किया। सभी विद्वानों ने शक्ति पृथक्करण की उपयोगिता को अलग-अलग तरीके से सिद्ध किया। आधुनिक समय में भी यह सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी माना जाता है। आज न्यायपालिका को इसी सिद्धान्त के माध्यम से व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका से स्वतन्त्र एवं दबावमुक्त रखने की कोशिश की जाती है। जिससे वे स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष रूप से संविधान की सुरक्षा

एवं नागारिक अधिकारों की रखा कर सके। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता हेतु शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आवश्यकता हमेशा रहती है। इस संबंध में हरमन फाइनर का कथन महत्वपूर्ण है-'' शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त का राजनीतिक विज्ञान में तब तक विशेष महत्व नहीं रहा जब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता का मुद्दा आवश्यक नहीं बन गया। ''

14.5 मांटेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषा

साधारण शब्दों में कहें तो एक दूसरे से स्वतन्त्र होना तथा एक दूसरे के कार्यो में हस्तक्षेप नहीं करना ही शक्ति पृथक्करण है। इस सिद्धान्त में हय स्वीकार किया जाता है कि सरकार के तीनों अंगों को अपने-अपने कार्यों को करना चाहिए तथा दूसरे अंगों के कार्यक्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। यह प्रक्रिया शासन के हित में भी है तथा नागरिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिये भी आवश्यक है। इस सिद्धान्त के मूलमेंयह भावना छिपी है कि जब-जब सरकार के तीनों अंगों की शक्तियों का केन्द्रीकरण होता है तब-तब निरंकुश शासन, अत्याचार अपने चरम पर पहुँच जाता है। इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि शक्तियों के केन्द्रीकरण के स्थान पर उनका विकेन्द्रीकरण होना चाहिए । विकेन्द्रीकरण सत्ता से मानव पर होने वाले अत्याचार, शोषण पर रोक लग सकती है। सरकार के तीनों अंगों के पृथक एवं स्वतन्त्र होने से वे ने केवल अपने क्षेत्र में कार्य करते हैंवरनदूसरे अंग के अतिक्रमण के प्रयास पर विराम भी लगाते हैं। इससे स्वभाविक रूप से एक संतुलन कायम होता है। कतिपय यही कारण है शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त से आगे जाकर एक नया सिद्धान्त विकसित हुआ जिसे हम अवरोध एवं संतुलन का सिद्धान्त भी कहते हैं।

मांटेस्क्यू ने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखा था-'' प्रत्येक सरकार में तीन प्रकार की शक्तियाँ होती हैः- व्यवस्थापन संबंधीः- इस शक्ति के अनुसार शासक स्थाई या अस्थाई कानूनों का निर्माण करता है तथा पहले से बने कानूनों का संशोधन तथा समापन करता है। दूसरी शासन संबंधीः-जिसके अनुसार वह संधि करता है अथवा युद्ध की घोषणा करता है। अन्य देशों को राजदूत भेजता है तथा उनके राजदूत को अपने यहाँ स्थान देता है। सार्वजनिक सुरक्षा की स्थापना तथा आक्रमणों से रक्षा की व्यवस्था करता है। तीसरी न्याय संबंधी- इस शक्ति के अनुसार वह अपराधियों को दण्ड देता है। अथवा व्यक्तियों के झगड़ों का निपटारा करता है। व्यवस्थापन तथा शासनसंबंध शक्ति जब किसी एक व्यक्ति अथवा शासकों के समूह में निहित हो जाती है, तो स्वतन्त्रता का कोई अस्तित्व नहीं रहता है। इस दशा में इस बात का भय रहता है मिक एक राजा अथवा सत्ता अत्याचारी कानूनों का निर्माण कर ले तथा उन्हें अत्याचारपूर्ण ढंग से लागू करे। इसी प्रकार यदि न्याय संबंधी शक्ति को व्यवस्थापन अथवा शासन सबंधी शक्ति से अलग नहीं किया गया तो भी स्वतन्त्रता संभव नहीं होती है। यदि वह व्यवस्था के साथ जोड़ दी जायेगी तो प्रजा के जीवन तथ उसकी स्वतन्त्रता को स्वेच्छाचारी नियन्त्रण का शिकार बनना पड़ेगा क्योंकि उस दशा में

न्यायकर्ता ही व्यवस्थापक होगा। यदि इसे (न्याय शक्ति) शासन शक्ति के साथ जोड़ दिया जायेगा तो न्यायकर्ता का व्यवहार हिंसक एवं अत्याचारी हो जायेगा।''

मांटेस्क्यूके शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के विश्लेषण से मुख्य रूप से निम्न तथ्य उभरते हैः-

1.सरकार के तीनों अंगों का स्वतन्त्र अस्तित्व है तथा तीनों की अलग-अलग शक्तियाँ है।

2.स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने के लिये तीनों शक्तियों का केन्द्रण नहीं होना चाहिए।

मांटेस्क्यूयह स्वीकार करता है कि सरकार के तीनों अंगों की अपनी अलग विशिष्ट पहचान तथा कार्यक्षेत्र है। अतः इनको अलग रखा जा सकता है। सभी राज्यों में , सरकारों में इन कार्यों का संपादन किया जाता है। यदि इन कार्यों का निष्पादन एक स्थान से होना प्रारम्भ होता है तो नागरिक स्वतन्त्रता गंभीर संकट में पड़ जाती है। इसी से बचने के लिये मांटेस्क्यूशक्ति के केन्द्रकरण रोकने पर जोर देता है। वह तीनों अंगों को स्वतन्त्र एवं समान रूप से शक्ति सम्पन्न बनाने पर जोर देता है। वह उनके स्वतन्त्र क्रियान्वयन को भी आवश्यक बताता है। जब तीनों अंग समान रूप से शक्ति सम्पन्न होगें तथा तीनों का स्वतन्त्र अस्तित्व होगा तो कोई भी दुरूपयोग करने की स्थिति में नहीं होगा। इसके साथ ही प्रत्येक अंग दूसरे के कार्यों में दखल नहीं दे पायेगा। मांटेस्क्यूशक्ति के केन्द्रीकरण के स्थान पृथक्करण पर बल देता है। वह मानता है कि तीनों ही शक्तियाँ विशिष्ट है अतः उनको अलग ही रहना चाहिए। जब वे एक स्थान पर केन्द्रित होगी तब मानव स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जायेगी।

मांटेस्क्यूस्वतन्त्रता को श्रेष्ठतम् मानवीय आवश्यकता एवं आवश्यक गुण मानता है। वह स्पष्ट रूप से कहता है कि राज्य नामक संस्था के उदय के साथ राजनीतिक स्वतन्त्रता का महत्व बढ़ जाता है। राजनीतिक स्वतन्त्रता को स्पष्ट करते हुए वह लिखता है- ''जो हम चाहे उसे करने तथा जो न चाहे उसे न करने की स्वतन्त्रता ही राजनीतिक स्वतन्त्रता है।'' दूसरे शब्दों में कहे तो ''विधि के अनुसार व्यवहार ही स्वतन्त्रता है।''

वह स्पष्ट करता है कि स्वतन्त्रता मानव का आवश्यक गुण है और मानव को सदैव स्वतन्त्रता की आवश्यकता होती है। हर प्रकार के सरकारों में इस अनिवार्य मानवीय आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती है। इसके लिये एक उदार एवं मानवीय सरोकार से जुड़ी सरकार की आवश्यकता होती है। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि सरकार के अंगों द्वारा शक्ति का दुरूपयोग न किया जाय। वह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति के दुरूपयोग रोकने के लिये आवश्यक है कि शक्ति का केन्द्रीकरण रोका जाय। वह इतिहास के अनुभव से यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि ''निरन्तर का अनुभव यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति जिसके पास सत्ता है उसकी प्रवृत्ति उस शक्ति के दुरूपयोग करने की होती है और वह अपनी शक्ति को तब तक बढ़ाता जाता है जब तक उसका सामना नियन्त्रक सीमा से नहीं होता है।'' वह स्पष्ट करता है कि यह नियन्त्रक एक ही स्थिति में हो सकता है। जब शक्ति को ही शक्ति का नियन्त्रक व सन्तुलक बना दिया जाय। अतः उसकी यह मान्यता थी कि शक्ति के तीन केन्द्र अलग-अलग होने चाहिए। सत्ता तीन स्थानों पर केन्द्रित हो तथा किसी अंग को दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। वह स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है।

कि सत्ता का मद अनिवार्य रूप से पतन की ओर ले जाता है। इस अवस्था से बचने के लिये 'सत्ता पर नियन्त्रण' तथा शक्तियों का सन्तुलन आवश्यक है। वह स्पष्ट करता है कि सत्ता अथवा शक्ति का यह संतुलन तभी संभव हो सकता है जब प्रत्येक अंग अपनी सीमाओं में कार्य करे तथा दूसरे अंग की सीमाओं में अतिक्रमण न करे। यह व्यवस्था तीनों अंगो को पूर्णतः पृथक कर ही हो सकती है। वह मानता था कि स्वतन्त्रता की रक्षा तभी हो सकती है जब शक्तियों का पृथक्करण हो। संक्षेप में मांटेस्क्यूके शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के मूल तत्व इस प्रकार है-

1.सरकार के तीनों अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, नन्यायपालिका संबंधी शक्तियों एक दूसरे पृथक तथा स्वतन्त्र हो।

2.सरकार के तीनों अंगों की शक्तियाँ अलग-अलग व्यक्तियों में निहित हो।

3.सरकार के तीनों अंगों की शक्तियाँ एवं उनके कार्मिकों की शक्तियाँ केवल उनके अधिकार क्षेत्र में सीमित, स्वतन्त्र और सर्वोच्च हो।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि शक्ति को शक्ति से पूर्णतः अलग कर शक्ति को ही शक्ति का नियन्त्रक बनाया जा सकता है। कतिपय यही कारण है कि वह इस बात पर जोर देता है कि -

1.सरकार के प्रत्येक अंग की शक्तियाँ स्पष्ट रूप से एक दूसरे से पृथक की जाय।

2.हर अंग का कार्यक्षेत्र एवं उसकी शक्तियाँ स्पष्ट रूप रेखांकित हो।

3.किसी भी अंग को अथवा सत्ता को किसी अन्य के अधिकार क्षेत्र में दखल नहीं देना चाहिए।

4.हर अंग को अथवा प्रत्येक सत्ता की शक्तियाँ बराबर होनी चाहिए। सभी का समान महत्व होना चाहिए।

5.हर प्रकार के शासन में केवल शक्ति ही शक्ति का विरोध करने की क्षमता रखती है।

मांटेस्क्यूके शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त ने मानवीय स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने में महत्वपूर्ण कार्य किया। यह उसका मानव स्वतन्त्रता हेतु दिया गया बहुमूल्य योगदान है। उसी के भांति ति आगे जाकर ब्लैकस्टोन, बाइल आदि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की व्याख्या की। जहाँ ब्लैकस्टोन लिखता है- ''जहाँ कही भी कानून बनाने तथा लागू करने का अधिकार एक व्यक्ति में निहित होता है वहाँ सर्वाजनिक स्वतन्त्रता नष्ट हो जाता है क्योंकि शासक अत्याचारपूर्ण कानून बनाकर उसे अत्याचारपूर्ण ढ़ग से लागू कर सकता है। यदि न्यायिक अधिकार को व्यवस्थापिका के साथ संयुक्त कर दिया जाय तो प्रजा के जीवन, स्वतन्त्रता तथा संपति के अधिकार स्वेच्छाचारी न्यायाधीशों के हाथ में आ जायेंगें क्योंकि वे अपने निर्णय अपने अनुसार देते है न कि विधि के अनुरूप। यदि न्यायपालिका को कार्यपालिका के साथ जोड़ दिया जाय तो व्यवस्थापिका का स्थान गौण हो जायेगा।

आधुनिक समय में एम0जे0 सी0 वाइल ने शक्ति के पृथक्करण के सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट एवं व्यवस्थित करने का प्रयास किया। उनका सम्पूर्ण विश्लेषण मांटेस्क्यू एवं ब्लैंकस्टोन के नजदीक ही दिखायी पड़ता है। उनके शब्दों में - ''राजनीतिक स्वतन्त्रता की स्थापना और स्थामित्व के लिये

यह आवश्यक है कि सरकारों को विधायी, कार्यकारी और न्यायिक इन तीनों अंगों में विभाजित किया जाय। इन तीनों अंगों में से प्रत्येक के पास सरकार के व्यवस्थापन संबंधी, प्रशासकीय और न्यायिक कार्य हो। उन्हें दूसरे अंगों के कार्यों में दखल देने की अनुमति न मिले। कोई भी व्यक्ति एक ही समय में एक से अधिक अंग अथवा शाखा का सदस्य न हो। इस प्रकार सरकार का प्रत्येक अंग दूसरे अंगों पर नियन्त्रण अथवा अंकुश रखे और व्यक्तियों का कोई एक समूह सम्पूर्ण सरकारी तन्त्र पर न छा जाये।''

एम0जे0सी0वाइल ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि समाजो की मूल्य व्यवस्था को सुरक्षित करनेका एकमात्र साधन मानव से इस सिद्धान्त के माध्यम से खोज लिया है। वह कहता है - ''मानव मूल्यों की सुरक्षा के लिये जितने भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं उन सबमें शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त आधुनिक समय में बौद्धिक दृष्टि से तथा संस्थापक संरचनाओं पर प्रभाव की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण है। इस संबंध में अमेरिकी संविधान निर्माता मेडीसन का कथन उल्लेखनीय है- ''व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका संबंधी सारी शक्तियों का एक हाथ में एकत्रित होना, अत्याचारी शासन की उपयुक्त परिभाष कही जा सकती है।''

14.6 शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का प्रभावः-

शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त एक ऐतिहासिक सिद्धान्त था। उसका व्यापक प्रभाव शासन, सत्ता तथा सरकारों के कार्यों पर पड़ा। इस सिद्धान्त ने सरकारों को मानव मूल्यों के प्रति अधिक संवेदनशील बना दिया। अमेरिका तथा फ्रान्स की शासन व्यवस्था पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ विद्वान तो यहाँ तक मानते हैं कि इस सिद्धान्त ने फ्रांस की क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार की। फ्रांस की क्रान्ति (1789) के मुख्य नारे समता, स्वतन्त्रता एवं भाईचारे (बंधुत्व) की आधार शिला इस सिद्धान्त ने रखी। बाद के वर्षों में फ्रांस में मानवीय अधिकारों की जो घोषणा हुई उसमें कहा गया कि जिस देश में शक्ति पृथक्करण की व्यवस्था नहीं है, उस देश में संविधान एवं मानव मूल्य नाम की चीज नहीं है। फ्रांस के 1791 के संविधान में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका को एक दूसरे से पृथक रखा गया। फ्रांस में प्रशासकीय विधि एवं प्रशासकीय न्यायालय का अस्तित्व इसी सिद्धान्त का प्रभाव है। अमेरिकी संविधान निर्माता शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त से बहुत अधिक प्रभावित थे। इसी का प्रभाव था कि फिलाडेल्फिया सम्मेलन के प्रमुख सदस्य मेडीसन कहते थे- ''हम निरन्तर मांटेस्क्यू की अदृश्य छाया से प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं।'' अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने भी समय-समय पर शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के संविधान एवं अमेरिकी समाज पर प्रभाव को स्वीकारा है। यहाँ पर फाइनर का कथन उल्लेखनीय है- ''अमेरिका का संविधान जानबूझकर एवं प्रयास करके शक्तियों के पृथक्करण पर एक विस्तृत निबंध बनाया गया है। यह संविधान इस सिद्धान्त पर चलने वाला विश्व में सर्वाधिक प्रसिद्ध राज्य शासन है।'' दुनिया के अनेक देशों ने बाद के वर्षों में इस सिद्धान्त को अपने संविधान में जगह दी। कतिपय यही कारण है

अध्यक्षात्मक शासन दुनिया में सर्वाधिक पायी जाने वाली शासन व्यवस्था है। 1948 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा स्वीकृत मानव अधिकारों के सार्वलौकिक घोषणा पत्र की धारा 16 में भी इस सिद्धान्त को मान्यता दी गई है।

14.7 शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आलोचना

यह निर्विवाद सत्य है कि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त ने सभी महाद्वीपों के नागरिकों एवं वहाँ बनने वाले संविधानों को प्रभावित किया। यह ऐसा विचार था जिसने मानव मूल्यों, नागरिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता ऊँचाइयों पर स्थापित किया। इस सिद्धान्त ने निरंकुश शासन, तानाशाही से बचने का व्यवहारिक हल प्रस्तुत किया। यह ऐसा विचार था जिसने सरकार के अंगों को तथा उसके कार्मिकों को दूसरे से पृथक एवं स्वतन्त्र रखकर मानव स्वतन्त्रता को सुरक्षित बनाने का प्रयास किया। इसके बावजूद समय गुजरने के साथ इस सिद्धान्त में कुछ त्रुटियाँ उजागर हुई। व्यवहार में इस पर आधारित शासन व्यवस्था में कई तरह की कमियाँ नजर आई। समय के साथ इस विचार में कई संशोधन भी किये गये। कुछ राजनीति शास्त्रीयों ने इसे अतिवादी विचार बताया तो कुछ ने इसे अव्यवहारिक बताया। संक्षेप में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आलोचना निम्न आधार पर की जाती है-

1.सिद्धान्त के प्रतिपादन का आधार गलतः- मांटेस्क्यूने शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटेन की शासन व्यवस्था का अध्ययन कर किया गया था। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि जिस शासन व्यवस्था को आधार बनाकर मांटेस्क्यूशक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त दे रहा था वहाँ पर संसदीय शासन व्यवस्था है। संसदीय व्यवस्था का यह आधारभूत तत्व है कि वह व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के बीच घनिष्ठ संबंध पर आधारित होती। संसदीय शासन में कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। इस संबंध में रेम्जे म्योर का कथन महत्वपूर्ण है- ''यदि शक्ति पृथक्करण अमेरिकी शासन व्यवस्था का आवश्यक नियम है तो दायित्व का केन्द्रीकरण ब्रिटिश संविधान का आवश्यक नियम है।''

यहाँ पर यह महत्वपूर्ण है कि मांटेस्क्यूने जिस सिद्धान्त को आधार बनाकर शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त दिया वह शासन व्यवस्था विधायिका एवं कार्यपालिका में घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। दोनों ही अंगों का जीवन एवं मरण एक दूसरे पर निर्भर करता है। कार्यपालिका, विधायिका के प्रसाद पर्यन्त सत्ता में रहती है तथा विश्वास समाप्त होते ही कार्यपालिका (सरकार) को पद छोड़ना पड़ता है। वहीं दूसरी तरफ कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान संकट के समय निम्न सदन को भंग कर नये चुनाव कराने की सिफारिश राष्ट्र प्रमुख से कर विधायिका का भंग करा सकता है। उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मांटेस्क्यूका सिद्धान्त गलत आँकलन तथा गलत विश्लेषण का परिणाम है। इस सिद्धान्त का आधार ही गलत है। कतिपय यही कारण है कि इसकी व्यापक आलोचना हुई है।

2.किसी भी शासन व्यवस्था में पूर्ण पृथक्करण संभव नहीं:- मांटेस्क्यू का शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त एक अतिवादी सिद्धान्त है। जो सरकार के अंगों के पूर्ण पृथक्करण को स्वीकार करता है। वह सरकार के अंगों के साथ उनके कार्मिकों के भी पृथक्करण अथवा कार्य विशेषीकरण की बात करता है। व्यवहार में किसी भी शासन में यह संभव नहीं है। अध्यक्षात्मक शासन जो शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित आदर्श शासन व्यवस्था मानी जाती है, उसमें भी अंगों के बीच आवश्यक तालमेल एवं संतुलन पाया जाता है। आज के जटिल शासन व्यवस्था में पूर्ण पृथक्करण एक कपोल कल्पना सिद्ध होगी। आज सरकार के कार्य दायित्व दिनों-दिन व्यापक ही नहीं जटिल एवं तकनीकी प्रवृत्ति के हो गये हैं। इन सभी कारणों से सरकार के अंगों में तालमेल ही अपेक्षित परिणाम दिला सकता है। अमेरिका के संविधान निर्माता जो कि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के प्रबल सर्मथक थे उन्होंने ने भी सीनेट (विधायिका) के कानून निर्माण के साथ सरकार के द्वारा किये गये संधि समझौते की स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति दी है। यह कार्य वास्तव में कार्यपालिका है परन्तु विधायिका का दखल दिखायी पड़ रहा है। इसी प्रकार राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तियों को पुष्टि भी सीनेट द्वारा करने की व्यवस्था भी पूर्ण शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के विरूद्ध है। इसके अलावा राष्ट्रपति तथा अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा संविधान का उल्लंघन करने पर महाभियोग द्वारा पद से हटाने की व्यवस्था भी विधायिका एवं कार्यपालिका के पूर्ण पृथक्करण के विरूद्ध है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता की न केवल जाँच कर सकती हैवरनउसे अंसवैधानिक घोषित कर सकती है। अमेरिका का राष्ट्रपति जो कार्यपालिका का प्रधान होता है वह न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा क्षमादान के कार्य कर न्यायिक कार्य करता है। विधायिका द्वारा बनाये गये कानूनों के संबंध में उसके पास 'वीटो का अधिकार' (निषेधाधिकार) है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि अमेरिका जहां पर शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर बहुत जोर था, वह भी पूर्ण रूप से शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को नहीं अपना पाया। अमेरिका में भी सरकारों के अंगों में सांमजस्य एवं सहयोग बनाना पड़ा। वहाँ पर सरकार के सभी अंग दूसरे के कार्यों में आवश्यकतानुसार न केवल दखल दे रहे हैंवरनव्यापक हित में दूसरे के कार्यों को करते हुए दिखायी पड़ रहें हैं। वास्तव में सत्ता का पूर्ण पृथक्करण पूर्णतः अव्यवहारिक सिद्धान्त है। यह आधुनिक समय में संभव ही नहीं है। आज शासन के अंगों के द्वारा मिश्रित कार्यों का संपादन किया जाता है। आधुनिक समय में कार्यों की अधिकता एवं जटिलता ने प्रदत्त विधायन को मजबूत किया है। इसमें एक अंग का कार्य दूसरा करता है। इस व्यवस्था में कार्यपालिका के कार्यों एवं शक्तियों में वृद्धि हो जाती है। आकस्मिक स्थिति में कार्यपालिका द्वारा अध्यादेश पारित करना भी कार्यपालिका का विधायी कार्य है। आधुनिक लोकतन्त्र में कार्यों की अधिकता एवं जटिलता ने इसे अव्यवहारिक बना दिया है वहीं फॉसीवाद, नाजीवादी तथा साम्यवादी विचारधारा वाली सर्वाधिकारवादी शासन में इसकी कोई जगह नहीं है। इस संबंध में गेटेल का कथन महत्वपूर्ण है- ''शासन विभिन्न कार्य करने

वाले कई अंगों से बनता है, उनका एक साझा कार्य एवं उद्देश्य होता है। जिनकी सफलता के लिये उनकी एकरूपता तथा सहयोग आवश्यक है। विभिन्न विभागों में पृथकता की एक दृढ़ रेखा नहीं खींची जा सकती है।''

3.तीनों अंगों की शक्ति विभाजन एवं सामंजस्य योजना का अभाव:- यह सिद्धान्त पूर्ण रूपेण अंगों के अलग कार्यक्षेत्र का समर्थक है। इससे कई बार तीनों अंगों में गतिरोध, टकराव उत्पन्न हो जाता है। नई जटिल शासन व्यवस्था में टकराव एवं गतिरोध के स्थान पर सहयोग की आवश्यकता होती है। यदि गतिरोध के साथ शासन आगे बढ़ेगा तो शासन का लक्ष्य ही प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त में विभाजन का विचार दिया गया है। परन्तु विभाजन योजना का पूर्ण आभाव है। इस सिद्धान्त में अंगों के बीच गतिरोध अथवा टकराव की स्थिति में समाधान हेतु किसी योजना का पूर्णरूपेण अभाव दिखायी देता है।

4.शक्ति पृथक्करण की आवश्यकता ही नहीं हैः- यह सिद्धान्त पूर्णरूपेण कठोर रूप से कभी भी स्वीकार नहीं हो सकता है। आधुनिक समय में सरकार के सभी अंग सामूहिक रूप से एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रयासरत रहते हैं। वह लक्ष्य होता है जनकल्याण एवं मानव आकांक्षाओं की पूर्ति करना। यह लक्ष्य आज राष्ट्र राज्य वाले बड़े देशों में सरकार के बड़े कार्यक्षेत्र को इंगित करता है। बड़े व्यापक लक्ष्य को पाने के अंगों के सहयोग एवं सामंजस्य की आवश्यकता होती है न कि असहयोग एवं पृथक्करण। यदि आज पूर्ण पृथक्करण के साथ सरकार कार्य करे तो अपने मूल लक्ष्य को ही नहीं प्राप्त कर पायेगी। सरकार असफल हो जायेगी।

आज आवश्यकता व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच सहयोग की है। इनके सहयोग एवं मार्गदर्शन के बिना लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः आज के समय में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आवश्यकता ही नहीं है।

5.न्यायपालिका की निष्पक्षता एवं नागरिक अधिकारों का अंतः-

यदि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को पूर्ण रूपेण लागू किया गया तो न्यायपालिका की सर्वोच्च ता एवं निष्पक्षता प्रभावित हो जायेगी। न्यायाधीशों की नियुक्ति विधायिका के द्वारा न होकर जनता के द्वारा होने लगेगी तथा न्यायपालिका न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग नहीं कर पायेगी। इसके अभाव में नागरिक अधिकारों की रक्षा तथा संविधान के प्रावधानों का पालन सुनिश्चित नहीं करा पायेगी। ऐसी दशा में संविधान केवल दिखाने की वस्तु बन कर रह जायेगा। आधुनिक समय में नागरिक अधिकार तथा संविधान की सर्वोच्च ता का सिद्धान्त सर्वोच्च माना जाता है। इन दोनों आदर्शों को आज अनिवार्य रूप से सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाता है।

6.स्वतन्त्रता के लिये शक्ति पृथक्करण आवश्यक नहीं- यह मानना कि सरकार के तीनों अंगों को पृथक कर ही स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखा जा सकता है पूर्णतः गलत है। नागरिक स्वतन्त्रता हेतु संविधान एवं संविधान के अनुरूप सरकार के अंगों का सुचारू रूप से संचालन आवश्यक है। सरकार के अंगों में बेहतर सांमजस्य ही स्वतन्त्रता की गांरटी है। इसका अच्छा उदाहरण इंग्लैण्ड का

है। इंग्लैण्ड के शासन से ही प्रभावित हो कर मांटेस्क्यूने शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त दिया था। जबकि इंग्लैण्ड ने संसदीय शासन व्यवस्था होने के कारण वहाँ तीनों अंगों में घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। वहाँ पर सरकार के अंगों में पृथक्करण न होते हुए भी नागरिक स्वतन्त्रता सुरक्षित है। ब्रिटेन की नागरिक स्वतन्त्रता ने ही मांटेस्क्यूको शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के लिये प्रेरित किया था। यहाँ पर वाशिगटन का कथन महत्वपूर्ण है- ''निरन्तर जागरूकता ही स्वतन्त्रता का सच्चा मूल्य है''

मांटेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आलोचना की जाती है परन्तु यह महत्वपूर्ण है कि मांटेस्क्यूने मानव मूल्यों और स्वतन्त्रता को न केवल महिमा मण्डित कियावरनउसके सुरक्षा के लिये व्यवहारिक उपाय शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के माध्यम से प्रस्तुत किया। वह पहला विचारक था जिसने शक्ति के केन्द्रकरण को स्वतन्त्रता का दुश्मन बताया। उसने सरकार के अंगों के समान रूप से शक्तिशाली बनाकर आगे जाकर अवरोध संतुलन के सिद्धान्त का मार्ग प्रशस्त किया। आज दुनिया के सभी देशों में किसी न किसी रूप में पृथक्करण सिद्धान्त तथा अवरोध संतुलन के सिद्धान्त का प्रयोग हो रहा है।

14.8 अवरोध एवं सतुंलन का सिद्धान्त

अवरोध एवं सतुंलन का सिद्धान्त आज बहुत लोकप्रिय एवं उपयोगी सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जाता है। आज दुनिया के सभी लोकतान्त्रिक देशों में अवरोध संतुलन के सिद्धान्त के द्वारा सरकार के अंगों में सामजस्य बनाने का कार्य करता हुआ दिखायी पड़ता है। कुछ विद्वान इसे शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का नवीन रूप भी मानते हैं। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि सरकार के सभी अंग समान हो तथा कोई किसी पर दबाव नहीं बनाये। कोई अंग इतना मजबूत एवं शक्तिशाली न बन जाये जिससे मानव स्वतन्त्रता ही खतरे में पड़ जाये। इस सिद्धान्त का आशय है सरकार के विभिन्न अंग एक दूसरे की शक्ति पर इस प्रकार से नियन्त्रण स्थापित करें कि शक्ति का संतुलन बना रहे। कोई भी अंग निरंकुश न हो जाय। दूसरों शब्दों में कहे तो विभिन्न विभाग पृथक तो हो सकते है परन्तु स्वतन्त्र नहीं। इस व्यवस्था में सरकार का प्रत्येक अंग एक दूसरे की शक्तियों को इस प्रकार सीमित करते है जिससे कि कोई भी अंग नागरिक स्वतत्रन्ता के लिये खतरा नहीं बन पाता है। नियन्त्रण एवं संतुलन सिद्धान्त के अर्न्तगत ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि कानून निर्माण का कार्य व्यवस्थापिका करे परन्तु विधायिका की इस शक्ति पर कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है। इसमें यह व्यवस्था दिखायी पड़ती है कि विधायिका द्वारा पारित विधेयक तभी कानून बनते हैं। जब कार्यपालिका के प्रधान के हस्ताक्षर न हो जायें। न्यायपालिका के द्वारा न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा न्यायपालिका विधायिका द्वारा बनाये गये कानूनों की वैधता को जांचती है। इससे विधायिका की विधायी शक्तियों पर नियन्त्रण रखा जाता है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि पूर्ण एवं कठोर शक्ति पृथक्करण न तो व्यवहारिक है और न ही आधुनिक परीस्थितियों में लागू करने योग्य है। सरकार के अंगों में कार्य विभाजन तो ठीक है साथ

ही उनमें सहयोग एवं सामंजस्य भी आवश्यक है। यही कारण है कि नियन्त्रण एवं संतुलन के सिद्धान्त में सहयोग तथा एक अंग द्वारा दूसरे को सीमित करने की व्यवस्था की जाती है। शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के अव्यावहारिक होने के कारण इस सिद्धान्त के द्वारा शक्ति पृथक्करण को व्यावहारिक एवं अधिक कारगर बनाया गया। नियन्त्रण संतुलन का सिद्धान्त में शासन का प्रत्येक अंग दूसरे पर निर्भर रहता है तथा दूसरे की शक्तियों द्वारा शक्ति के दुरूपयोग को रोकता है। अमेरिकी संविधान इसी अवरोध एवं संतुलन के सिद्धान्त पर कार्य करता है।

14.9 अमेरिका का अवरोध संतुलन

अमेरिका के संविधान में अवरोध संतुलन का एक आदर्श उदाहरण मिलता है। वहाँ पर सरकार के तीनों अंगों की शक्तियाँ संविधान द्वारा अलग-अलग रखी गई हैं। वहाँ पर शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। इसके बावजूद सभी अंग एक दूसरे को नियन्त्रित करते हुए दिखायी पड़ते हैं। अमेरिका में विधायिका का मुख्य कार्य कानून बनाना है। परन्तु वह कार्यपालिका की नियुक्ति संबंधी कार्यों की, संधि समझौते की पुष्टि करती है। राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग भी विधायिका के द्वारा ही पूर्ण किया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अमेरिका में विधायिका कार्यपालिका के ऊपर प्रभावी अंकुश लगाती है। विधायिका न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति कर तथा न्यायाधीशों के विरूद्ध महाभियोग लगाकर न्यायपालिका पर प्रभावी अंकुश लगाने का कार्य करती है। ठीक इसी प्रकार कार्यपालिका का प्रमुख कार्य नीतियों कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना होता है परन्तु वहाँ की कार्यपालिका का प्रधान (राष्ट्रपति) वीटो की शक्ति का प्रयोग कर विधायिका के द्वारा निर्मित कानून को कानून बनने से रोक सकता है। राष्ट्रपति के वीटो का अधिकार अमेरिकी काँग्रेस (विधायिका) पर प्रभावी नियन्त्रण है। इसी प्रकार अमेरिका में कार्यपालिका का प्रधान (राष्ट्रपति) न्यायाधीशों की नियुक्ति करने का अधिकार का प्रयोग कर न्यायपालिका को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय एक शक्तिशाली न्यायालय है। उसके पास कानूनों की संवैधानिकता की जांच करने तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा करने का महत्वपूर्ण दायित्व है। अपनी इस शक्ति का प्रयोग वह न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा करता है। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय अपने न्यायिक पुनरावलोकन के अधिकार के द्वारा विधायिका के ऊपर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित रखती है। इसी प्रकार अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय कार्यपालिका के कार्यों, आदेशों की वैधानिकता की जांच कर उस पर नियन्त्रण लगाने की क्षमता रखता है। इस प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिका की संवैधानिक व्यवस्था में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त तो अपनाया गया है साथ में सभी अंगों को इतना ताकतवर एवं महत्वपूर्ण बनाया गया है कि वे दूसरे अंगों के ऊपर प्रभावी अंकुश एवं नियन्त्रण स्थापित कर सके। अमेरिकी संवैधानिक व्यवस्था में सरकार के अंगों को परस्पर एक दूसरे पर निर्भर रखा गया है। यह व्यवस्था व्यापक विमर्श के उपरान्त की गई है जिससे सरकार के अंगों के बीच एक 'प्रतिस्पर्धात्मक सहयोग'

की भावना रहे और कोई भी सरकार का अंग इतना शक्तिशाली न हो जाय कि वह दूसरे सरकार के अंग को प्रभावित कर अत्याधिक शक्तिशाली (निरंकुश) बन जाये। अमेरिका के संविधान में अपनायी गई यह अद्भुत एवं दूरदर्शी व्यवस्था थी जिसने नागरिक स्वतन्त्रता के साथ प्रशासनिक कुशलता को सुनिश्चित किया। यह वह व्यवस्था थी जिसने सरकार के अंगों में सामंजस्य एवं सहयोग को बढ़ावा दिया। इस सम्पूर्ण व्यवस्था से नागरिक स्वतन्त्रता के साथ वैधानिक, प्रशासनिक एवं **न्यायिक कुशलता का मार्ग प्रशस्त हुआ।**

14.10 भारत में शक्ति पृथक्करण एवं नियन्त्रण संतुलन व्यवस्था

भारत में संसदीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। सामान्यतः संसदीय शासन व्यवस्था में यह माना जाता है कि इस शासन व्यवस्था में व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के बीच घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर करता है। मन्त्रिमण्डल का निर्माण तथा उसका जीवन विधायिका के विश्वास पर्यन्त ही रहता है। उसी प्रकार विधायिका का अस्तित्व भी कार्य पालिका (प्रधानमंत्री सहित मन्त्रिमण्डल) पर निर्भर करता है। मन्त्रिमण्डल की सिफारिश पर निम्न सदन को भंग कर नये चुनाव कराये जा सकते हैं। यह कहना कि संसदीय शासन व्यवस्था में शक्ति पृथक्करण नहीं हो सकता पूर्णतः गलत है। वास्तव में संसदीय शासन में सीमित शक्ति पृथक्करण होता है तथा अवरोध संतुलन पर अधिक जोर पाया जाता है। सामान्यतः संसदीय शासन व्यवस्था में संविधान की रक्षा तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायपालिका को संविधान द्वारा स्वतन्त्र रखा जाता है। शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये संसदीय शासन व्यवस्था में अवरोध संतुलन को स्वीकार किया जाता है। भारत की शासन व्यवस्था संसदीय है अतः यहाँ पर भी ''अवरोध संतुलन'' के तत्व दिखायी पड़ते हैं। भारत के संविधान में संसदीय शासन होने के बावजूद शक्ति पृथक्करण तथा नियन्त्रण संतुलन की व्यवस्था की गई है। भारत में विधायिका का कार्य कानून बनाना है परन्तु विधायिका कार्यपालिका के प्रधान राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग पारित कर उसे पद से हटा सकती है । ठीक इसी प्रकार स्वतन्त्र न्यायपालिका के न्यायाधीशों को भी महाभियोग द्वारा पद से हटाने का कार्य भी विधायिका करती है। भारत में कार्यपालिका अथव मन्त्रिमण्डल की सिफारिश पर राष्ट्रपति (कार्यपालिका का प्रधान) लोकसभा (विधायिका) को भंग कर सकता है। भारत में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता एवं सर्वोच्च ता के लिये संविधान द्वारा विशेष प्रावधान किये गये हैं। इसी के लिये सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्रदान की गई है। अपनी इस शक्ति के द्वारा भारत में न्यायपालिका विधायी कानूनों की वैधानिकता की जांच कर सकता है। यदि कोई कानून संवैधानिक प्रतीक नहीं होता तो वह असंवैधानिक घोषित कर सकता है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय अपनी न्यायिक पुनरावालोकन की शक्ति का प्रयोग कार्यपालिका के आदेशों तथा नीतियों के संदर्भ में कर उसे अवैधानिक घोषित कर सकता है। भारत

में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होते हुए भी विधायिका के ऊपर संसद का सत्र बुला सत्रावसन की घोषणा कर, अध्यादेश जारी कर, विधेयकों पर वीटो कर प्रभावी अंकुश लगाता है।
उपरोक्त विवरण ये यह स्पष्ट है कि यद्यपि भारत में संसदीय शासन होने के कारण पूर्ण शक्ति पृथक्करण की व्यवस्था नहीं की गई है परन्तु नियन्त्रण एवं संतुलन की व्यापक व्यवस्था की गई है।

14.11 अवरोध संतुलन के प्रकार

शक्तियों के पूर्ण पृथक्करण की व्यापक व्यवस्था अमेरिका में की गई। इसके बावजूद नियन्त्रण संतुलन के द्वारा अंगों में सहयोग एवं नियन्त्रण स्थापित किया गया। विकसित देशों में नियन्त्रण संतुलन की गैर संवैधानिक सरंचनाओं के कारण शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त कम प्रभावी दिखायी पड़ता है। अब अन्य संस्थायें इन दोनों कार्यों को करने लगी हैं। आधुनिक समय में राजनीतिक दल, दबाव, समूह, लोकमत, जनसंचार के साधन इस कार्य को करते हुए दिखायी पड़ते हैं। विकसित राजनीतिक व्यवस्थाओं में संरचनात्मक व्यवस्थाओं के कारण नियन्त्रण एवं संतुलन का सिद्धान्त आवश्यक होता जा रहा है। विकासशील समाजों में अभी इन सबका इस रूप में विकास नहीं हुआ है। अतः इन देशों में लोकतन्त्र एवं नागारिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये शक्ति पृथक्करण की अभी भी आवश्यकता बनी हुई है। अमेरिका एवं अन्य विकसित राजनीतिक व्यवस्था वाले देशों में दो तरह के नियन्त्रण एवं संतुलन की व्यवस्था दिखायी पड़ती है-
1.संवैधानिक नियन्त्रण संतुलन
2.गैर संवैधानिक नियन्त्रण संतुलन

1.संवैधानिक नियन्त्रण व संतुलन व्यवस्थाः-

शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की अव्यवहारिकता एवं उससे होने वाले नुकसान के कारण इस सिद्धान्त का पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जा सकता । इसके स्थान पर एक नये सिद्धान्त नियन्त्रण व संतुलन सिद्धान्त के द्वारा इस कार्य को करने का प्रयास किया गया। इस हेतु संविधान द्वारा ही इसकी व्यवस्था की गई इसीलिये इसे संवैधानिक नियन्त्रण व संतुलन व्यवस्था कहा गया। इस व्यवस्था में नियन्त्रण की व्यवस्था संविधान द्वारा स्पष्ट होती है। नियन्त्रण करने की सम्पूर्ण व्यवस्था औपचारिक होती है। तथा सामान्य परीस्थितियों में यह प्रभावी होती है। यहाँ पर यह महत्वपूर्ण है कि सामान्य परीस्थितियों से ज्यादा नियन्त्रण की आवश्यकता आपातकाल में होती है। जब कोई सरकार अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करती है तब संवैधानिक व्यवस्थायें उस पर रोक लगाने में असफल रहती हैं। विकासशील देशों में प्रायः देखा गया है कि वहाँ लोकतन्त्र सैनिक क्रान्तियों से समाप्त नहीं हुआ है। वहाँ पर संवैधानिक नियन्त्रण संतुलन होने के बावजूद सरकारों ने अप्रत्याशित शक्तियों को हथिया लिया। अतः इस सिद्धान्त के द्वारा शासन के तीनों अंगों की शक्तियों के लिये ऐसा प्रबन्ध करना होता है जिसमें तीनों अंग एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हुए भी एक दूसरे पर ऐसा नियन्त्रण बनाये रखते हैं, जिससे कि संतुलन बना रह सके। शासन के प्रत्येक अंग को इतना एक दूसरे पर निर्भर बना दिया

जाता है कि यदि कोई अंग अपनी जिम्मेदारी न निभाये तो शासन का दूसरा अंग उसे सचेत करने तथा नियन्त्रित करने का कार्य करता है। तीनों अंगों में परस्पर सामंजस्य और नियन्त्रण के साथ स्वतन्त्रता भी बनी रहती है। इस सिद्धान्त का मूल लक्ष्य नियन्त्रण लगाना नहीं है। इसका मूल उद्देश्य संतुलन बनाना है। यह कार्य जटिल है। नियन्त्रण उतना ही स्वीकार्य है जितना की संतुलन हेतु आवश्यक है। यही कारण है कि आज विधायिका के ऊपर कार्यपालिका विधेयकों को स्वीकृति दे कर, अध्यादेश जारी कर नियन्त्रण स्थापित करती है। वही कार्यपालिका के ऊपर विधायिका नियुक्तियों को स्वीकृति दे, महाभियोग स्वीकृति कर, नियन्त्रण प्राप्त होता है। न्यायपालिका विधेयकों तथा कार्यपालिका के आदेशों की वैधानिकता की जाँच के द्वारा विधायिका एवं कार्यपालिका पर नियन्त्रण स्थापित करती है। इस प्रकार तीनों अंग प्रभावी नियन्त्रण तथा उनमें संतुलन करने का प्रयास करने में सफल हो पाते हैं।

2.गैर संवैधानिक नियन्त्रण और संतुलन व्यवस्थाः- समय गुजरने के साथ नियन्त्रण एवं संतुलन के तरीके भी बदल गये हैं। आधुनिकता के विकास, विज्ञान के विकास ने शासन के तौर तरीकों में भी बदलाव किया है। आज नियन्त्रण हेतु कई गैर संवैधानिक तत्व उभर आये हैं। ये तत्व संवैधानिक व्यवस्थाओं से अधिक प्रभावी तरीके से नियन्त्रण एवं संतुलन करते हुए दिखायी पड़ रहे हैं। आधुनिक समय में राजनीतिक दल, दबाव समूह, हित समूह, नये संचार के माध्यम, सोशल मीडिया, लोकमत ने सरकार के ऊपर अदृश्य रूप से प्रभावी अंकुश लगाना है। आज सरकार के अंगों के ऊपर प्रभावी अंकुश ही नहीं दिखायी पड़ रहा हैवरनसरकारें तथा उनके अंग बेहतर ढंग से संतुलित दिखायी पड़ रहे हैं। विकासशील समाजों में से अभी प्रभावी नहीं हो पाये हैं। परन्तु विकासशील राज्यों तथा उनकी शासन व्यवस्थाओं में इनका प्रभाव दिखायी पड़ने लगा है।

14.12 नियन्त्रण एवं संतुलन सिद्धान्त की आलोचना

नियन्त्रण एवं संतुलन का सिद्धान्त आधुनिक समय में एक उपयोगी सिद्धान्त के रूप में विकसित हुआ है। इस सिद्धान्त ने कठोर शक्ति पृथक्करण की अव्यवहारिका को न केवल दूर कियावरनसरकार के अंगों में नियन्त्रण एवं संतुलन का व्यवहारिक हल प्रस्तुत किया। आज दुनिया के अधिकांश देशों में इस सिद्धान्त का अस्तित्व दिखायी पड़ता है। इन सबके बावजूद विभिन्न कारणों से इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है। इसकी आलोचना के प्रमुख आधार निम्न हैः-

1.शासन में गतिरोध की संभावनाः- नियन्त्रण एवं संतुलन का सिद्धान्त की आलोचना कुछ विद्वान इस आधार पर करते है कि इससे शासन के अंगों के बीच सहयोग के स्थान पर टकराव प्रारम्भ हो जाता है। अंगों का टकराव किसी भी शासन व्यवस्था के लिये हितकर नहीं होगा। सरकार अपने अंगों के बीच सांमजस्य से ही अपेक्षित परिणाम दे सकती है। शासन के अंगों बीच उपजा गतिरोध न केवल अपेक्षित परिणाम आने से रोकता है वरन शासन का मूल उद्देश्य ही समाप्त कर देता है।

2.निर्णय लेने में देरीः- प्रायः देखा जाता है कि शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध एवं संतुलन से सरकार के अंगों के बीच अनिश्चितता एवं अविश्वसनीयता का वातावरण बन जाता है। वे एक दूसरे के मार्ग में बाधायें उत्पन्न करने लगते हैं। यदि अंगों के बीच असहयोग एवं अनिश्चतता होगी तो सरकारें अपने कार्यों को ठीक प्रकार नही कर पायेंगी। उनके बीच उपजा टकराव कई बार निर्णय लेने में व्यवधान उत्पन्न करता है। यह इसका प्रमुख दोष है।

3.अव्यवहारिक सिद्धान्तः- आधुनिक समय में सरकार का स्वरूप एवं कार्यक्षेत्र का दायरा तेजी से बढ़ रहा है। आज सरकारों को तकनीकी एवं विशेषज्ञता पूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। आज सरकारों के बीच जो चुनौतियां है उनमें त्वरित निर्णय की आवश्यकता रहती है। ऐसे में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की ही तरह नियन्त्रण एवं संतुलन के सिद्धान्त पर सवाल उठने लगे हैं। अमेरिका में विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच टकराव के कारण कई अवसरों पर राष्ट्रहित ही खतरे में पड़ गया। उतः कुछ विद्वान इस सिद्धान्त को अव्यवहारिक मानते हैं।

4.नियन्त्रण संतुलन के सिद्धान्त एवं महत्व में कमीः- आधुनिक समय में यह सिद्धान्त अपना प्रभाव एवं महत्व निरन्तर खोता जा रहा है। इसका प्रमुख कारण आज के दौर में सरकार के समक्ष उपजी चुनौतियों का जबाव इस सिद्धान्त के द्वारा नहीं दिया जा सकता है। आज टकराव के स्थान पर सरकार के अंगों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य से ही सरकार के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

14.13 मूल्यांकन

आज दुनिया में शायद ही कोई देश ही जहाँ किसी न किसी रूप में शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन न दिखायी पड़ रहा हो। इस प्रकार की शासन प्रणालियों में किसी न किसी रूप में यह सिद्धान्त दिखायी पड़ता है। समय के साथ शक्ति पृथक्करण के सिद्धानत में उपजी खामियों की भरपाई अवरोध एवं संतुलन के सिद्धानत ने कर दी है। यह भी सत्य है कि इस सिद्धान्त की अवधारणाओं में आये सभी प्रयत्नों के बावजूद यह सिद्धान्त व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने वाला सर्वाधिक उपयुक्त सिद्धान्त है। तेजी से बदल रही राजनीतिक स्थितियों तथा सरकार के समक्ष आ रही नई चुनौतियों के मुकाबले में यह सिद्धान्त किसी न किसी रूप में खड़ा हो रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सभी महाद्वीपों एवं विकसित-विकासशील देशों में इस सिद्धान्त का प्रसार इसकी सफलता एवं उपयोगिता को दर्शाता है। यह ऐसा विचार है जो किसी न किसी रूप में सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाओं में स्वीकार किया जाता है। यहाँ पर बाइल का कथन उपयोगी हैः- ''विगत शताब्दियों के इतिहास का परीक्षण करने पर यह भेद खुलता है कि अपनी सभी कमियों के बावजूद शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त में एक अड़ियल विशेषता है कि यह भिन्न-भिन्न रूपों में बार-बार प्रकट होता है। यह इस लक्ष्य की पुष्टि है कि किसी न किसी रूप में शक्तियों का विभाजन तथा शासन कार्यों का पृथक्करण सरकार व शासन की व्यवस्था के अन्तरतम में ही निहित रहता है।''

कुछ विद्वान ठीक ही कहते है कि- ''शक्तियों का केन्द्रीकरण तथा शक्तियों का पृथक्करण दोनों ही न टलनेवाले तथ्य है।''

14.14 सारांश

शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त प्राचीन है। इस सिद्धान्त को देने के पीछे मानव स्वतन्त्रता की खोज तथा उसको निरन्तर बनाये रखने की इच्छा थी। यह सत्ता के एक स्थान पर केन्द्रीकरण को रोकने लिये लाया गया सिद्धान्त था जिसका मूल उद्देश्य नागरिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना था। यह सिद्धान्त सरकार के तीनों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका को परस्पर एक दूसरे से स्वतन्त्र एवं नियन्त्रण मुक्त रखना चाहता है। यह सिद्धान्त यह स्वीकार करता है कि जब-जब इन तीनों अंगों की शक्तियाँ किसी एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती हैं तो वहाँ पर निरंकुश शक्ति का जन्म हो जाता है। निरंकुश सत्ता के आते ही नागरिक स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जाती है। नागरिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित एवं निर्बाध बनाये रखने के लिये यह सिद्धान्त अस्तित्व में आया। नागरिक स्वतन्त्रता के इतिहास में यह मील का पत्थर साबित हुआ।

लॉक पहला राजनीतिक विचारक था जिसने सर्वप्रथम माना था कि नागरिक स्वतन्त्रता के लिये सरकार के अंगों का पृथक्करण आवश्यक है। लाक के बाद मांटेस्क्यूने इस सिद्धान्त को नई ऊँचाइयों पर पहुंचाया। सर्वप्रथम मांटेस्क्यूने इंग्लैण्ड के संविधान का अध्ययन कर शक्ति पृथक्करण की एक व्यापक एवं व्यवस्थित सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया। मांटेस्क्यूके बाद ब्लैकस्टोन, बाइल आदि ने इसे नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया। पूर्व में यूनानी विचारकों, सिसरो, अरस्तू, प्लेटो आदि ने विकेन्द्रित सत्ता को मानव के हित में बताया था।

यह सिद्धान्त सरकार के तीनों अंगों को न केवल पृथक एवं स्वतन्त्र रखने की वकालत करता हैवरनइनसे जुड़े कार्मियों को भी स्वतन्त्र रखने का जोर देता है। आधुनिक समय में राज्यों के बढ़ते कार्यक्षेत्र, जटिल एवं तकनीकी प्रवृत्ति के कार्यों की अधिकता ने अंगों के पृथकीकरण को अव्यवहारिक बना दिया है। आज के समय में प्रदत्त विधायन को स्वीकार किया जा रहा है। जिसमें विधायिका के कार्यों को हल्का करने के लिये विधि निर्माण का सीमित दायित्व कार्यपालिका को सौंप दिया जाता है। इस प्रकार आधुनिक सरकार के तीनों अंगों में पूर्ण पृथकता न तो संभव है और न ही व्यवहारिक है। चाहे अध्यक्षात्मक शासन हो या संसदात्मक शासन सभी में अंगों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य आवश्यक है। अध्यक्षात्मक शासन जिसे शक्ति पृथक्करण का आदर्श माना जाता है वहाँ भी व्यवहार में अंगों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य से ही शासन आगे बढ़ता दिखायी पड़ता है। पूर्ण पृथक्करण न तो सभंव है और न ही व्यवहारिक है। अतः इस दशा में पृथक्करण के सिद्धान्त के आगे और सिद्धान्त अवरोध और संतुलन का सिद्धान्त कारगर दिखता है। यह सिद्धान्त प्रत्येक अंग की स्वतन्त्रता तो सुनिश्चित करता है। साथ में दूसरे का निर्भरता को भी निश्चित करता है। इस सिद्धान्त में प्रत्येक शासन का अंग दूसरे अंग को नियन्त्रित करता हुआ दिखायी पड़ता है।

आधुनिक समयमेंअवरोध एवं संतुलन का सिद्धान्त बहुत कारगर एवं प्रभावी है। अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था में विधायिका कार्यपालिका द्वारा (राष्ट्रपति) की गई नियुक्तियों तथा संधि समझौते की पुष्टि करता है और उसे नियन्त्रित करता है। दूसरी तरफ राष्ट्रपति विधायिका द्वारा पारित विधेयकों को वीटो कर कानून बनने से रोक सकता है तथा उसे नियन्त्रित करता है। निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि शक्ति पृथक्करण तथा उसकी अगली कड़ी अवरोध संतुलन का सिद्धान्त एक प्रभावी एवं उपयोगी सिद्धान्त है।

14.15 शब्दावली

1.कार्य विशेषीकरणः- इस सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि व्यक्ति की योग्यता के अनुसार विशेष कार्य सौंपा जाना चाहिए।

2.प्रदत्त विधायनः- आधुनिक समय में बढ़े हुए विधायिका के कार्यो को कम करने के लिये कार्यपालिका को कानून बनाने की शक्ति सौंपने की व्यवस्था प्राप्त विधायन है।

3.महाभियोगः- राष्ट्रपति तथा न्यायाधीशों को पद से हटाने की विशेष प्रक्रिया महाभियोग कहलाती है।

4.न्यायिक पुनरावलोकनः- विधायिका के निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के आदेशों को संवैधानिकता की जांच करने की न्यायपालिका की शक्ति न्यायिक पुनरावलोकन कहलाती है।

5.वीटोः- विधायिका द्वारा स्वीकृत विधेयक जब राष्ट्रपति के पास अनुमोदन के लिये जाता है और राष्ट्रपति हस्ताक्षर न कर वापस कर देता है। राष्ट्रपति की यह शक्ति वीटो शक्ति कहलाती है।

6.अध्यादेशः- विधायिका का सत्र न चल रहा हो और आकस्मिक कानूनों की आवश्यकता हो तब कार्यपालिका अध्यादेश जारी करती है। अध्यादेश कार्यपालिका द्वारा निर्गत कानून होता है।

14.16 अभ्यास के प्रश्न

1.निम्न में से कौन सा सरकार का अंग है?
(अ) विधायिका (ब) कार्यपालिका (स) न्यायपालिका (द) सभी
2.निम्न में से कौन यूनानी विचारक है?
(अ) सिसरो (ब) प्लेटो (स) अरस्तू (द) सभी
3.मांटेस्क्यूका शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का उल्लेख है-
(अ) दि गर्वनमेंट (ब) स्पिरिट ऑफ लॉ (स) स्टेट (द) ले विभाजन
4.शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का आदर्श उदाहरण है-
(अ) भारत (ब) इंग्लैण्ड (स) अमेरिका (द) सभी
5.अवरोध एवं संतुलन का सिद्धान्त कार्य करता है-

(अ) विधायिका-कार्यपालिका सहयोग एवं नियन्त्रण (ब) कार्यपालिका और न्यायपालिका सहयोग एवं नियन्त्रण (स) विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका सहयोग एवं नियन्त्रण (द) कोई नहीं

14.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.गेना0 सी0वी0 , तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं
2.मल्ल वी0पी0, भारत का राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारत का संविधान
3.जैन आर0वी0एस0 , तुलनात्मक राजनीति
4.अग्रवाल आर0सी0, आधुनिक सरकारें के सिद्धान्त एवं व्यवहार
5.जैन पुखराज, आधुनिक सरकारें, सिद्धान्त एवं व्यवहार

14.18 सहायक उपयोगी सामग्री

1.सोडारो जे माईकल , कम्परेटिव पॉलिटिक्स
2.राम गांधी जी, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति
3.गाबा ओ0पी0, राजनीति शास्त्र की रूपरेखा
4.खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें
5.सिघंल एस0सी0, आधुनिक सरकारों के सिद्धान्त एवं व्यवहार

14.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.द, 2.द, 3.ब, 4.स ,5.स

14.20 निबन्धात्मक प्रश्न

1.शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त से क्या समझते है? इसके गुण-दोष की व्याख्या कीजिये।
2.अवरोध संतुलन सिद्धान्त पर निबन्ध लिखिये।
3.अमेरिका में अवरोध एवं संतुलन सिद्धान्त किस प्रकार काम करता है। इसकी व्यापक व्याख्या कीजिये।
4.''पूर्ण पृथक्करण न केवल अव्यावहारिक वरन अवांछनीय है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिये।
5.शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? नागरिक स्वतन्त्रता में इसके योगदान को स्पष्ट कीजिये।